### लेखकीय वक्तन्य

सस्कृत मे एम॰ ए॰ परीक्षा देने के परचाव मेरा मन एक ऐसे विषय की स्रोज मे निकल पत्ना, जिसमे प्राचीन भारतीय समाज और सस्कृति की स्राचार-भूमिका हो। मेरे लोज प्रय मे स्रोनेच विषय प्रस्तुत हुए और उनको परिसार का श्रीय स्वर्गीय डा॰ वास्मुदेवरारण अयवाल कृत 'ह्यंचरित एक साम्ब्रुटिक स्थ्ययनं और 'लाटकररी एक लास्कृतिक प्रध्यमनं थे। इसी फर् मे मगवतपारण उगध्याय रिचन 'कानिदास ना भारत' मौर डा॰ गायती वर्मा कृत 'क्वि कानिदास के प्रयो पर मायारित तस्त्राचीन मारनीय सस्कृति' भी मेरे समस प्रस्तुत हुए। यो तो नाविवाल सादि प्राचीन कवियो का समप्र साहिरय ही समाज न महत्वपूर्ण विचो मे सावनीय है, किन्तु उनके नाटको मे जो चित्र निर्मात हुए हैं वे कुछ प्रधिक वस्तुरफर एव महरे रुगो से भूक हैं।

नहते नी झाजरबन्ता नहीं कि साहित्य नी अन्य विषाझों नी प्रपेक्षा नाटक प्रधिक बन्तुपरक होन के नारण जुगविदोय के समाज के चित्रण के निए सर्वोत्तम सापन है। इरवकाव्य होने के कारण नाटक में बस्तु चित्रण के निए पर्याप्त खबनाय रहता है। करणनाएँ बस्तु में रगीन ननाती है, पूँपना नहीं चरती। धराएव मेरे मन का आयह हमा कि नयों न मैं प्राचीन नाटकों के झायार पर आचीन नारतीय हमाज के विविध परिपादकों का प्रतु-दीविन नर्के। मेरे मन ना यह आयह मेरे गुरु एव निर्देशक डा॰ पुरुपोत्तमलाल भागव से धरुमीशित होकर सस्तुन विषय के रूप मे प्रजीवृत हमा।

प्रस्तुत ग्रोध प्रवन्य नो मैंने धावदशक भूमिका के खीतिरिक्त नी धप्यायों में विभाजित निया है। भूमिका म साहित्य धीर सभाज के ध्रप्योत्यायय सम्प्रयंथ ना निरुपण है। साथ ही उसमें संस्कृत नाटक की मूल चेतना धीर समाजपरन विशेषनाभी ना धनिवार्य विवेचन है।

प्रथम ग्रष्याय में भालोच्य नाटन युन की सामाजिन, पार्मिक श्रौर मास्ट्रनित भवस्याभा का अनुशीसन इतिहास के परिपादवें में किया गया है। इस ग्रध्ययन से नाटकीय साहित्य पर धाधारित सामाजिक विवेचन को ऐति-हासिक पुष्टि प्राप्त हो सन्ती है।

दूसरे द्राच्याय में झालोच्य नाटको का सामान्य परिचय इस प्रकार दिया गया है कि विषय की पीठिका उत्तर कर पाठक के सामने झा गयी है।

धातीच्य नाटको में समाज का एक प्रमुख घग परिवार है, जिसकी गरीका दो स्वरो पर की गई है और वे हैं—राज-परिवार तथा समाग्य-परिवार। विजेचना से तत्कालीन समाज के पारिवारिक जीवन के जो जित्र निवार है वे समाजिक गर्वेषणा की दृष्टि सं प्रश्नवनीन हैं। इस दृष्टि से दृतीय सम्याय मौतिक एव विस्तृत भूमिका प्रमृत करता है।

चतुर्वं बच्याय में सामाजिक वर्गों का विवेचन द्याता है। समाजशास्त्रीम हृष्टि से यह विवेचन मंडा महस्वपूर्ण है।

समाज-श्रद्धाला की एक महत्वपूर्ण ककी के क्य में नारी का विश्वपूर्ण कवाचि नहीं विषया जा करता। प्राञ्चलिक समाख-दाश्योध अध्ययन के विविध रुटिशस्त्राचे ने कांन्य को क्यांक की वह सम्बद्धाला है। क्यांक क्या कि स्थाप के हिंदी की विश्वित की ग्रेयेवरा न केवल पारियारिक सृत्विका पर की ग्रामी है, बरन् सामाजिक, मानिक एव राजनीतिक सम्बार पर की की गई है। सत्त्रपुर पदम प्रचास जिवेच्य दुम की नारी के विश्वय में स्वांगीत्स कोवायारिक स्वोचन पदम प्रचास जिवेच्य दुम की नारी के विश्वय में स्वांगीत्स कोवियारिक

श्रम्माय छ से नौ तक महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिपादको का विवेचन है। शोध-प्रकृष्ण के इस भव मे तस्कालीन जीवन-पदित, शिक्षा-प्रशासी, धार्मिक एव राजनीतिक व्यवस्था और धार्मिक जीवन तथा कता-कीशल का पर्याव-सोकन किया गया है। सामाजिक जिवेचन के धन्तगेत इस सम्ययन की उपादिवात विस्करणीय नहीं है।

भुक्ते अपने गुण्यर डा॰ पुष्योत्तमनातः भाग्यं से झनेक उपयोगी निर्देश एव परापर्त प्राप्त हुए हैं। आमार-प्रदर्शन से प्रयुक्त कोई शब्दावकी मुक्ते उनके ऋस्त से मुक्त नहीं कर सकती। असल्य में उनके इस महाऋस्त को सदेव स्वीमृति प्रदान करती रहेंगी।

मही में घपने पिना डा॰ नरनामधिह धार्मा 'मस्ख्' के प्रति भी ऋतकता प्रकट किये बिना नहीं रह सकती, क्योंकि शोध-कार्य में मुक्ते उनसे भी समावस्यक निवस एवं सुभाव मिनते रहे हैं।

जहाँ मैं यह दावा करती हैं कि यह शोध-प्रबन्ध अपने बंग की भौतिक

कृति है वहाँ मैं घपनी भ्रान्तियो भीर विवयताओ को भी स्वीकार करती हूँ।

ग्रन्त मे मैं राजस्थान विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के ग्रधिकारियो, अपने भीर सहपाठियों को जिनसे मुक्ते अपने द्योध मार्ग म समय समय पर समुचित सहायता भिलती रही है, यन्यवाद दिय दिना नहीं रह सकती।

चित्रा शर्मा

# विषय-सूची

मूमिकाः साहित्य ग्रौर समाज

१-२५

साहित्य-परिभाषा, साहित्य का स्वमाव, साहित्य क्या है, जीवन का प्रतिरूपण क्यों? साहित्य के गुण, समाज, साहित्य और समाज-सम्बन्ध-निक्षण, सस्कृत साहित्य और अवस्थि विद्यालयाँ, सस्कृत-साहित्य में प्रात्म-प्रभिच्यजना तथा जसकी विद्योवताएँ, सस्कृत नाटक की प्रमुख विद्यालयाँ, सस्कृत नाटक की प्रमुख विद्यालयाँ, सुखा-त्वाता, युग-जीवन की प्रमिज्यक्ति, सपर्यं, पात्र-योजना, प्रञ्जु, तस्कृत नाटक के रस, पात्र और प्रता नाटक के रस, पात्र और प्रता नाटक के स्व

तत्त्व नाक्टक रस, पात्र ग्रार पद्य, प्रकृति-।नष्टा । १ ग्रालोच्य नाटक-युगः ऐतिहासिक परिचय

२६-६४

मास-युन क्षात्वास-युन प्राविक्त परिवारिक स्थिति, विवाह, वर्ण एव वर्ग-ध्यवस्था, नारी की स्थिति, रहन-सहन का ढग, शिक्षा-प्रणाली, धार्मिक स्थिति, लायिक स्थिति, कृषि, वार्षिण्य-व्यापार, विनिमय-मणाली उणोग एव व्यवमाय, राजनीतिक वातावरणः शासन-प्रणाली —केन्द्रीय शासन, प्रात्तीय शासन, स्वानीय प्रशासन, कृष्य स्थाय-व्यवस्था एव वर्ण्डविष्मान, राजनीय शासन, स्वानीय प्रशासन, कृष्य स्थाय-व्यवस्था एव वर्ण्डविष्मान, राजकीय साय, क्ला-कोशल, निक्कंष ।

२ ग्रालोच्य माटको का परिचय

**44-808** 

सास के नाटक: मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कव, कर्णभार, ऊरुमग, पव-रात्र, दूतवावय, वालवरित, प्रतिमा-नाटक, श्रमिषेक नाटक, श्रविमारक, प्रतिज्ञायोग-वरायएा, स्वप्नवामवदत्त, चारुदत्त, कालिवास के नाटक प्रति ज्ञानशाहुन्तव, मात्रविकाम्निमित्र, विक्रमीवशीय, झूटक का नाटक - मुच्छक्टिव ।

३ परिवार १०५-१५१

राज परिवार - राज-परिवार की परम्पराएँ, परिवार मे राजा का स्थान, योवराज्याभिषेव, राज्याभिषेक, राजमहिषी, राजा के सेवक: श्रृङ्कार सहाय, अर्थ सहाय, धर्म-सहाय, दण्ड सहाय, अन्त पुर-सहाय, सन्देश सहाय, राजा को वैदाभूषा, राज-परिवार के असायन - प्रानिवार्य नेपय्य, वैकल्पिक नेपय्य। राजप्रासाद: मरिएहम्बं, सबूरवष्टि-प्रासाद, समुद्र-एह, सूर्योमुख-प्रासाद मैघ प्रतिच्छन्द, देवच्छन्दक, शान्तिगृहादि, आमोद-प्रमोद : वसन्तोत्सव, धनु-महोत्सव, वर्गवर्धनोत्सव, विजयोत्सव, विवाहोत्सव, विवाह-पद्धतिया : विवाह-विधि, विवाह-भेद, मनोविनोद: मृगया, धूत-फीहा, सगीत एव नृत्य, चित्रकला, कया-धास्यायिका, धन्त-पुरीय कीडाएँ, इतर परिवार : समुक्त परिवार प्रया, पहर्गत, यहिली, पारिवारिक शिष्टाचार ।

#### ४. सामाजिक वर्ण एवं वर्ग-व्यवस्था

585-500 बर्एंट्यबस्मा का महस्य, वर्एं-विभाजन : शाहाण, क्षत्रिय, वैश्य, सूद्र,

धलयज जातिश्यवस्या, धनायं जातियाँ, वर्ग मेद : राखा-प्रजा, धनी-निर्धन, गृहस्थ-संन्यासी, स्वामि-सेवक, गुरु-शिब्य, निष्कर्य ।

### y. विवेच्य ताटकों में नारी का स्थान

25-5-6

नारी-समाज का अभिन्त बङ्ग, नारी का वद: गृहपद, प्रेयसी, परि-वार-पद, सामाजिक क्षेत्र, नारी की परतन्त्रता, विश्ववाधों की स्थिति, सती-प्रया. पर्दा-प्रथा. गणिका. शिक्षा और नारी, वंसे और नारी, राजनीति और नारी, नारी के प्रति साहित्यिकों का इहिकोछ।

#### ६. जीवन-पद्मति

5EE-55R

खान-पान, निराणिय मोजन : यहा, दाल एवं शाक, गसाले, तेल, मिष्ट इब्य, दुव, फल, सामित मोजन: माँग, मदिरा, मोजन-मेद, भोजन-पात्र, मोजन-वेला, आवास, बेशमूबा : सामान्य वेश-भ्या, यति-वेश, विवाह परि-धान. समर-वेश, अभिसारिका-वेश, वस्यु-वेश, प्रतिहारी की वेशभूषा, मृगया वेश, बवनी देश, विरहिगी और विरही के वेशभूषा, नियम वेश, वध्य-पुरुष की वेश-मृता, स्तानीय देश, डिण्डिक वेश, गोपालक वेश, सामाजिक उत्सव एवं आमोद-प्रमोद: शतब्यजीत्सव, इन्द्रयज्ञ-तत्सव, खूत-कीश, सगीत एवं नृत्य, वेश्या एवं गणिका, पशी-पालन, उद्यान, साँप का खेल, स्वाग, लोक-मान्यताएँ और जन-विश्वास : स्वप्न, शकुन, भूत-त्रेत, ज्योतिष, देव, ग्रलीकिक तत्त्व. सामाजिक प्रथाएँ, चिकित्सा-विधि, निष्कर्व ।

#### ७. शिक्षा-प्रशाली

228-238

शिक्षा-केन्द्र : ब्राव्यम, राजकीय शिक्षणालय, राजपुर, पुरु का महत्त्व, आदर्श दिक्षक, गुर-दक्षिएं।, विद्यार्थी जीवन, विद्याध्ययन की अवधि, अध्ययन के विषय, लेखन-प्रणाली, लेखन-सामग्री, निरुक्त ।

= धर्म एवं नीति

**4**38-5£8

पर्भ-परिभाषा, पार्मिक सम्प्रदाय : बाह्यए-पर्म, वैद्युव-पर्म, रीव-मत, बौद-पर्म, देवता : इन्द्र, वरुए, अषि, रुद्र, सूर्यं, मस्त्र, यम, विष्णु, ब्रह्मा, रिव, कुवेर, स्कन्न, कामदेव, स्मन्न, नारद, एड-देवता, नगर-देवता, वर्न-देवता, वर्ममेदा, स्मन्न, काम्यायमी, सरस्वती, स्वी, मानृ-देवियां, गोरी, प्रयं-देवता, प्रमाचरएा : यज, प्रत-उपवास, देवार्चन, मम्प्या-यन्तन, तपस्वप्ता, तीर्य-यात्रा, सस्कार अनिधि-सत्कार, कर्मबाव एवं पुनर्यं-म, नीति : सामान्य मीति, वरित, सत्य, बानसोसता, प्रतिसापासन, ग्यास-स्का, प्ररापामत-रसा, अभिवादन, वनपुरव, इत्तता, परदय-इष्टि, रामनीति एवं सामान्य वर्षा : सिन-पर्या-प्राप्त-रसा, वर्य-मज्जा, नगर-वियान, दण्ड-प्रस्तानी, साम्त्राय क्षान्त-प्राप्तान, वर्य-मज्जा, नगर-वर्षान, वर्ष्य-मज्जा, नगर-वर्षान, वर्ष्य-मज्जा, नगर-

रक्षक, चर, प्राकार एव दुर्ग, युद्ध, सन्वि। १. धार्थिक जीवन एवं कला-कौशल

754-760

्राध्यक्ष जावन एव चला-पाताच प्रदूर-५८०
जीविकोयार्जन के साधन : कृपि, क्यापार एव वास्त्रिय्य, क्य-विक्रय के
साधन, गोरालन, इतर उद्योग, राजकीय आय, झावाधन एव बातायात : पशु
एव यान, क्ला-कौदाल : जीवन में क्ला का स्थान कला में सामाजिक गौरव
की मनिहिनि, कसा का वर्मीकरएा : उपयोगी कला एव लिलत-कला,
साहित्य-कला, याहित्यकारों का सम्मान, सगीत-क्ला : गीत, बाह्यवन, मृत्य,
सगीतायोजन के धवसर, क्लाकारों का सम्मान, विज-क्ला : चिन-रचना के
भाषार, विजनेद, मूर्त-क्ला : विजनेत्या : कृपियानिक्टा के साधार-स्मृति, प्रदर्गन एव
पीमा, प्रमीनिक्टा, क्रास्त-कला :

उपसंहार ग्रन्य-सुची

7-939

संस्कृत नाटकों में समाज-चित्रण

# साहित्य ऋौर समाज

'सहितयो भाव साहित्यम्' के अनुमार शब्द और अर्थ की सम्पृक्ति को साहित्य कहते हैं। जो रचना शब्द और अर्थ के मजुल एवं मध्र सामजस्य को व्यक्त करती है वह 'साहित्य' सज्ञा से बिभिहित की जाती है। वैसे तो शब्द और अर्थ सदैव सम्पृक्त ही रहते हैं, उनके पार्थक्य का प्रश्न ही नही उठता । कविवर कालिदास ने 'वागर्याविवसम्पृक्ती' कह कर इसी सय्य की उद्घोपए। की है। महात्मा तुलसीदास ने भी 'गिरा-ग्ररथ जल-वीचि-सम कहियत भिन्न न मिन्न' कह कर वाली और अर्थ के अट्ट सम्बन्ध की ही पुष्टि की है। गब्द की मृष्टि जीवन ग्रीर समाज के लिए ही हुई है ग्रीर उसे श्रर्यं भी समाज ने ही दिया है। शब्दार्थं की अवगति भी समाज-सापेक्ष्य है। इसीलिए भाषा सामाजिक सम्पत्ति है। फिर उसमे सचित ज्ञान-रागि-साहित्य-समाज से असम्पृक्त कैसे रह सकता है।

प्रत्येक 'शब्द' अपने अर्थ के सहित काव्य नहीं होता और न वाणी का कोई भी रूप 'साहित्य' पद को विभूषित कर सकता है। केवल वह वाणी जिसमें जीवन (और समाज भी) प्रतिरुपित होकर सारल्य घारण कर लेता है, 'साहित्य' नाम प्राप्त कर पाती है। डा० रवीन्द्रनाय ठाकुर ने साहित्य की व्याख्या करते हुए लिखा है-"सहित शब्द री 'साहित्य' की उत्पत्ति हुई है, अतएव घातुगत अर्थ करने पर साहित्य शब्द में मिलन ना भाव हिन्दगोचर होता है। यह केवल भाव का भाव के साथ, भाषा का भाषा के साथ ही मिलन नही, वितर मनुष्य का मनुष्य के साथ, अतीत का वर्तमान के साथ और

१ बनदेव उपाध्याय सस्हान साहित्य का इतिहास, पृ० १२

२ कानिदास रघुवश,११

निकट का दूर के साथ अत्यन्त अन्तरग मिलन है।"" इस परिभाषा से भी साहित्य, समाज एव सस्कृति का एक विस्तृत चित्र-फलक स्वीकृत हो जाता है।

कहते की आवश्यकता नहीं कि 'धानेक साधनो में साहित्य ही एक ऐसा साधन है जिसमें काल विशेष की स्कृति अभिव्यक्ति का सहारा पाकर राजनीतिक आन्दोलन, धार्मिक विचार, दर्शन और को के रूप में प्रकट होती है। राहित्य मुनत भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है।'

एक अन्य प्रकार से भी 'साहित्य' शब्द की ब्युट्सिस की जाती है। अपने 'काव्य के रूप' में बाद गुलावराव इसकी ब्युद्सिस करते हुए जिससे हैं— 'हितेस सहित तरस मान साहित्यम्' व्यस्ति की हित के सहित हो उसे 'स-हित' कहते है और उस के भाव को 'साहित्य'। साहित्य में सदैय मानव-समाज के हित की भावना विद्यमान रहती है। सिवद को अध्यक्ति के लिए साहित्य की भावना विद्यमान रहती है। सिवद को अध्यक्ति के लिए साहित्य की भावना विद्यमान रहती है। अध्यक्ति के लिए साहित्य की कार-अविद को अध्यक्ति के लिए साहित्य की हास करों। अध्यक्ति के कि पेसी साहित्यक कृति समाज को प्रदान की है, जिसमें सामाणिक कत्याण वित्त है। यही कारण है कि इतनी सातिविद्यों के पश्चात् भी 'रामचरित मानव' के प्रति समाज का आवर्षण नहीं पटा। इनका कारण है उसमें सिनहित समाज-कत्याण।

कल्याण ।

'शाहित्य' मानव-जीवन मा समाज की जपेक्षा भादापि नहीं कर

फक्ता। 'कला बला के सिए' की बुदुभी बजाने वाले लोग भी कला में
केवल गीनवर्य की प्रमुखता का प्रतिपादन करते हैं, अद्भव्यक्ष रूप से
के भी उसमें शीवन और रामात्र की स्वीकृति दिये विता मही रह्द सकते। सब तो यह है कि साहित्यकार गाहित्य में अपना—अपने अन्तर का—ही अनावरण करता है, किन्तु साहित्यकार का अस्तर अनेक पत्रमुत्तियों का अद्युतावय होता है। उसमें बस्तु-लोक की अनेक निया-प्रतिचित्राण, पात-प्रतिचाल यूक्पक्ष से सबुल होते हैं जो बल्या-बीत्राव से साहित्य में अभिव्यक्ति प्राप्त करते हैं। "मानव

हा० रथीग्द्रनाथ ठानुर (हा० राजनुमार पाडेय द्वारा साहित्यिक निवध, पृ० २ पर उद्धत )

देखिये, वही, पूर ३

ने मादि से लेकर माज तक जो देखा सुना है, जो मनुभव किया है, तथा म्रपने वा म्रपने पार्श्ववर्ती समाज के हित के लिए जो मनन किया है, साहित्य उन सब विचारों वा अनुभूतियों का एक महत्त्वपूर्ण लेखा है।"3

मानव की भाव-विचार सम्पत्ति परमात्मा की श्रद्मुत प्रदाति है। मानवेतर प्राणियो म भाव और विचार का

साहित्य का स्वभाव एकान्तामात्र न होते हुए भी उनकी हीनता

अवस्य परिलक्षित होती है। मनुष्य ने अपनी विवेचना शक्ति से वर्णमाला का निर्माण किया श्रीर गद्य श्रीर पद्य मे उसका विलास दृष्टिगत हुझा । जब मनुष्य ने श्रपने भाव और विचार को गद्य-पद्य के मार्ग से प्रसारित करना प्रारम्भ किया तो 'साहित्य' भाविभूत हुथा। फिर घीरे घीरे भिनक्विहिलोक ' के सिद्धान्त से भित-भित्र प्रकार की नाव्य-पद्धतियाँ विकास म आयी। वृत्तकाव्य, स्फुटकाव्य, कथाएँ, ब्राख्यायिकाएँ, नाटक बादि अनेक प्रकारी के रप म मानव की चिरन्तन स्वोद्गार प्रवृत्ति चेतना के विकास के साय-साथ बहुमुली हो उठी । व्यक्तिगत और सामाजिक मनीवृत्ति के निर्माण की अनुक्लना में ही माहित्यिक मार्गो का भी निर्माण हमा होगा, ऐसा मानने म वाथा इसलिए नहीं होनी चाहिए कि साहित्य को शायद ठीक ही 'जीवन का दर्पए' कहा गया है। 'जीवन की ब्रालोचना' नहीं तब भी बात दूसरी नहीं हो जाती।

जबसे मानय की साहित्य चेतना संगठित होने लगी, तभी से इस प्रदन को लेकर अमस्य ब्यास्याएँ उपस्थित की

साहित्य स्या है ? जाती रही है और अब तक की जा रही हैं। प्रत्येक व्याख्या म कोई न-कोई तटि रही

होगी, तभी तो उसके बाद किसी नमी व्याख्या, पिछली व्याख्या के संशोधन श्रयवा भीमासा की ग्रावश्यकता पड़ी होगी। फिर भी यह कहना असभव दुस्माहस ही होगा कि प्रत्येक व्याख्या अगूद है क्योंकि प्रत्येक व्याख्या किसी विशेष विचार का सार लेकर अवतीरा हुई है। जब हम एक व्याख्या को दूसरी से स्वतन करके पहते हैं तो बह हमारी तबीयत से चिपकती हुई-सी प्रतीत होती है। साथ ही जब हम उस ब्याख्या से सम्बन्धित वाद भ्रादि को ग्रथवा दूसरी व्याख्या या

१ धमचन्द सत सिद्धान्तालोचन, पृ० ३८

व्याख्याओं को पढते है तो वे भी हमारी रुचि को ग्रह्श करती हुई प्रतीत होती है। एक कहानी है कि अधी के गाँव में एक हाथी पहुँच गया। गाँव के पाँच प्रख्यात अधे हाथी के समीप आकर उसकी व्याख्या प्रस्तुत करने लगे। किसी ने कान, किसी ने सुंड, किसी ने पीठ, किसी ने पर और किसी ने पूँछ पर हाथ फेर कर अपनी-अपनी प्रवस्थित के अनुसार हाथी का निरूपण किया। निजी स्थित के दुष्टिकीण से प्रत्येक की व्याच्या सही थी, किन्तु दूसरे के दुष्टिकीण से बहु दृष्टिपूर्ण थी। जीवन हाणी से गी विशाल है भीर उसी प्रकार जीवन का दर्पण गाहित्य भी। उसकी विशालता के समक्ष हम प्रकार आपने का बर्चा साहरूच ना जिसका क्याराजा करने हुन सब उस गौब के झयो के समान ही हैं और इंबीलिए केवल झपनी-झपनी स्थिति, झपने-अपने अनुभवो और खपनी प्रपत्नी अनुभूतियों के बृष्टिकोस्स से ही हम जीवन की व्याख्या या झालोचना करने में समर्थ हो सकते है।

'साहित्य क्या है ?' इस प्रश्न के वी स्वाभाविक पहुलू अनते है—एक तो वह जिसमे साहित्य की क्याकृति की जिज्ञामा उत्पन्न होती है और दूरारी वह जिसमे हम साहित्य के उद्देश्य की, स्वभाव की, बात सोचते हैं। 'उद्देश्य' के स्थान में 'स्वभाव' शब्द ही अभिक उपयुक्त प्रतीत होता है नयोकि इसमे किसी कृत्रिमता का बोफ नही है। स्वभाव को पहचान कर, उसे स्वीकार करके, इस उसे उद्देश्य बनाते है। साहित्योवय की प्रेरिएा में जिस स्वभाव की परिलक्षरण होती है वह साहित्य के विकास के साथ साहित्य का उद्देश्य बन जाता है ।

साहित्य के रूप को लेकर उसकी व्याख्या उपस्थित करने के निरपंक विष्टाचार की यहाँ कोई प्रावस्यकता प्रतीत नहीं होती। प्रनेक साहित्य-मनीषियो के साहित्य की व्याख्या से सम्बन्धित निष्कर्ष हमारे सामने है। इसके अतिरिक्त अपनी उपचेतना मे हम सब साहित्य श्रीर साहित्यिक कृतियों को देखते ही पहचानते श्राये हैं। श्राज तक कभी किसी ने ऊँट की अटपटी चाल या लखनवी सान को प्रथवा

कभा किया ने कर मा अटाचा जाया था प्याच्या वाचा का करा मनुष्य के दुख-सुख को भी 'याहित्य' कहने की भूत नहीं हो। ऊंट की मद्रपटी चाल, तस्तानदी शान और जीवन के सुख-दुख साहित्य नहीं हैं, किन्तु उनके प्रतिरूपण के सरस शब्द-पिजो को नेग 'साहित्य' कहने को। इस शब्द-चित्रों में गुज्य की सहस्वाम, उसके सस्कार और कल्पना-कीशल आदि का सहयोग सो रहता ही

है, किन्तु सबसे ग्रष्टिक योग-दान, रचयिता की ग्रनुभूतियो ग्रोर गवेदनाग्रों का होता है । ग्रुजुभूतियों ग्रोर सवेदनार्षे जब कुल्पना के

माध्यम से शब्द-गढ़ित से व्यक्त होती हैं, तब उनमे प्रेष्ण की ग्रद्मुत क्षमता ग्रा जाती है।

जीवन का चित्राग् मा प्रतिस्पाग् करना नथा मनुष्य के लिए जीवन का श्रीतक्ष्यां नथी ? श्रीतक्ष्यां नथी ? ककु ऐसा गादा सग-सा पहला है कि उसे प्राय

प्रतिक्षय क्ये ?

कुछ ऐसा गाडा सग-सा रहता है कि उसे प्राय
स्वय जीवन ही समक्ष लिया जाता है, क्योक वह जीवन की प्रतिनित्य
के रूप में प्रादुर्भृत होता है। किसी प्रकार को अत्यन्त सुकानुभूति
होने पर हमारे मुख से जो धानन्दोद्गार होता है, वह सस्तुत हमारी
सारिक सुक-रियित का भीतिक प्रतीकों में स्पान्तर है। प्राम्यन्तर
सुख-स्थित हमारा जीवन है और उद्गार उसकी प्रतिकृति, प्रतिभा
या उसका प्रतिरूप्य है, जो धानिष्ठित है। यह उद्गार ही लीक-समित
या उसका प्रतिरूप्य है, जो धानिष्ठित है। यह उद्गार ही लीक-समित
समस्ता से तात्सरिएक जीवनानुभूति का जो उद्गारस्वरूप प्रतिरूप्य
धनायात हो। या वह लोक-स्वीकृत होने पर ससार का खादि काव्य
कहाताया है।

उदगार कुट में हो या सख म, वह हदय को हलका करने का

उद्गार फप्ट में हो या सुख म, बह ह्रदम को हलका करने का प्राकृतिक साधन है। जब कोई बात ह्रदम के लिए सपहतीय हो उठती है तो उसका भार कम करने के लिए उद्गार होता है। जिस प्रकार प्रतिकच्छ को सर्वेदना को हृदम मही सह सकता है उसी प्रकार प्रति उद्याप को सर्वेदना को ह्रदम मही सह सकता है उसी प्रकार प्रति पुज सर्वेदना को सहना भी उनके लिए दुष्कर होता है। दोनों स्थितियों में ह्रदम पर भार पडता है और दोनों ही स्थितियों में उद्याप होता है। इस प्रकार प्रत्येक स्थिति में उद्याप प्रतानत का प्रतीक है। यही साहित्य की कृतिमता है भीर पहीं साहित्य की कृतिमता है भीर

े यह वात भी प्रविस्मरणीय है कि अनैव्यिक उदगार स्वभाव है। इसलिए एक बोर यदि वह किसी जीवन-क्षरण का प्रतिरूप है तो

देलिये, गुनन एव मस्तिक, साहित्य विवेचन, पु० =

र उदगार--जीवन का प्रतिष्पण, प्रयात नकल (कृतिम) । नकल के रूप में उदगार--जीवन की भाराधन्हति, धर्यात ग्रानन्द (वास्तविक)

दूसरी और बहु एक दूसरे सत्य जीवन, भ्रानन्द का सयोजक है। प्रतिरूपस (नक्त) का गुरा है कि वह किसी नव्य जीवन का स्नारम्भ कराती है। किसी विरिह्मिणी नायिका से पुछिये कि उसके विरुद्धी जीवन में प्रियतम के चित्र या उसके पत्र का आयमन होने से उसके जीवन में प्रियतम के जिन या उत्तर्भ पन का आगमन होने से उसकी लिए बीन-सा दूसरा जीवन मारम्य हो जाता है। इस प्ररम् का म्राया हो जाता है। इस प्ररम् का म्राया हो जाता है। इस प्ररम् का म्राया हो हो जाते हैं। इस प्ररम् का म्राया हो है। इसी प्रकार है से हो है है अग्यवा एकता स्वापत हो नयो हो। इसी प्रकार उद्गारच्य नकल—यदि वह वाल्मीकि को भी हो—प्रतिब्यक (बाल्मीक) में साथ सहामुन्नति प्रजात हुई उसके लिए एक नये स्थादि आनर्स्यम् ओवन का ढार बोजती है। साहित्य इस नये जीवन का भी उद्यार वस का दिए एक नये स्थादि आनर्स्यम् भी ज्वार वस तकता है। बाल्मीकि के उदाहरुए में ऐसा ही हुआ अधिकतर ऐसा ही होता ही होता भी है।

परम्ह ऐसा होने मे साहित्य (प्रतिचयण) धीरै-धीरै प्रतिच्छिक से ऐच्छिक बनने लगता है। स्वमात धीरै-धीरै उद्देश मे परिण्यत होने त्याता है। भार हनका करने के लिए जो स्वामार्वक उद्यार्ग होता है उसके महत्य की समक्ष कर हम उसे उपयोगी बनागे रागते हैं। बाल्मीणि का जो छादि-काव्य है वह तो 'मा निपाद' श्रादि में ही

प्रविक्त ही जाता है। उसके आगे को राम-चर्चा तो उपयोग के लिए प्रयुक्त (न कि प्रतिक्ष्यक्त) उद्गार है। उपयोग की सपयों में समके-बुक्ते प्रतिक्पकार के सामने फिर जपान ना तथा न समक्रम प्रात्वस्थार सामान भार प्रसंदय गानिसक बीक्ष करवान के माध्यस से जपस्थित होने साते हैं, जिनको हुलका करने की एक परसरा बनती है और प्रथमोदगार से उत्पन्न मानत्व की भावी भ्रद्धाला कायग रखने की लालता जाग महत्ती हैं। मिस्सन्टेह बाद के ये प्रसस्य बीक उनके भारी नहीं होते हैं, नका है। तार्वाच के प्रितित करने की शक्ति कैसी नहीं होती - बता इसमें स्वतः उद्गार को प्रितित करने की शक्ति कैसी नहीं होती - बता ये प्रिपकतर दवे पडे रहते हैं। इसलिए किसी भारी बीक्त का समा प्राप्त होने पर, उसी के प्रभाव से ये प्रक्छक कल्पना द्वारा अनावृत

हीलर जमरते हैं और गीए जदुबार का हेतु सबते हैं। किती बड़े सबसे डारा छोटे संसमी तत्यों को कल्पना होना, जनकी स्कृति होना, भीर जमान है। स्वाभाविक सहज उदगार की सुला कृहम कल्पना-मृत्ति को मानव-स्वामक भी गीए प्रकृति कह सकते हैं।

यह ब्रावश्यक नहीं हैं कि कल्पना में हमारे वोम्मे का उद्गम हमारे श्रपने व्यक्तिगत जीवन की ही कोई प्रत्यक्ष श्रनुभृति हो । पारस्परिक सामाजिक जीवन के ससर्ग और साहचर्य से समवेदना द्वारा वह दूसरी की अनुभूति में भी ही सकता है। संसर्ग की निवंतता अथवा प्रवनता के हेतु से समवेदना की जो निर्वेलता या प्रजलना बनेगी उसके कारए। दूनरों की अनुभूति से मिलने वाला बोक भी निर्वल या प्रवल वनेगा। प्रयलताम यह कभी कभी इतनायढ सकता है कि वह स्वकीय-जैसा ही प्रतीत होने लगे। श्रपने निकट प्रियजनो के सुख या कप्ट का भार, संसर्ग और समवेदना की गहनता के कारण, प्राय अपना-जैसा ही प्रतीत होने लगता है। साथ ही यह भी अवधारणीय है कि उक्त भार का सम्बन्ध निकटला और गहनता की अपेक्षा व्यक्ति की सबैदम-शीलता के साथ श्राधिक है। देखने म श्राता है कि बहुत से लोग भ्रति निकट की अनुभूतियों को भी स्वीकार करने में शिथिल रहते हैं। इनके विपरीत कुछ जोग ऐसे भी होते है जो कुछ धनिकटवर्तिनी समुभूतिया को भी शपना लेते हैं। वाल्मीकि ऐसे ही लोगों मे थे जिनके लिए एक सुरतरत कींच का वास्पविद्ध होना अपने वास्पविद्ध होने के समान ही था। श्रादि कवि के प्रतिसवेदी व्यक्तित्व ने उनके जीवन के न जाने कितने दये हुए बोभों के सचित ग्रावेग को धारए कर, भीच ने साथ उनका आरोप कराते हुए, उनके मुख से अनेच्छिक उद्गार करा डाला। निस्सन्देह इन उपादर म झारोप की करूपना का भाग था, गरमु किंव के हृदयकोप से अभिगृत होकर वह करना उसमें ऐसी मिल जुल गयी कि उसम और कवि के निजी बोभी म कोई भेद न रह गया और किन का उदगार प्रत्यक्ष भारमानुभूति का सा उदगार हो निकला। पोछे कहा जा चुका है कि 'माहित्य' उद्गार है और उद्गार

भाव कहा जो जुका है कि माहित्य उद्योग है और उद्योग है कि स्वरूप, हृदय को हुनान करने की दृष्टि से, सान्य व तो है। फलत साहित्य का स्वराज भी सान्य ही है, यह कहने मे कोई साधा प्रतीस मही होनी। यह आनन्य जीवन की प्रतिकृति (नक्तन), प्रतिमा, प्रतिक्ष, पुनरावृत्ति पुन सुजन द्वारा मिलता है। पुनरावृत्ति भी आनन्य ही है। पुनरावृत्ति मुल आनन्योद्यार की प्रेतरणा ना रूप ऐन्द्रिक गौर अमेन्द्रिय दोनो अवार का है। ऐन्द्रिक्ता में क्लान का निवास मिलक उन्मुक्त होता है, स्पलिए वह सहज अनेन्द्रिक उद्मार की सुलना म गोए परवी को ही अविकारिएगी है, परन्तु उद्गारी के

5

संवेदना-प्राबल्य में समबेदना और धारमानुत्रूति के एकाकार होने पर वह सहजोदगार का रूप घारण करके मौलिक श्रानन्द की जननी बन सकती है।

्र साहित्य जब 'साहित्य' कहलाने लगा तब वह सामाजिक वस्तु बन गया। लोक मे जिसे साहित्य-रूप में साहित्य के पुरा पहचाना जाता है वह तभी बनता है जब हमारी चक्ति एकाधिक व्यक्तियों का लक्ष्य रखती है।

जाक एकाशिक व्यक्तियां ने लिख्य रेखता है। इसका प्रभिन्नश्य यह है कि व्यक्तियत प्रान्तवीद्गार को समाज ने अपने िया सी क्षान्तवीद्गार को समाज ने अपने िया सी क्षान्तवीद्गार के साम के ने स्वीकार करना स्वाभाविक हो गया। इसी से उद्गारी को यह लक्ष्य भी रखना पड़ता है कि उसके द्वारा की गयी जीवन की पुनरावृत्ति, प्रान्तव का उद्गार, समाज के लिए भी प्रयांत् समाज के भी, जीवन की पुनरावृत्ति प्रमुख्य की स्वीक्ष के सी जीवन की पुनरावृत्ति साम के लिए भी प्रयांत्त समाज के भी, जीवन की पुनरावृत्ति साम समाज के मानी सी को सी स्वीव प्रमुख्य के मानीसिक बोभों के साथ प्रयोग यानीसिक बोभों के साथ प्रयोग यानीसिक बोभों के साथ क्षेत्र प्रतिष्ठ नाकि ए ताथ अपन भागाश्वय वाक्षा क स्रार्थिय की प्रतिष्ठ ताहित्य में होनी चाहिए। यह स्थाआविक पद्धित है। जीवन के सुल-दु कार्यिक में व्यक्तिगत रूप-वैविध्य के होते हुए भी उनमें प्रत्यन्त समानता भी है।

परमात्मा ने मनुष्य को विलक्षण मेथा दी है, भाव-सम्पत्ति दी

परमारमा ने ममुष्य को विलक्षण येथा दो है, आव-सम्मत्ति दी है, किन्तु उदाको एक विलक्षण प्रकृति भी दी है समाज कि वह दूसरे मनुष्यों के साथ ही रहता है। इतीलिए हम बकेले मनुष्य की, मनुष्य रूप में, बर्पना नहीं कर सकते। समाज-सारम के पिकतों ने भी पही सिख किया है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है, बहु समाज में में हो जमतान, बढ़ता, विकास के ही सामाजिक प्राणी है, बहु समाज में ही जमतान, बढ़ता, विकासत होता और मरता है। ममुष्य का जीवन सामाजिक परिप्रेक्ष में ही राण्येक है। इतर मनुष्य के साथ उसके सम्बन्ध उसके सामाजिक दु:स-पुष्य का निर्माण करते है। उसकी सवेदना में प्रिपकांत उत्पास समाज की होती है। मनुष्य को प्रकृति कोर संस्कृति के निर्माण में भी समाज का योगदान बनिस्मरणीय है। उद्गारों की निर्मित कीर निष्कृति भी समाज कहते हैं वह मनुष्यमात से ही निर्मित नहीं है। मनुष्य के साथ प्रकृति का भी सम्बन्ध है। जब मनुष्य प्रति साथ प्रकृति का भी सम्बन्ध है। जब मनुष्य प्रति साथ प्रकृति का भी सम्बन्ध है। जब मनुष्य प्रति साथ प्रकृति का भी सम्बन्ध है। जल मनुष्य प्रति साथ प्रकृति का भी सम्बन्ध है। जल मनुष्य प्रति साथ प्रकृति का भी सम्बन्ध है। जल मनुष्य प्रति साथ प्रकृति का भी सम्बन्ध है। जल मनुष्य प्रति साथ प्रकृति का भी सम्बन्ध है। जल मनुष्य प्रति साथ प्रति हो। जल सहस्य से स्वत्व है। तथा सुष्य प्रति साथ से स्वत्व से साथ प्रति हो। कि स्वत्व से साथ प्रति हो। कि स्वत्व से साथ प्रति हो। कि साथ से साथ प्रति हो। कि साथ से साथ सिक्त से साथ साहावित

होता है तब प्रकृति से उसके सम्बन्धों की उपेक्षा कैसे की जा सकती है। जिस गाम का वह दूब पीता है, जिस अदब मा गज पर सवारी करता है, जिस अदब को वह वार-पार पाठ पढ़तात है, बमा पढ़ करता है, जिस अदब को वह वार-पार पाठ पढ़तात है, बमा पढ़ विस्मरणीय है ? ये सब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समाज के प्रमा वह वयाकि मानव-जीवन के धात-प्रतिवाति, निया-प्रतिनिक्ताकों में इनका भी प्रदूट भोग है। दूसी प्रकार चीति-रिवाज, रहन-सहन, वेश-भूमा, वीज-पाठ ग्रादि भी सामाजिक परिणाइक में महत्त्वहीन नहीं है। सक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि देश-काल के वातावरण में मनुष्य की समिट ही समाज है। व्यप्टि के विना समिट की और समाज है। व्यप्टि के विना समिट की स्वर्ण की करना केवल हुफ्करना हो सकती है।

पीछे कहा गया है कि साहित्य साहित्यकार के प्रन्तर का सरल सन्दर्शन है, जिसमे देश-काल की प्रति-

साहित्य प्रोर समाजसंबंध निरूपण्यः

जाता विज्ञा साहित्य होती है। इसी प्रतिच्छाया में

साहित्य समाज से सम्बन्धित होता है। इसके

प्रतितिक्त साहित्य होता है। इसके

साहित्य समाज से सम्बन्धित होता है। इसके

साहित्य साज तक प्रेरणा का लोत बना हुआ है। साहित्य प्रपने गीण

रूप में मनीविनोवन करता है, किन्तु प्रमुखतवा सामाजिक निर्माण्य में

योग देता है। साहित्य का सत्याय सामाजिक भूमिका पर प्रतिदिक्त है,

दिवाना करवाएकारी है और सुन्दराव कलामय होने से मन को मोहितविनोदित नरता है। बाबु गुलावराय ने माहित्य प्रमाज के। एवं

प्रत्योग्याथय सम्बन्ध की पियेचना करते हुए कहा है कि 'कवि प्रौर

तेलक किनी ग्रदा में समाज के प्रतिनिधि होते हैं और किसी ग्रदा में

समाज की ध्रपनी प्रतिना श्री व्यक्तित्य के प्राचार पर तये भाव

प्रति त्वार प्रदान करते है। समाज कि मीर लेखको को बनाता

है श्रीर लेखक तया किसाज को बनाते हैं। दोनों में प्रावान
प्रतान तथा किया प्रतिनिधा—माव चलता रहता है। यही रामाजिक

कन्नित का नियासक सूत्र वनाता है।'

यह उनिन जंनत ही प्रतोत होती है कि साहित्य समाज का दर्पेग होता है। जैसा बिब होता है नैसा ही प्रतिबिच होता है। समाज वे धाचार-विचार, चाल-ढाल, उत्थान-पत्तन का ज्ञान उसके

१ बायू गुनावराय बाच्य के रूप, गृ० ८

तत्कालीन साहित्य से भलीभाँति हो सकता है। अञ्छा साहित्यकार प्रपने युग का प्रतिनिधि होता है। काबिदास, माझ, वार्ण प्रादि अपने-अपने युग के प्रतिनिधि थे। इसी प्रकार कवीर, सुलसीदास प्रादि भक्त-कवि भी अपने-अपने युग के प्रतिनिधि थे। इनकी रनासी मे युग उसी प्रकार से महत्त्वता है जैसे दर्पण मे मुख् गवेषणा हमे अनुठे ऐतिहासिक तथ्य प्रदान कर सकती है।

जिस प्रकार वेतार के तार का ग्राहक ग्राकाश-मडल मे विचरती हुई विद्युत् तरगो को पकड कर उनकी भाषित शब्द का माकार दे देता है, उसी प्रकार कविया लेखक अपने समय के यायु-मडल मे बूमते हुए विचारों को मुखरित करता है। बैसे तो इतिहास-कार भी भपने समय की बात कह सकता है और कहता है, किन्तु कवि या साहित्यकार के कहने की श्रेली अनूठी होती है। साहित्यकार के कथन मे जो तथ्य होता है उसका अनुभव तो सभी करते हैं, किन्तु कह नहीं सकते। वह अधूर्त को भूतं, अचेतन को चेतन और अस्पष्ट को स्पष्ट करने की समित रखता है।

का स्पष्ट करने की वानित रखता है।

साहिस्सकार समाज का मस्तिरक भी होता है भीर मुख भी ।

उसकी म्रावाज समाज की म्रावाज होती है। एक भीर वह समाज के

विचारी और माजों को म्रावाज होती है। एक भीर वह समाज के

विचारी और माजों को म्रावाज होती है। एक भीर वह समाज के

हं भीर इसरी और वह म्रपने की म्रावा स्वस्ता सदेश समाज को

व्यक्तित करता है जिससे सामाजिक विचारी का शोमन, माजन एक

पीयरा होता है। हम ताहिस्यकार के माध्यम से तमाज के हर्य तक पहुँच सकते है। इसीलिए यह उनित समीचीन ही बीज पडती

है कि 'जहाँ न पहुँच रीव वहाँ पहुँचे किव ।' ऐतिहासिक घटनाएँ और परिस्थितियाँ साहिस्यकार की श्वसानों से निक्षित होकर पाठकों।

भीरण परिस्थितियाँ साहिस्यकार की श्वसानों से नक्षित होकर पाठकों। श्रीतात्री या दर्शको के कल्पना चलुओ के सामने या नाचती है। भूत और यत्तेमान का सम्बन्ध ओडने याला साहित्यकार भविष्य की कल्पना करके, उसकी सम्भावनाओं का अनुमान करके भावी योजना का निर्वेश अने प्रत्या पात्र क्षेत्र का निर्वेश अने का निर्वेश अनित करता है। कहने की खावस्थकता नहीं कि साहित्य के जिन चरखों में हबता है, उन्हों में स्थिरता भी है। उसके मूक स्वर में पोपकत्व भी है और कान्तिकारिता भी।

किसी जाति या समाज के सास्कृतिक सूत्र भी साहित्य में ही

देखिये. प्रो॰ धर्मचन्द सन्त सिद्धान्तालोचन, पृ॰ ६२

गहनता से सनितत मिलते हैं। सस्कृति के प्रमुख सूनो नो साहित्य-पट मे नियोजित परके माहित्यकार भावी पीढ़ियों के उपयोग एवं पथ-प्रदर्शन के लिए समाज को प्रदान करता है। समाज-निर्माण और सास्कृतिक उत्थान वा मार्ग प्रदिश्त करने में भी साहित्य से अमोच सहायता ली जा सकती है।

जो कलाएँ बीख के द्वारा बन्तरात्मा को बाकपित करती हैं, वे ही संस्कृत साहित्य और जिल्हों की जावना और गोंन्दर्य इति तथा सिंह्य साहित्य और उसके बिरोवताएँ उसके अर्जनशील मन की विदोध पत्रीजूत अभि अर्थाक्त नमनशील और यहुमुकी आत्म अभिव्यक्ति की लोज तो उसके साहित्य में ही वो जा सकती है, वर्थांक स्मप्ट असकार को समस्त साहित्य में हो की जा सकती है, वर्थांक स्मप्ट असकार को समस्त साहित या उसकि है अपने असम्त मुशे के साथ अपुक्त किया गया शब्द ही अभिव्यक्त अन्तरात्मा के विभिन्न रूपो, अपृतियों और बहुल अर्थों को अत्यन्त सुक्त और विविध रूपों में हमारे सामित अर्थे कर करता है। किसी साहित्य भी महता सर्वप्रयम उसकी वियय-वस्तु के सुल्य एव महत्व में और उसके विवार की उपयोगिता तथा आकारों के तीन्त्य

में निहित रहती है।

सस्कृत भाषा की प्राचीन एव डच्चकाँटिक रचनाएँ अपने गुण स्वा उत्तर्भ के स्वरूप एव बाहुत्य दोनों में, शार्कशाली मीतिकता, स्रोजित्वता और सुन्दरता में, अपने सारप्तत्वत कीशल श्रीर गठन में, वानशानित के बैनन, श्रीनित्य और आकर्षण म तथा अपनी भावना के किन को उच्चता श्रीर विशासता में अत्यान्त रपप्टत ही विश्व के महान साहित्यों के बीच स्वयुनित में प्रतिप्ठित है। निर्णित वैने योग्य स्वाक्तियों ने सर्वेन ही गह स्वीकार किया है कि स्वय सरहत भाषा भी मानव मन के द्वारा विकसित किये हुए अत्यन्त महान्, अत्यन्त पूर्ण श्रीर अद्वसुत रप से समर्थ साहित्यक सामनों में से एक है। इसका गुरा एव स्वरूप, अयुने-आप म इम यात नम पर्योग्त प्रसाण है कि जिस जाति के मानस को इसने व्यक्त किया है एव जिस सस्कृति को प्रतिविवित करने के लिए इसने एक दर्यण का काम दित्या है, उतका गुण सौर वैद्यादन क्या था। किया और चित्तकां ने इसका की महान् भीर उदास प्रयोग किया वह इसकी समदास्रों की उच्चता के

देखिये, बलदेव चपाध्याय सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३

मुकाबले हीन कोटि का नही था। यह बात भी नही है कि भारतीय मन ने ऊँची, सुन्दर और पूर्ण रचनाएँ केवल संस्कृत भाषा में ही की है, किन्तु अपनी अत्यन्त प्रघान, रचनात्मक और वृहत्तम कृतियो का बहुत बडा भाग उसने इसी भाषा मे व्यक्त किया है।

जो जाति ग्रोर समाज ग्रपनी महान् साहित्यिक कृतियो ग्रीर साहित्यिको मे वेद और उपनिषदी, महाभारत और रामायण जैसी शनितशाली रचनामो को तथा भास, कालिदास, भवभूति स्रादि को गिनती है उस जाति और समाज को गौरवान्वित मानना होगा। सस्कृत साहित्य एक ऐसी मानसिक कियाशीलता का परिचय देता है जिसका सूत्रपात हुए तीन सहस्र वर्ष से भी ग्रधिक हो गये है और जो म्राज तर्क भी समाप्त नही हुई है। वस्तुत यह भारतीय संस्कृति मे विद्यमान तथा प्रसाधारण रूप से सबल और प्राणवत किसी वस्तु का भ्रनुपम, सर्वश्रेष्ठ तथा भ्रत्यन्त श्रकाटच प्रमाण है ।

राष्ट्र के गौरवमय यौवन-काल मे, जवकि एक अगाध भाध्या-

रिमक अन्तर्वृद्धि कार्य कर रही थी, एक गुक्ष्म अन्तर्शनात्मक दृष्टि भीर एक महान रूप मे निर्धारित, गंभीर एव विशद वीद्धिक भीर नैतिक विचार श्रृद्धला तथा साहसिक कार्य थारा एव सुजन-प्रवृत्ति कियाशील भी जिन्होंने उसकी अनुपम सरकृति एव सभ्यता की योजना खोज निकाली एवं निर्धारित की और इसका स्थायी भवन खडा किया, ऐसे युग मे हमे भारत का प्राचीन मानस उसकी प्रतिभा की चार परमोच्च कृतियो-वेद, उपनिषदो भ्रौर दो बृहद् महाकाव्यो हारा प्रस्तुतीकृत मिलता है। इनमें से प्रत्येक एक ऐसी कोटि एव दौली की रचना है जिसकी समता की रचना किसी अन्य साहित्य मे सरलता से नहीं मिल सकती। इनमें से पहली दो उसके भाष्यारिमक भौर धार्मिक स्वरूप का प्रत्यक्ष आधार है। शेप दो उसके जीवन के महत्तम युग की है। बेद ने हमे इन चीजो के प्रथम प्रतिरूप धौर श्राकार प्रदान किये और उपनिषदों के बाद हम उस बुद्धि एवं जीवन की तथा उन आदर्शभूत नैतिक, सौन्दर्यात्मक एव चेत्य बीर भाविक, ऐन्द्रिय तथा भौतिक ज्ञान, विचार, दृष्टि और अनुभय की श्रोजस्वी और सुन्दर प्रतियोगिता को देखते हैं जिनका कि हमारे महाकाव्य प्राचीन मभिलेख है भौर जिन्हे शेष समग्र साहित्य स्रविच्छिन रूप से विस्तारित करता है, परन्तु ग्राधार बराबर बही रहता है।\_जो नमे एव प्राय व्यापनतर प्रतिहर तथा ग्रयंपूर्ण ग्राकार पुरासो के

٤ą

परिवर्तन करने के लिए हस्तक्षेप करते हैं वे अपनी मूल गठन और प्रकृति में ग्रादि दृष्टि एवं प्रथम भ्राध्यात्मिक अनुभव के रपान्तर श्रीर विस्तार ही हैं। वे ऐमे व्यतिकम कदापि नहीं हैं जो उससे सम्बन्ध ही न रखते हों । संस्कृत साहित्य-सर्जना में महान् परिवर्तनों के होते हुए भी, भारतीय मन की दृढ लगन एवं अविच्छिन्न परंपरा कायम रही है, जो वैसी ही सुसंगत है, जैसी हम चित्रकला घौर

मूर्तिकला में देखते हैं। पवित्र साहित्य के रूप में वैदिक मुक्तों को ठीक तरह से सममाने का एक बड़ा भहरव यह है कि यह हमें संस्कृत साहित्य में भारतीय मन पर शासन करने वाले प्रधान

मात्म-मिन्यंजना विचारों का ही नहीं, अपिनु उसके माध्यारिमक बनुभव के विभिष्ट प्रकारी, उसकी कल्पना के मुकाव, उसके सर्जनशील स्वभाव तया उसके उन विशेष प्रकार के श्रयपुर्ण हमों का भी मूल स्वरप देखने में सहायता पहुँचाता है,

जिनमें वह श्रात्मा और पदार्थों तथा जगत भीर जीवन के सम्बन्ध में प्रपनी दृष्टि की हटतापूर्वक व्याख्या करता था। भारतीय साहित्य के एक बड़े माग में हमें अन्तः भैरएग और आत्म-सभिव्यंजना का वही मुकाब देखने को मिलता है, जिसे हम अपने स्यापत्य, चित्रकला और मूर्तिकला में पाते हैं।

इसकी पहली विशेषता यह है कि इससे सतत रूप से धनस्त एवं बैश्व सत्ता का बीध होता है, तथा बस्तुओं

आतम-प्रभिव्यंजना का भी उस रूप में भान होता है जिस रूप में की विदेवताएँ वे वैश्व हिंद में या उसके द्वारा प्रभावित होने पर दीखती हैं, श्रयवा जिस रूप में वे एक मेव

भौर भ्रनन्त की विधालता के भीतर या सम्मुख रखने पर दिखायी देती हैं। इनकी दूसरी विशेषता यह है कि यह अपने आध्यारिमक अनुभव को आम्यन्तर चैत्य स्तरसे निये गये रूपकों के परमेश्वयं के रूप में अथवा उन भौतिक रूपकों के रूप में देखने ग्रीर व्यक्त करने में प्रयुक्त होता है जो चैत्य अर्थ, प्रभाव, रेखा और विचार-छटा के दबाब के द्वारा रूपान्तरित हो चुके हैं। इसकी तीसरी विशेषता पार्थिव जीवन को प्राय: परिवृद्धित रूप में चित्रित करने की है, जैसाकि महाभारत ग्रीर रामायण में हमें हप्टिगोचर होता है, ग्रथवा उसे एक विद्यालतर वाता-

बरण की शुक्रताओं में मुख्य रूप प्रदान कर तथा पायित सर्प की सपेसा किसी महत्तर अर्थ से समुद्रत करके विशित करने या, कम-वे-कम उसे केवल उसके सपने पृथक् रूप में ही नहीं, प्रख्युत माध्यारिमक स्रोर सात्तरात्मिक लोकों की पुष्ठभूमि में प्रस्तुत करने की है।

बाप्पात्मिक एवं अनन्त सत्ता निकादस्य और बास्तविक है स्वाप्त देवता भी बास्तविक है और हम से परे के लीक हमारी सत्ता से परे होने में घरेला कही अविक उत्वक्त भीतर अवस्थित हैं। भी चीज परिचमी मन के लिए एक गाथा और कल्पना है वह यहाँ एक वास्तविक सम्प है और है हमारो खान्तरिक सत्ता के जीवन का एक तर्तु। भी भीज वहीं एक खुरूद काल्यम्य परिकल्पना और दार्गिक विचारण है वह यहाँ एक ऐसी वस्तु हैं जी अनुभव के लिए सबंबा उपन्त्रवार मार्गित विचारमा है। भारतीय मन की यह मबुक्ति, उसकी माध्यार दिमक सहस्यता एव धान्तरारिक अर्थाक बार्गित की वह और उपन्त्रवारी तथा गीछे के धार्मिक एक धम्प्रवारीतिक कान्य को अन्त प्रेरणा की वृष्टि से इतना शक्तिकाली और धिमयजना संघा रूपक की वृष्टि से इतना शक्तिकाली और धिमयजना संघा रूपक की वृष्टि से इतना शक्तिकाली और धिमयजना संघा रूपक की वृष्टि से इतना शक्तिकाली और धिमयजना करती है। धाप ही प्रीक्त जीतिक साहित्य में भी काल्यमय भावना और करनना की किया पर इसका प्रमाद बुख कम समिभुतकारी होने पर भी धरयन्त अरसक कर में दृष्टितीचर होता है।

परवर्ती सङ्कत आहित्य की एक विशेषता प्रविस्तर्राणेय हैं : बह सह है कि उसने धर्म और राजपरिवार का साम नहीं छोड़ा है। मेरी दृष्टि में यह कहना उचित न होगा कि सस्हत को कैनल माहाणों ने प्रमानामा धेन भीर बौट परिवारी ने भी सहत्त के मुद्द साहित्य की सृद्धि नी। सस्कृत साहित्य के सम्बन्ध में यह आरोप भी दूरगामी नहीं हैं कि उसमें लोन-जीवन उपेरिता रहा है। सस्वत साहित्य वा गहन नवेषण इस तथ्य वो अनान्त बर देता है कि उसमें भारतीय समाज भपने विविध पहलुओं में निर्मालत हुमा है। हो, साहित्य में युग-मान्यवाएँ जितनो प्रमुखता प्राप्त व रती हैं उतनी हो प्रमुखता सस्वत साहित्य संसमय-समय पर उनको मिलती रही हैं

रे. योगरान श्री करविन्द आरतीय माहित्य की धन्तरात्मा, पर्मपुग (प्रमेत १४, यत् १६५७)

हैं । संस्कृत साहित्य में सामाजिक निरूपस के मूल्यांकन के समय आलोचकों को इस सम्बन्ध में सतक रहना चाहिये कि वे तत्कालीन मूल्यों पर प्रपने दृष्टिकोस को आरोपित तो नहीं कर रहे हैं, बन्यया सही मूल्य प्रकट नही हो सकते।

संस्कृत के साहित्य-शास्त्रियों ने साहित्य (काव्य) को दृश्य श्रीर धव्य, दो भ्रंगों में विमक्त किया है। रे दूश्य वह संस्कृत नाटक झीर काव्य है, जिससे प्राप्त ज्ञानन्द का माध्यम समाज द्षिट है। साहित्य या काव्य के इस अंग को

'नाटक' कहते हैं। 'रूप' से सम्बन्धित होने के कारए। इसे 'रूपक' भी कहते हैं। 'नाटक' शब्द 'मद' बातु में बना है, जिसका प्रयं है 'प्रभि-नर्यकरना'। श्रभिनेताकाही दूसरानाम नटहै और नटकाभाव नाटघ है। रूपक, नाटक, नाटच मादि का सम्बन्ध मिनय से है-मट की स्थिति, वेशभूषा, किया ब्रादि से है। इस दृष्टि से 'रूपक' या 'नाटक' यभिया बहुत सारगभित है। नाटक की सबसे वडी विशेपता यह है कि हमारे सामने रंगमंच पर जो कुछ प्रस्तृत होता है, उस सबका सम्बन्ध समाज से होता है। रंगमंत्रीय निर्देशों में भी सामाजिक परि-प्रेक्य की गवेपए। की जा सकती है। जहाँ श्रव्य काव्य वर्एनीं द्वारा समाज को पाठकों या श्रीताओं के कल्पना-लोचनों के सामने लाता है महीं नाटक पातों के अभिनय और रगमंत्रीय दृश्यों में समाज की अभिव्यक्त कर देता है। इसके अतिरिक्त कथोपकथनों मे भी समाज की वर्णनात्मक श्रभिव्यक्ति मिल जाती है। श्रतएय नाटक सामाजिक म्रमिट्यक्ति का भीड़तम शावन है।

नाटक के सम्बन्ध में, मेरी समक्त में, यह मत उचित ही प्रतीत होता है कि 'नाटक हमारे यथार्थ जीवन के ग्रधिक निकट है, उसका मानव-जीवन और समाज से बहुत निकट थीर घनिष्ट सम्बन्ब है। कविता, उपन्यास, कहानी इत्यादि समाज के चित्र को कल्पना होरा पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं, किन्तु नाटक शब्द पात्रों की वेशभूपा, मार्कित, भावभंगी कियाओं के यनुकरण श्रीर भावों के यभिनय तथा प्रदर्शन द्वारा दर्शक को समाज के यथायें जीवन के निकट ला देते है। श्रव्य या पाठ्य काव्य का समाज से सीधा सम्बन्ध नहीं, उसमें केवल शब्दों और भावनात्मक चित्रों द्वारा कल्पना के योग से मानसिक चित्र

दृश्यश्रव्यत्वमेदेन पुन : काव्यं द्विधा मसम—साहित्यदर्पेण . ६।१

प्रस्तुत किये जाते हैं। नाटक में कल्पना पर अधिक बल नहीं दिया जाता, रंगमंच की सहायता वे समाज के वास्तियिक उपादानों को एकन कर दिया जाता है।" इस कथन से स्पष्ट है कि नाटक में जीयन को जीनव्यक्ति अधिक अस्तयक्ष और यथार्थ होती है।

यह कहना नितान्त अनुचित होगा कि संस्कृत के राजाश्रित यह कहनी। ततान्त अनुभवत होगा। कि सहस्व के राजान्य कियों और नाटककारों की दृष्टि सामंत्री जीवन की संकीएं परिष्टिं को छोड़ कर सामान्य जन-जीवन तक नहीं पहुँच पायी। यह ठीक है कि संस्कृत नाटकों की सृष्टि में राज-परिवारों का प्रतिक्षण प्रमुखता से दुषा है, किन्तु सामान्य युग-जीवन मी उपिस्त नहीं हुमा। साहित्य में युग की उपेक्षा कवापि नहीं हो सकती। कभी प्रत्यक्ष रूप से भीर कभी अप्रत्यक्ष रूप से युग साहित्य में भाकिने ही लगता है। संस्कृत नाटकों में भी युग की भाकी मिलती है। ही, धार्मिक और सामाजिक वर्गी की सत्कालीन मान्यताओं के अनुस्प ही नाटकों में प्रतिरूपित किया गया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्राचीन संस्कृत नाटकों के युग में जितना सामंती-संस्कृति की महत्त्व था उतना ही आश्रम-संस्कृति का, किन्तु ये संस्कृतियाँ श्रपनी विशेषताधों के बावजूद भी एक-दूसरी से असपृक्त नहीं थीं और इनका सम्बन्ध, प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः लोक-जीवन और लोक-संस्कृति से भी रहता था। जहां राजपरिवार, राजभवन और पैसा-सिक ब्यवस्थाएँ थी, वहाँ राजसेवक, परिजन, परिचारिका सादि की ब्यवस्था भी थी। ईसी प्रकार आश्रमों और मठों का जीवन भी सामान्य जीवन से एकदम कटा हुआ नहीं था। इसके अतिरिक्त राजा का सम्बन्ध उस प्रजा से होता था जो बनेक रीति-रिवाजों को मानने बाली, विविध धर्मों को समाहत करने बाली तथा धनेक स्पवसायों और ब्यवहार-विधानों को भंगीकार करने वाली थी। इस प्रकार राज-परिवार और राजधर्म का सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार आश्रम-जीवन और जन-जीवन से अवश्य रहता था।

संस्कृत नाटक वा सामाजिक परिपास्त्र इस जिम्त से भी सर्मापत होता है कि 'संस्कृत नाटककार समाज के विदाद वातावरण में विचरण करता था, समाज के सुत-दुःख की भावना उत्तर स्राप्त को स्पर्ध करती थी, वह दीन-दुःखियों को दोनता पर चार स्राप्त

१. क्षेमचन्द्र 'सुमन' व मल्लिक : साहित्य विवेचन, पृ० १६१

बहाता था और मुखी जीवों के सुख के उमर रीभता था। वह भारतीय समाज का ही एक प्राणी था, जिसका हृदय सहानुभूति की भावना से नितान्त स्तिष्ध होता था। वह भरी काव्या (नाटका) म जनता के हृदय को बातों का, प्रदुत्तियों का, जितना वर्णन करता था उतना ही प्रपने देश की सस्कृति के मूल्यवाच् श्राप्यारिमक विचारों का भी अपनी रच-नामों में विनरण करता था।""

कहने की भावश्यकता नहीं कि नाटक अपने धाप म एक तामाजिक सस्या (Institution) है। नाटक की मूल प्रेरणा उसकी हवयात्मकता है। वाभिन्य-मापेक्ष होने से उसका सम्बन्ध देखने दिखाने से है, अतएय नाटक की यह प्रकृति तमाज से उसका भादूट सम्बन्ध यमा देती है। अभिनय के असिरिक्त नाटक (सस्कृत नाटक) नृत्य और तमीत से भी गहन सम्बन्ध रखता है, प्रस्कुत यह करहात ही सभीजीक होगा कि नृत्य और समीत सस्कृत नाटक के अस है। नृत्य और समीजीक भी समाज तारिक्य है। नृत्य सो अपने आप म हरवात्मक है ही, किन्तु सगीत भी नाटक म हस्यात्मव ता का गुरा धारत्या कर तमा है क्योंकि पहु नृत्य का साथ देकर उमकी दश्यता की सकत बनाता है।

भारतीय नाट्य शास्त्र विधारवी ने नृत्य को नाट्य परपरा से भिन नहीं माना है। सामाग्यतमा नाटकों के तीन प्रकार माने गमें हैं—बारू नाट्य गीनि-नाट्य ब्रीट नृत्य नाट्य। इनम सवादा को प्रमुखता मिलती रही है, जो कभी गय, कभी एवा ब्रीट कभी बोना में होते थे। सवादा के साथ रसाधिनय तो प्रबद्ध होता था, किन्तु हस्त-मुद्राएँ श्रादि नहीं के बराबर होती थी। श्रायिक श्रमिनय भी सीमित अपिन नहीं के बराबर होता था।

गीनि-नात्या म कथा परामय गीता म कही जाती भी। इनके कथानक इस प्रकार कुने जाते थे कि सरम समीत का पूर्णंत मस्कुटन हो सकता था। जयवेबकुत 'गोतगोबिन्द' इसी प्रकार की रवनत है। इन रननाप्रा म सवाद ब्रीर वर्णन दोना पथा मुति थे और इन्हें समीत-साहन के रागो और तालों म बाँच कर गाया जाता था। गाय ही वाय-यत्रा का भी स्वतन उपयोग किया जाता था। म इन पत्रों में गाया मुझा समितन करता था। कभी कभी पनी पेट नेपस्थ से भी गाये जाती थे।

देखिये, बलदेव उपाच्याय संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५

इस प्रकार के नाटक के श्रीभनय में नृत्य के श्रम हारादि तथा पद-विन्यास आदि का प्रश्नुत माना में उपयोग होता था। यह नाटक-परस्प रास-याना के रूप में श्राज भी विद्यमान है। लोक-मृत्यों को रोलों में इसका अधिक प्रचलन है। एजाव का हीर-राम्ब्र; राजस्थान का रासे, स्वाम; उत्तर-प्रदेश का नोटकी, रासलीला, वभाल की यात्रा श्रादि सब गीति-गाटक ही हैं। बिहार में भोजपुरी के विदेशिया तथा मैंपिकी मैं विद्यास्ति के गीति-गाटक अब भी राजीव हैं।

नुष्य नाटक-कला से भिन्न कला नहीं है। रास्कृत नाटक मे परा-प्राजुर्य मिलता है। इससे स्पष्ट हैं कि गायन पर भी अभिनय होता था। अतप्रज जनता का भगोरजन केवल सवादों से नहीं होता था, बरन् पर-गायग तथा एस पर आधारित तृत्याभिनय से भी होता था। नाटक-शास्त्र के अनुसार 'नाटक' के तीन अग माने पेये हैं—

१ नृत-जो 'ताललयाश्रयम्' होता है अर्थात् इसमें गात

(पादावि) का सचालन ताल-लय पर आधारित होता है। २ सुरय--'आवाश्रय नुत्यस्' कह कर इसमे पादावि गात्र-

सवालन के अतिरिक्त भाषी का अभिनय भी सम्मिश्चित किया गया है।

इ नाटय — 'रसाधय नाट्यक्' से स्थप्ट है कि नाट्य में रस-योजना का प्रमुख स्थान है। 'नाटक' इन दीनों का मावदयकता-मुसार योजन है।

योजन है। हमारे नाट्यशास्त्र में चार प्रकार के अभिनय का उल्लेख है\\_\_

१. सारिक - मुख द्वारा व्यजित रस-सचार को सारिक प्रभिनम कहते हैं।

निय कहते हैं। २ श्रागिक—जो श्रमिनय दारीर के क्रमी द्वारा किया जाता है

उसे मागिक कहते हैं। ३. वाचिक--श्रमित्य का यह प्रकार वाणी द्वारा सम्पन्न

होता है।

मागिको वाचिकरचैवमाहायैः सार्त्विकस्तवा । साहित्यदर्पेण, ६.२

१. दश्चरूपक, १.६ २. वही, १.६

२० वहा, १०६ ३० वही, १०६

४. भवेदिमनयोऽवस्यानुकार स चतुर्वियः ।

४ ब्राहार्य-जो ब्रामनय वेश-भूषा के द्वारा होता है उसे ग्राहायँ कहते हैं।

इनमें से सात्त्विक, ग्रामिक ग्रीर ग्राहाय सरलता से नृत्य की परिमापा में सम्मिलित किये जा सकते हैं।

हमारी प्राचीन श्रमिनय और नाट्य शैली सच्चे ग्रथं मे नाटक को नाटक ग्रौर दृश्य काव्य बनाती है। मारतीय नाट्यशास्त्र मे जो रस-

विवेचन भीर मभिनय-किया, हस्तमुद्राभाषा, नायक नायिका भेद तथा विभिन्न खगो की जो उपयोग-नियाएँ मिलती हैं, वे जगत मे अनुठी हैं। इस प्रकार भाषा और वाली का स्थान, समय क्षेत्रा पातानुरूप प्रयोग एव बेश-भूपा का विशद विबेचन भी सस्कृत नाटक की विशेपता है।

मस्कृत नाटक की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे प्रन्य देशी तया ग्रन्य भाषाग्री के नाटको से पृथक् कर देती हैं। देन ग्रीर

काल की मान्यताओं एवं प्रतिष्ठायों की सस्कृत नाटक को प्रमुख हर्ष्टि से इनका भी सामाजिक मूल्य है।

विशेषताएँ हमे इनकी खिडकियों से भारतीय समाज की विदाप भौकियाँ सरलता से मिल

जाती हैं। सस्कृत नाटव की सबसे वडी और प्रमुख विशेषता है, उसकी

स्वान्तता। प्रायः सभी सस्कृत नाटको का ग्रत सुखद होता है। नाटक के आदि मध्य मे कितनी ही दुर्घट-

१ सुद्धान्तता

नाएँ, वितनी ही दु खद परिस्थितियाँ और कितने ही करणाजनक हत्यों की प्रस्था-पनाएँ हो सकती है, किन्तु उन सब का नियोजन इस प्रकार से किया जाता है वि अन्त सूखद होता है। इसका प्रमुख कारण संस्कृत नाटक-बारी ग्रयवा भारतीय समाज का जीवन के प्रति आशानादी दृष्टिकीस है। मारतीय नाटककार की यह घारएग है कि जीवन का उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति है। किसी दिशा मे क्तेंव्यनिष्ठा की बदुटता दिला कर नाटक-नार नायक और उसके साथियों को दू ख के दलदल से निकालता हुआ सुखारूढ करता है। कर्तव्यपरायरा एव सत्यनिष्ठ व्यक्ति के जीवन का अन्त दु खद कदापि नहीं होता । यह ठीक है कि उच्च सकल्प के

१ यनदेव उपाध्याय संस्कृत साहित्य का इतिहास. पण ४२४

निर्वाह-पय में अनेक विच्न और सकट प्रस्तुत होते हैं, किन्तु मन्त में जन सवका पर्यवसान सुख में होता है। महान् पुरुषों के जीवन का दु खानत जीवन में महत् की प्रतिष्ठा की एक भीषण जुनौती वन सकता है, जिससे निराप्ता के वलवती होने पर समाज में अनेक दोप उत्पन्न हो सकते है। यतएव यह यावस्थक प्रतीत होता है कि महापुरुषों के जीवन का यन्त दु समय न दिखाया जाय। निस्सन्देह यह इंडिकोण्

सस्कृत नाटक की दूसरी विरोपता है—उसमे तत्काचीन समाज की प्रतिच्छाया । सस्कृत नाटक अपने युग के सामाजिक वर्गी, मान्य-

२ युग-जीवन की ग्राभिव्यक्ति

तामो, निष्ठामो, माधिक एव नैतिक व्यव-स्यामो तथा राजनीतिक प्रयोजनो को वडी ईमानदारी से माकलित मौर प्रस्तुत

करता है। उत्तम, मध्यम और प्रधम पाथों के सन्दन्ध से सस्कृत नाटक प्रपने समय की सामाजिक व्य-तस्या की प्रस्तुत करता है। नाटक और पात्रों की भाषा-भेद सबधी मान्यताएँ भी सामाजिक वातावरसा और युग-मान्यतामों को ही प्रभिव्याजित करती हैं।

बेह्या के सिविरिक्त सभी हिन्नपौ सहस्रत नाटक में 'प्राक्वत' सेवाती हैं। इससे उस समय की हनी की शिक्षा के सम्बन्ध में मी बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। बेह्या की सह्युत्तवात सीर पटुता से सहस्रत मान के अने अने भे सहाराष्ट्री प्राक्वत ने विदेष समायर इस बात ना प्रमाय हैं कि देश में स्रनेक प्रविधिक भाषाए प्रचलित थी। शिष्ट साहिर्द एवं सार्वभीन भाषा ने रूप में सरकृत ना सम्मान होता पा तथा प्राव्वती में प्रभा स्था से स्था जाता था। भाषा-विद्यान नी रहिया जाता था। भाषा-विद्यान नी रहि से चौरसेनी प्रधिव विद्योग पू-माग मी बोली थी, विन्यु परम्परा ने महाराष्ट्री को ही स्रधिन साहिर्दियक सम्मान प्रदान पर रहता था।

मुछ लोगो का विचार है कि सस्द्रत नाटको में सबयं का सभाव

१ दशस्यक, २४५

२ वही,२६%

है । भेरी दृष्टि भे यह श्रारोप सर्वथा श्रनगॅल है क्योकि सपर्य के विना चरित्र का विकास नही होता और न सपर्य भाव-गभीरता का ही समावेश हो

क्षयर्प भाव-गमीरता का ही समावेश हो सकता है, ग्रतएव सवर्प तो किसी भी महाकाव्य या नाटक का सामान्यतया जितवायं तत्व है। नायक की क्षमता ग्रयवा ग्रन्य पात्रों के चारिटिक उत्कर्प को ग्रयक्ष कराने से

महाफाव्य या गाटक का सामान्यतया जीतवाय तत्व है। नायक की क्षमता व्यवसा मन्य पात्रों के चारिनिक उत्तर्भ की प्रत्यक्ष कराने में समया प्रवास कराने में समर्प की उम्बद्ध्या अतिवायत उपयोगी है। हा, यह दूसरी बात है कि वाह्य सचर्ष न दिखा कर कभी-कभी प्रस्तर्द्धत्व ही से काम के लिया जाय। यन्तर्द्धत्व भी अतिनियाकों को जन्म देकर नाटक के विवास में यीग देता है। सचर्ष (भन्ने ही वह प्रस्तर्द्धत्व ही सो न ही) कथा-बस्तुक विस्तार की भूमिका तथा झास्त्राद की पुट्यूमि में बटनी का माम करता है। धीरता और उदासता की भूमिका पर प्रावस्त्र की स्वार्य की स्वार्य की स्वार्य की स्वार्य की स्वार्य की अपने स्वार्य की स्वार्य की स्वार्य की अपने स्वार्य की स्वार्य की अपने किया साम्रा उपने स्वार्य की स्वार्य की अपने स्वार्य की स्वार्य की अपने स्वार्य की स्वर्य की स्वार्य की स्वार्य की स्वार्य की स्वार्य की स्वार्य की स्व

सस्कृत नाटक ने उत्तम, मध्यम श्रीर श्रधम पानी के प्रयोग के सम्बन्ध में विशेष नियम थे। प्रमुख पान या नेता इतिहास प्रसिद्ध,

न्धं में विशेष नियम थे। प्रमुख पान या नेता इतिहास प्रोसद्ध, उच्चवर्ण, प्रशस्तवश एव धीरोदात होता पान-घोजना था। तृतीय श्रेणी के पानो की योजना

बिदूपक की व्यवस्था भी सस्कृत नाटक की विशेषताम्रो मे से है। बह नायक का बन्तरग मित्र होता था। उसका कार्य केवल हास्य-रस की मृष्टि करना ही नही था, थपितु समय-समय-पर उसे उचित परामर्ज-

वजित थी।

१ दशहपक, ३४८

देना भी था। खरके जोड का पात्र प्राचीत श्रीक नाटको में भी नहीं है। हो, मध्यकालीत पाइचात्य नाटको में ऐसा ही एक 'फूल' सज़क-पात्र हीता था, किन्तु वह निरा हास्थोपादान होता था। उसके विपरीत विद्युप्त नायक को अपने परामज़ं से विकट परिस्थितियों भीर भारवाओं से निकट कर पर्माव फल की दिशा में प्रार्थित करता था। अधिकारिक में निर्वाच कर पर्माव फल की दिशा में प्रार्थित करता था। अधिकारिक में निर्वाच रसता हुआ तथा प्रार्थित कर प्रार्थित को चटरडा-पत्त प्रदान करता हुआ विद्युप्त दर्शनों के रसास्वाद में अभेरट सीगदान देता था। शुमुम, बसत्त आदि अभिश्रा वाला विद्युप्त अपने कर्म, बमु, वेसता आदि सिंप्स क्षावित होता था। भीरति से हास्वकर तथा स्ववमंत्र होता था। भीरति से हास्वकर तथा स्ववमंत्र होता था।

सस्क्रत नाटक का एक विशेष पात्र कजुकी होना था जी 'रनवास' का द्वारपाल या रक्षक होता था। उन्तकी यात्रा के दिना नोई व्यक्ति रनवास में प्रवेश नहीं कर सनता था। यह युद्ध या क्लीब होता था। वह विशिष्ट ब्रायुची और वेशभूषा से सर्वित्रत होता था। राजपरिवारी की रक्षा-व्यवस्था का परिज्ञान कजुकी की व्यवस्था से भी हो सकता है।

सत्कृत नाटको के प्रमुख मनो भ प्रस्तावना का प्रमुख स्थान है। सत्कृत नाटक का प्रारम्भ प्रस्तावना से होता था। प्रस्तावना नान्दी से प्रारम्भ होती है, जिसमे दर्शकों के

श्रंग

से प्रारम्भ होती है, जिसमे दर्शको के करुमाण के लिए राष्ट्रिय देव की उपासना की जाती थी। जिस्सवसार और नटी हे

की जाती थी। किर सुनवार और नटी वे सभापण से नाटककार और उसकी कृति तथा उसके क्यासून का मित सक्षिप्त परिचय दिया जाता था।

इसी प्रकार धत म भरत-यास्य रहता या जिसमे नाटक का नायन या प्रधान पात्र देश, समाज एन राष्ट्र वी समृद्धि ने लिए प्रपत्ने इट्टैब से प्रार्थना गरता था। इस प्रकार नाटक का भादि और धन्त मनत-नामना से भ्रोतप्रीत होता था। इन दोनो खगा था मनौवैज्ञानिय प्रभाव भी उपेराएगिय नहीं है।

प्रस्तावना धोर भरत-वावय के बीच म बनेच बनो वो स्थिति होनों भी, जिसमें पारचारय नाटको वो मौति हरव व्यवस्था नहीं होती थी। प्रसम, दिलीय मादि से दुरयों नो धोमधान व्यवस्था नहीं होती भी। जिसवी हम नाटव था स्थक घीमधा प्रशान वरते हैं वह प्राय

र माहिरपदपूरा, ३ ४२

१ दगहरूव ६ ७-८

पांच थकों का होता था। किसी किसी नाटक में पांच से श्रिधक तथा दस तक ग्रंक ही सकते थे, जो 'महानाटक' श्रिपमा प्राप्त करता था।' श्रूदक का 'मृष्ट्रकटिकय्' महानाटक है वयों कि इसमें दस थक है। चार पा चार से कम प्रक वाले रूपक की नाटिका? कहते थे, जैसे 'रत्नावजी'। 'श्र्मिजावजाकुन्तवम्' रूपक था नाटक का सर्वोत्कृष्ट उदाहरए है। 'माए और प्रहमन को देख कर हम संस्कृत में एकाकी का श्रुपमान भी कर सकते हैं। श्राप्तिक एकाकी के परिपाद में 'रं रक कर तुम संस्कृत एकाकी के परिपाद में 'रं रक कर तुन सहस हमारे सामने प्राप्तेन भारतीय एकाकी के विशेषता प्रमा श्री पर सामने प्राप्तेन भारतीय एकाकी की विशेषता हमें से खाली हैं।

भंक की समाप्ति पर रगमंच का रिक्त होना अत्यायस्यक है। प्रमुख श्रकों के प्रतिरिक्तसंस्कृत नाटकों मे विष्कर्मक, प्रवेशक, चूलिका, भंकावतार भीर अंकमुल-इन पाच मर्योपनेपकों व का भी विशेष स्थान है। ये सस्कृत नाटक की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। इनमें स्वगत भाष्ण भयवा संमापण द्वारा प्रेक्षकों का ध्यान ऐसी घटनामों की मीर श्राकपित किया जाता है जिसका रगमंच पर दिखलाना श्रनाबश्यक प्रतीत होता है, किन्तु कयानक का कम जानने के लिए उनका उल्लेख भावस्यक होता है। बिष्कम्भक श्रीर प्रवेशक से अन्तर यह होता है कि विष्करमक नाटक के प्रथम शक के प्रारम्भ वा दो शको के मध्य में श्राता है<sup>४</sup>, परन्तु प्रयेशक सदैव दो अकी के मध्य में आता है<sup>४</sup>। विष्कम्भक दी प्रकार का होता है-शुद्ध श्रीर सकीर्ग । शुद्ध मे एक घपना दो मध्यम पानो का सस्कृत में संभागरा होता है जबकि सकीरों मे निम्न प्रथवा मध्यम पात्र प्राष्ट्रत भाषा में बार्तालाप करते हैं। प्रवेशक में केवल निम्त पात्रों का प्रयोग होता है। यबनिका के पीछे स्थित पात्रो द्वारा बी हुई यम्तु की सूचना की चुलिका वहते हैं। धकायतार में प्रथम शंग में ही वस्तु की विच्छेद किये विना दूसरे अक की वस्तु की सूचना

१. दशरपन, ३.३८

२. वही, ३.४४

द. पहा, इ.ट. इ. माहित्य दर्पेश, ६ ५४

४. वही, ६.४४-४६

५. यही, ६ ५७

६. यही, ६.५०

दो जाती है।' अन के अन्त मे छूटी हुई कथा की सूचना को अकास्य<sup>०</sup> कहते है।

सस्कृत नाटक ये प्रमुखत तीन तत्त्व माने यये है—वस्तु, नेता, श्रीर रखें। नेता के सम्बन्ध में सकेष नाटक के सत्त्व में पहले यहा जा चुका है। ब्रिस्टुत वर्धीन यथास्थान दिया जायेगा। यहाँ 'वस्त्र'

ग्रीर 'रस' का सक्षित परिचय देना भी समीचीन ही होगा।

सस्हत नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक के श्रतिरिक्त करियत स्थवा मिश्रित भी हो सकती है, ' किन्तु प्रधिकाश्वत ऐतिहासिक या पौराशिक कथावस्तुयों का सम्भान हो विशेष रूप से किया गया है। करुपना के पुट से उनसे मिश्रिय कथावस्तु को योजना की गयी है। प्राय सभी सस्क्रत नाटको की कथावस्तु रामायस, यहाभारत, पुरास, मुहत्क्या ग्रावि पर ग्राधारित है। ऐतिहासिक स्थवा पौराशिक होने पर भी कथावस्तु में करुपना के राग से मीविकता बाई गई है।

यो तो सस्कृत नाटक मे प्राय सभी रस रह सकते हैं, किन्तु प्रमुख रस-वीर श्रीर श्रृद्धार से से कोई एक होता है। भवभूति ने 'उत्तररामचरित' में 'करणु' रस को प्रधा-

रस नता वेकर नाटक के लिए तीन रस (बीर, श्रृङ्कार एव करुए) प्रमुख

रूप से सम्मानित कर विषे हैं। इनरे रसे नाटक में गीय रूपें से प्रतिस्टित रहेते हैं। ही, सान्त-रस की सस्ट्रल नाटक में प्रमुख स्थान नहीं दिया जाता नयांकि उसमा स्थामी भाव निकरे प्रतेपासुक नहीं होता। यह नाटक ने विकास में वाधक सिद्ध होता है। रसो भी यह व्यवस्था सस्ट्रल नाटक में सामान्य सामाजिक मानमाधी को मयगढ़त एतने भी हष्टि से ही की क्यों हैं।

१ साहित्यदर्पण ६ ५६

२ वही,६६०

३ दशस्पक, १११ ४ वही, **११**५

४ साहित्यदर्वशः ६ १०

ग्रन्यत्र यह कहा जा चुका है कि संस्कृत नाटकों में पद्य-प्रयोग उन्मुक्त रूप से हुआ है। पद्य, लय और ताल से पोपित होकर नृत्य को सहयोग देता है। नृत्य में हस्य और

वाञ्च श्रीर परा

श्रव्य दोनो का सहयोग होता है और पद्य इचित संगीत का वातावरण वना कर मृत्य की दूरयता की मधुर अव्यता की भूमिका प्रदान करता

है। संस्कृत नाटकों का पद्य-भाग संस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओं में होता था। भाषा-भेद से एक छोर तो तत्कालीन सामाजिक मान्यताएँ प्रत्यक्ष होती है और दूसरी स्रोर सभी सामाजिक वर्गों मे संगीत-इचि का परिचय मिलता है।

संस्कृत-साहित्य प्रकृति के प्रति बहुत जागरूक एव निप्ठावान् रहा है। साहित्य में प्रकृति-चित्रस्त न केवल समाज और प्रकृति के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है, वरन्

प्रकृति-निप्टा

वत्कालीन साहित्यकार के सीन्दर्य-बोध को भी प्रकट करता है। शकुन्तला की

विदाई के समय कालिवास ने प्रकृति का जो रूप प्रस्तुत किया है उसमें नाटककार की मनोवृत्ति की ही प्रेरणा नही है, वरन भाशम-वासियों के प्रकृति सम्बन्धों की भी प्रेरणा है।

इन सब बातों के श्रतिरिक्त संस्कृत नाटक में श्रलीकिकता, श्राकाशभाषित, अगयवाद और बाश्रम एवं मठ के साथ-साथ राजप्रासाद, गृह-कानन एवं केलि-कानन का वर्रांन उस समय के भावात्मक एवं ऐश्वर्यात्मक वातावरहा का परिचय देता है। इन सय के कपर है संस्कृत नाटको में धार्मिक भावनाओं की प्रतिप्ठा। इस प्रकार संस्कृत नाटक का ध्रध्ययन तत्कालीन समाज के ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक परिपादवों के उद्घाटन में बहुत सहायक सिद्ध हो सकता है।

१. अभिज्ञानशाकुतालम्, ४.११

साहित्मदर्पेस, ६.१४०

## आलोच्य नाटक युगः ऐतिहासिक परिचय

भूगिका में कहा जा चुका है कि युन और साहित्य का गहन स्वत्य है। साहित्य में युग प्रतिविधित होता है और साहित्य युग के निर्माण में मोग बेता है। यह जानने से पूर्व कि ब्रालीच्य नाटकों में समाज के किस रूप का जिन्नण हुका है, यह जानना अधिक आवस्यक है कि ब्रालीच्य नाटक किस युग से राम्बरियत है और उस युग तथा तत्कालीन समाज की क्या क्या विशेषनाएँ हैं।

साहित्यकार के बुग का ज्ञान या तो अन्त साक्ष्य के प्राधार पर हो सकता है या बहितिक्ष्य के प्राधार पर। अन्त साक्ष्य दे। प्रकार का होता है एक तो वह जिस में कवि या साहित्यकार प्रपने या प्रपने कुग के सम्बन्ध में स्वय कुछ बोलता-कहता है और दूसरा वह जिसमे मुग साहित्य में जसी प्रकार सिविषट हो जाता है जैसे दूभ में थी। बहिर्सास्य समकालीन रचना या रचनाओं अथवा ऐतिहासिक सुत्रों से मान्त होता है।

प्राचीन सहहत साहित्य के प्राप्तेता अपने सम्बन्ध में प्राप्त पृक्त हु है, समयत इसलिए कि ब्राह्म-यरिनय की ओई परम्परा नहीं थी। इसके प्रतिरिक्त प्राप्तम-यरिनय किन्तात्मक और प्रश्नात्मक प्रमुप्त मिन्तात्मक और प्रश्नात्मक प्रमुप्त मिन्तात्मक और प्रश्नात्मक प्रमुप्त स्थान के प्राप्त में प्राप्त में प्राप्त में प्राप्त में साहित्य की प्रमुप्त प्राप्त में प्राप्त में साहित्य की प्रश्नी क्षण प्राप्त में साहित्य की काहित्य की प्राप्त में प्राप्त में प्राचीन सहन्त नाटन में तो ऐसे परिचय के लिए प्रोर भी वर्ष प्रवचार था। गाटन वर्ष प्रप्त थाओं नो आगंव नरके स्वयं उनते पीछे दिया जाता है। ऐसी विचीन से सहन्त प्राप्त में प्राप्त नाटक कर प्रमुप्त पार्ट के से विष्त नीत-ता स्थान योजता ? प्रस्तावना में भी ऐसे परिचय में लिए विचेप प्रयुप्त नहीं होता है, अत्युप्त सहन्त नाटन में भारत-परिचय में प्राप्त नाटन के प्रस्त प्रमुप्त में प्रप्रप्त कर प्राप्त स्थान प्रमुप्त की प्रप्त प्रमुप्त स्थान में प्रप्त में प्रप्त स्थान प्रमुप्त में प्रप्त स्थान प्रमुप्त में प्रप्त स्थान स्थान

से ही मिलता है, जिसकी पुष्टि ऐतिहासिक सूत्रों से ही की जा सक्ती है। ग्रालोच्य नाटक भास, कालिदास ग्रीर सूदक से सम्बन्धित हैं, इस-तिए इनके ग्रुग का ज्ञान प्राप्त करना भी ग्राबस्यक है।

कहा जाता है कि संस्कृत बाड्मय में नाटकों की सजीब एव मूर्त परम्परा का प्रयत्तेन भास के द्वारा ही किया गया, किन्तु यह घरवन्त लेद का विषय है कि दीर्घकाल तक मास भास-पुग की इनितयी उद्भासित नहीं हो पाईँ। इसित्तर आस के प्रस्तिस्व का परिचय

कुछ यत्र-तत्र विकीशा सकेतों से ही मिल सकता था। में मंस्कृत साहित्य का विद्यार्थी श्री ही० गएपति सास्त्री की अध्यवसायपूर्ण गवेषणा की प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता, जिसके परिशान-स्वरूप की प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता, जिसके परिशान-स्वरूप स्वती श्री क्षेत्र के परमात् भास साहित्य-जगत में पून प्रतिप्ठित हुए। श्री शास्त्रीको ने त्रावणकोर में हस्तालिखत प्रयों की लोज करते समय भास के तरह स्पक कोज निकाल, जिन्हें उन्होंने 'त्रयो- स्वा प्रिवेद्ध नाटकामि' नाम से प्रकाणित कराया।

साहतीजी की इस उपलब्धि से सहूवय पाठको और समीलकों के मन में अमित जिज्ञासा जागत हुई और भास के सम्बन्ध में गवेगाओं की बाव-ती आ गई। परिस्तागत, भास का सम्बन्ध में गवेगाओं की बाव-ती आ गई। परिस्तागत, भास का समय पाड़बात्य और भारतीय विद्वानों, के विवाद का विवय वन गया और वह धंसबी-पूर्व छठी दाताब्दी से ईसा की ११वी दाताब्दी सक फंल गया। है एवं विद्वान के की प्रस्तावन के साथ नाताब्दों का मयत नगर नाटकों में विश्वत सामाजिक विवाद के प्राचार पर उनका समय ईमयी-पूर्व चतुर्व प्रसाद की सिम्पित सामाजिक विवाद के प्राचार पर उनका समय ईमयी-पूर्व चतुर्व प्रसाद की सिम्पित सामाजिक समा की मामाजिक सामाजिक समा की सामाजिक साम

१. देशिये, चन्द्रशिक्षर पाण्डेय, सस्कृत साहित्य की रूपरेक्षा, पृ० ६६-६१

र. गण्यति जास्त्री : 'वधोदम् जिवेन्द्रम् नाटकानि' सन १६१२-१३ ३. देखिने, प्रसणकर : भाष : ए स्टबी, पृ० ६१ (टिप्पणी)

४. देशिये, पुसलकर: भास: ए स्टडी, पूर्व ६१ (टिप्पणी)

<sup>.</sup> देखिपे, गरापति शास्त्री : वासवदत्ता की भूमिका

इस प्रकार मास का समय मौर्य शासन के प्रारम्भिक काल में सिर्शिवष्ट हो जाता है।°

विवेच्य नाटककारों में भास के पश्चात् कालिदास का नाम उल्लेखनीय है। वे सस्कृत साहित्य के मूर्यन्य साहित्यकार है। उनकी कीर्ति-कोमुदी इस विशाल भारतवर्य को

कालिदास-जुन ही स्रानल्य सागर मे विभोर नही नार रही है, प्रखुत सुद्गर परिवमी सतार के तस्त हुदयों को भी साध्यारियन एवं नैतिक जीवन की सुविक्षा देनर रहा कर रही है। "इस महाकवि का इतिवृद्ध भी स्रायक्ष के सत्त अनुस्थान के बाद भी काविदास के काल का प्रवम प्रमिन्ध्रय के हिंदी से भूल रहा है। उनके स्राविभाव काल के विषय में प्रमुख्य से हिंदी से भूल रहा है। उनके स्राविभाव काल के विषय में प्रमुख्य के हिंदी से भूल रहा है। उनके स्राविभाव काल के विषय में प्रमुख्य के दितीय के अनुसार पुन्तकाल में भीर तृतीय के अनुसार पण्डा तक में सिंद होता है। डा॰ करों के अनुसार कालिदास का समय खडी बाताव्दी का प्रमाशं सिंद होता है। डा॰ भण्डार कर मी स्वीम प्रमाशं सिंद होता है। डा॰ भण्डार कर मी मत के समयंक प्रतीत होते हैं। अाजकल प्राय सभी सुप्रसिद भारतीय एव समारतीय विदान् कालिदास का समय पुन्तकाल में सानते हैं। श्री वासुदेव उपाध्याय ने शुन्त साझाज्य का हितहास में इसी अत की हणीकार किया है। ध

कालिदास के प्रणो के गभीर पयनेक्षण से भी यही निष्कर्य निकलता है कि ने गुरत मुग के श्रवितीय रत्न थे। वास्म ने स्वये पंतर्य करिता में बड़े सादर से कालिदास का उल्लेख किया है। इससे मी यही स्पष्ट होता है कि वास्म के समय तक कालिदास बहुत प्रसिद्ध हो चुके

१ एन० एन० घोष भारत का प्राचीन इतिहास, १० १२४

र देखिये बातुदेव जपाच्याय गुप्त सामाज्य का इतिहास, भाग २ पृ० ६६ १ देखिये, सार्व जीव अण्डारकर सम III, पृ० २०

भ देलिये डा॰ कीच डा॰ हिमच अंकार्डानन, जेवसमूलर, डा॰ बासुदेवतरए। मप्रवास, भी भी॰ भी॰ निरासी, डा॰ सार॰ जी० मण्डारकर, प॰ रामानतार सभी डा॰ मणवतत्तरए। उपाच्याय श्री हिर्तगय है श्री थी॰ सी॰ मुख्यतर।

<sup>&</sup>lt; वामुदेव उपाच्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० १००

थे। जो हो, इस महाकवि ने अपने ग्रयों में उच्च एव ग्रादर्श सम्यता 

ग्रालोच्य माटको से सम्बन्धित तीसरे नाटककार शूदक हैं। द्युद्रक के समय के निरूपण के विषय में भी वडा मतभेद है। पुराणो मे बाघमृत्य कुल के प्रथम राजा शिमुक

का वर्णन मिलता है। अनेक भारतीय शुद्रक-युग

विद्वान् राजा शिमुक के साथ शूदक की प्रश्नामित का स्वीकार कर इनका समय वित्रम की प्रथम शता दी मानते हैं, परन्तु 'मृच्छकटिक' की इतनी प्राचीनता स्वीकार करने में स्रनेक विद्वानी को आपत्ति है।

वामनाचार्यं ने अपनी 'काव्यालकार सूत्रवृत्ति' मे (गूद्रकादि-रिचतेषु प्रवन्धेषु) सूद्रक विरचित प्रवन्य का उल्लेख किया है और 'धूत हिं नाम पुरपस्य असिहासन राज्यस्'' —'मृज्युक्टिक' के इस धूत-प्रशसा-परक वाक्य को उद्यूत भी किया है जिससे प्रमाणित होता है कि 'मृज्युक्टिक' की रचना 'काव्यालकार सूत्रद्वति' ( आठकी माताब्दी ) के पहले ही हो गई होगी।

नामन के पूर्ववर्ती ब्राचार्य दण्डी ने भी अपने 'कान्यादर्श' मे 'मृच्छरुटिव' के 'लिम्पतीव तमोऽज्ञानि' प्रवास को सलकार-निरुप्ण करते समय उद्धृत किया है । सावाय दण्डी का समय सप्तम सतक माना गया है। इसरो प्रमास्तित होना है कि 'मृच्छकटिक' की रचना उससे भी पहले हो चुकी थी।

इन वहिरग प्रमार्गो के अतिरिक्त समय निरूपण में 'मृच्छकटिक' के अन्तरग प्रमाएं। से भी प्रभूत सहायता मिल सकती है। नवम अक में यमन्तसेना की हत्या करने के लिए शकार आर्य चारुदत्त पर भभियोग लगाता है। अधिकरिएक के सामने प्रस्तुत किये जाने पर धर्माधिकारी मन् के अनुसार निर्शय करता है---

मृष्यकटिकम्, अक २, पृ० ११३

देखिये, बलदेव उपाच्याय सस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४६०

द्माय हि पातकी विश्रो न बध्यो मनुरस्रवीत् राष्ट्रादश्मानु निर्वास्यो त्रिमवै रक्षते सह॥

यह निर्एाय ठीक मनुस्मृति के ग्रनुरूप है-

न जालु ब्राह्मए। हत्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम् । राष्ट्रादेन वहि कुर्यात् समप्रधनमक्षतम् ।। न ब्राह्मणबधाष्ट् सूयानकर्मो विद्यते धुवि । सस्मादस्य षध राजा अनसापि न विश्तपेत् ॥

इससे भी यही सिद्ध होता है कि मुच्छकटिक' की रचना मनु-स्मृति के ज़नस्यार हुई होगी। 'मतुस्मृति' का रचनाकाल विक्रम से पूर्व दित्रीय शतक माना जाता है। फ़तएव 'मृच्छकटिक की रचना निश्चित रूप से इसके बाद की होनी चाहिये।

'पुण्डव टिक' के नवस अक से किस ने बृहस्पति की अद्भारक अर्थात् सगल का बिरोधी बतलाया है " परन्तु बराहिमिहर के इन योगी यहीं को मित्र साना है। 'प्रसिद्ध उपीतिकारी पराहिमिहर का तिखानत ही आजकल किलत ज्योतिय से सर्वसान्य है। सगल तथा बृहस्पति आजकल मी भिन्न ही साने जाते हैं गरन्तु बराहिमिहिर के पूबवर्षी कोई कोई सानमार्थ रहे वाह भी मानते थे, सिक्स ज उन्केल बृहस्पति को स्वाम के सान के से मिल्र हो ने बराहिमिहर के पूबवर्षी को समल के ने बराहिमिहर के पूबवर्यों के उहरते हैं। बराहिमिहर की गुरू करने हैं में हुई की अर्द्ध में अरद्ध प्रदेश के उहरते हैं। बराहिमिहर की गुरू करने प्रवास के उन्ना-समय बराहिमिहर के सिद्धान्त के प्रवचन से पूब होना का स्वास्त्र । अर्थात पुन्न इन्नेटिक' के प्रवचन प्रवोधी अर्थात पुन्न इनेटिक' के स्वास के प्रवचन से पूब होना का स्वास्त्र । अर्थात पुन्न इनेटिक' के प्रवचन प्रवीधाता की स्वास्त्र में सुर्व होना की से अर्था पुन्न होते हैं। स्वास्त्र भी कुई होना की से अर्था हुई होना की सारस्त्र में इई होना की से अर्था पुन्न हुई होनी ।

हा० भोलाशकर व्यास ने भी 'मुच्छकटिक' का रचना काल पंजम शतक का उत्तराखें या छठे शतक का पूर्वीखें स्वीकार किया है। ध

१ मुज्छकटिकम् १३१

२ मनुस्मृति, स इस०-दश् ३ मृज्द्यकटिकत्, १ ३३

४ जीवे दूष्णकरा कुबस्य सुहृद । वृहण्यातक, २१६

प्र डा॰ भोलाञ्चकर व्यास सस्त्रत कथि दर्जन, पृ० २८४

यह काल गुप्त-साम्राज्य का ह्यासकाल और हुएँ-साम्राज्य के उदय का पूर्व काल था ।।

इस प्रकार भास, कालिदास और शूबक का समय मौयं-काल भीर गुप्त-काल की सीमाओं मे परिमित हो जाता है। सास्कृतिक श्रीर सामाजिक उत्थान-पतन की हृष्टि से यह युग वडा महत्त्वपूर्ण है। इन दोनो युगो का विवेचन हम विकासकम की सीमाओ में इस प्रकार कर रहे हैं।

समाज संघटना की प्रमुख इकाई परिवार है। भारतीय समाज

में सयुक्त-परिवार-प्रशाली को सर्वाधिक पारिवारिक स्थिति प्रथय मिला है। वार्मिक अनुशासन, नैतिक भावना महयोगी प्रवृत्ति के कारण

कुदुम्य का संयुक्त रूप ही अधिक श्रेयस्कर समभा गया है। धालोच्य नाटक कालीन समाज में संयुक्त परिवार की प्रया प्रचलित थी। पिता के जीवन-काल में कुटुस्त का विभाजन बुरा समभा जाता था। मौर्य-काल मे एक ही मनान मे माता-पिता, बच्चे, उनके बच्चे, जाया-भतीजे, चचेरे भाई रहते थे। घनिकों के क्रूटुब्य में उनके सेवक-वर्ग भी सम्मिलत होते थे। ब्राह्मणों के क्रुटुम्बों में उनके कतिपय विद्यार्थियो की परिगएना होती थी । लडके-लडकियो के विवाहादि सम्मिलित क्ट्रम्य में ही होते थे। विवाह के पश्चात् लडको को परिवार से अलग नहीं माना जाता था अपित उनके साय-व्यय सौर श्रन्य श्रावश्यकतात्रों का गृहस्वामी पूरा-पूरा ध्यान रखता था।

गुप्तकालीन शिलालेखी ग्रीर प्राप्त सिवको से इस बात के प्रमाण गिलते हैं कि उस काल में भी सयुक्त बुदुम्ब-प्रखाली ही प्रचलित थी। पिता की मृत्यू के उपरान्त भी लंडके, पोते, भाई खादि एक ही मकान में साथ-साथ रहते थे।

सयुक्त-परिवार-प्रथा के कारए। चलाचल सम्पत्ति के विभाजन का प्रश्न जल्दी-जल्दी नहीं उठा करता था । फिर भी पिता की सम्पत्ति पर सभी पूर्तो का समान अधिकार समक्षा जाता था। पिता के जीवन-

पाण्डेय सस्कृत साहित्य की रूपरेखा, तृतीय सस्करण, पृ० ११४

देखिये, मटनागर एव शुक्ल भारतीय सस्कृति का इतिहास, पृ० १७३ यही, पृ० १६६

काल मे इसका बटवारा नहीं होता था। मृतक की विधवा का उसकी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं समका जाता था। यदि मृतक पुत्रहीन हो तो या तो वह सम्पत्ति उसके निकट कुटुम्बियो यथा-भाई, चाचा म्रादि मे चँट जाती थी, अन्यथा वह राज्याधिकृत कर ली जाती थी। लडकी का कुटुम्द की सम्पत्ति में कोई ग्राधिकार नहीं समक्षा जाता था। इस प्रथा से श्रचल सम्पत्ति—भूमि थादि—का छोटे-छोटे भागों में बटवारा नहीं हो पाता था।

सयुक्त-कूटुम्ब-प्रखाली से समाज मे सद्भावनापूर्ण वातावरण भीर सहयोग की भावना को वल मिला हुआ था, जिस का प्रभाव आधिक जीवन पर भी पडताया। शिक्षा घाँदि के लिए भी सयुक्त-परिवार भच्छी सस्यारही।

संयुक्त परिवार की प्रतिष्ठा को ब्रक्षुण्ए। रखने में परिवार का प्रत्येक सदस्य अधिक से-अधिक योगदान देता था। गृहस्वामी की प्रतिष्ठा पर पूरा कुटुम्ब का कुटुम्ब आत्मदान करने को प्रस्तुत रहता था।

समाज का ढाचा विवाह-सम्बन्धो पर आधारित है, इसलिए भारतीय समाज ने विवाह की बहुत विवाह

पवित्र चनुष्ठान के रूप म स्वीकृत किया गया है।

विवेच्य-काल में विवाह का रूप बहुत कुछ सुस्थिर-सा-होता था। सामान्यतया सजातीय विवाह ही श्रेष्ठ समभ्रे जाते थे, किन्तु मन्तर्जातीय विवाह भी नितान्त निधिद्ध नहीं थे। इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तान सकर वर्ण (अन्तराल) कहलाती थी। ' अर्थशास्त्र मे भन्तोग विवाह श्रौर प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न उस प्रकार की सन्तान को कुक्कुटक, पुनकस, वेएा, कुशीलब म्रादि सज्ञाएँ दी गई है।

मौर्यकाल मे बहु-विवाह की प्रथा थी। मैगस्थनीज के वर्णन एव कौटिल्य के 'धर्यशास्त्र' दोनो ही इस बात की पृष्टि करते है। 3 इस

देखिये, राधाकुमुद मुकुर्जी चाद्रगुप्त मौर्य धीर उसका काल, पृ० २४२

देखिये, रात्यकेतु विद्यालकार भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, 3

२ प्रयंशास्त्र, III. ७ पृ० २७२

काल में पुनर्विवाह का प्रचलन भी था किन्तु इसके लिए विशेष प्रकार की व्यवस्था थी। १२ वर्ष की कन्या और १६ वर्ष के बालक का विवाह कर दिये जाने की व्यवस्था वाएक्य ने दी है। आठ प्रकार के विवाहों का व्योरा, कीटित्य ने दिया है। इससे सिद्ध है कि मौर्यकाल से बाह्य, प्राजापत्य, आएं, देव, आसुर, गानवर्व, राशस एव पैशाच आदि विवाहों के प्रकार प्रचलित रहें होंगें ।

विषवा-विवाह नितान्त निर्मिद्ध तो नही था, फिन्तु ग्राभिशसा को हिष्टि से नहीं देखा जाता था, भ्रांपितु हेप स्थित का ही सुषक माना जाता था। 'तलाक' की प्रथा भी थी किन्तु कर्म लेल दिखेण नियम थे भीर विवाह के प्रथम चार प्रकारों में 'सुलाक' नहीं ली जा सक्ती थी। कीटलीय प्रथमालन में 'तलाक' के लिए 'मोक्ष' शब्द व्यवहृत हुआ है। चाएाक्य ने 'नियोग' प्रथा की व्यवस्था भी दी है और उसे हैप न मानने की सलाह दी हैं । स्वयवर ग्रीर सती-प्रथा का प्रकलन भी शार ।

गूप्तकाल में भी स्मृतियों से अनुसोदित विवाह के घाठों प्रकार का प्रचलन था। कातिदास ने गान्यवें विवाह भेगो निकृष्ट नहीं ठहराया। गीमैकाल की अपेका हरा काल में विवाह प्रौदावस्था में किया जाता था। इन्दुसती और शकुरतला के विवाहों की अवस्था गुप्तकातीन निके पर प्रक्रियों के सिक्त प्रकार प्रकार निके पर प्रक्रियों के विवाहों की अवस्था गुप्तकातीन निके पर प्रक्रियों के विवाह की ही प्रविद्या प्रकार निके विवाह की ही जिल्ला कहा है। महर्षि वास्स्यायन ने भी 'विगाढयोवना' के विवाह को ही उचित कहा है।

१ देलिये, सत्मनेतु विद्यालकार भारतीय सस्द्रित और उसका इतिहास, ५०२७२

१ देशिये, दयात्रकाश भारत का इतिहास, पृ० १६०

र वासय, वयायवास मारत का दान १ वही, पृ० १६०

देखिये, ग्रामनेतु विद्यालकार भारतीय सस्कृति और क्रदर इतिहास,
 प० २७३

४ देखिये, राधानुमुद मुनुर्जी चन्द्रगृत गीयं और उसका काल, पृ० २४६

६. मनुस्मृति १२१, याज्ञबल्बय १.५८-६१

७ मिनानसाङ्गलस्, ३२१ म. एतेन, युस नवाइन्स, धीट न०१

<sup>---</sup> ५००, पुरु प्याद्व्य, व्यट्ट् € कामसूत्र, पु०१६३

विधवा विवाह, मोक्ष (तलाक), नियोग, सती ग्रादि की प्रया प्रचलित थी। सभवतः विवाह में तिलक, वहेज ग्रादि प्रयाका ग्रभाव था ।

धार्य-सस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है—वर्ण व्यवस्था। भारत-प्रवेश के पश्चात् ही श्रार्थी ने श्रपने समाज को चतुर्वर्णी मे

प्रस्थापित कर लिया जिसके स्राधार पर वर्ण एव वर्ग-व्यवस्था समाज की गति का सवालन सुज्यवस्थित हो गया। कालान्तर में इस ज्यवस्था नै

कुछ दृढ और स्थिर रूप बारएं कर लिया और संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अग वन गई।

मीपेकाल ने बाह्मण, शनिय, बेरय और तृह वर्ण अपनी अपनी सीमाघो ने रहते हुए भी निताल असपुत्त नहीं थे। बीद्ध-धर्म की अतिष्ठा के कारण, कहिंदी या अप्य किसी कारण से हर काल के प्रारम्भ में ब्राह्मण वर्ण को वैदिक कालीन आदर नहीं मिल पा रहा था। यही कारण था कि चाएावय जेते सहात् पण्डित को भी सीघे राजनीति में उत्तर आना पड़ा। सोयंकाल की पुत्र वासतन-ध्यनस्था ने एक बार पुन बाह्मण वर्ण को प्रतिष्ठित किया, किन्तु प्रशोक के शासन में पुन बौद्ध धर्म चरमोजित कर गया जिसके फलस्यरप सनातन धर्मी स्नाहाणों न तेक कुछ सीका एडके लग नाय

इस काल ने वर्ण-ज्यवस्था बढी जटिल हो गई थी तथा इसका प्राधार कमें न हीकर जन्म हो गया था। राजा का तरम कर्त्तव्य था कि उस वर्ण ज्वस्था की रक्षा करे?। इन चारो वर्णों के प्रतिरिक्त मीर बहुत से व्यावस्था की रक्षा करे?। इन चारो वर्णों के प्रतिरिक्त मीर बहुत से व्यावसायिक वर्णों थे जिनको दनमें ही अन्तर्भृत्त समका जाता था। वर्णों के साथ प्राथ आध्यम व्यवस्था पर भी बल दिया जाता था भी र सहावये आध्यम में दिखा पाने के लिए राजकुमारो तक को बढ़े बढ़े गुरुकुलों में जाना पटता था।

जिसिक कपर लिखा गया है विवाहादि के सम्बन्धों में सवर्ण-जिसिक कपर लिखा नया है विवाहादि के सम्बन्धों में सवर्ण-प्यवस्था हो प्रधिक उपयुक्त समभी जाती थी किन्तु लियोग परिस्थितयों में इंग ज्यवस्था के प्रतिकुल झांचरण भी होता था, यद्यपि ऐसा करना बहुत शन्द्री बात नहीं मानी जाती थी।

१ देखिये, वासुदेव उपाध्याम सुप्त साझाज्य का इतिहास, भाग २, पृ० २४५ २ देखिय, दयाप्रवाश भारत का इतिहास, पृ० १८६

इस वर्एं-व्यवस्था के विषय में मैगस्थनीज ने लिखा है--किसी को अपने वर्ण से वाहर विवाह करने की अनुमति नहीं थी, कोई अपने व्यवसाय ग्रयवा शिल्प के अतिरिक्त दूसरा व्यवसाय या शिल्प नही यगीकार कर सकता था। " वस्तुत मैगस्यनीज ने तत्कालीन समाज के सात वर्गों का विवेचन किया है और वह वर्ग-व्यवस्था को ठीक से समभ न सका । मैगस्थनीज के अनुसार उस समाज के सात वर्ग निम्न-लिखित थे-१ दार्शनिक, २ इपक, ३ म्वाले, ४ कारीगर, ५ सैनिक, ६ निरोक्षक और, ७ समात्य। इन वर्गों मे दार्शनिक वर्गको सर्वथेष्ठ स्थान प्राप्त था। वस्तुत यह वर्गप्राह्मणु-वर्णसे सम्बन्ध रखता था। भविष्यवाणी करना और शिक्षा देना इनका कार्य था। दसके प्रधात् 'दूसरा वर्ण कृपको का था। जनसंख्या का अधिकाश भाग इसी वर्ग के लोगो का था।' इसके पश्चात् आसेटको और पशु-पालको का वर्ग भाता है। वस्तुत उसका यह वर्गीकरण किमी निश्चित वैज्ञानिक व्यवस्था पर बल नहीं देता नयाकि 'इस यवनदूत का सामा-जिक पर्यवेक्षण थिशेष महत्त्व का नहीं । यह भारत की सामाजिक ब्यवस्था से भली प्रकार परिचित नहीं या।'ध

इसके अतिरिक्त दास-प्रथा भी प्रचलित थी। दासो के साथ सामान्यतमा भ्रच्छा व्यवहार किया जाता था।

भुप्तवाल से वर्ण-व्यवस्था और भी गुद्ब हो गई थी। वास्त्यायन नै उसका विदाद विवेचन किया है। उम समय समाज चार वर्णों में विभक्त हो गया था और इन वर्णों और आश्रमों का पासन करना भावदयग हो गया था। इस काल में कई उपजातियों ना निर्माण हो गया था जो व्यवसायाधरित थी। 'कामस्य' एवं मजन जाती वन गई थी, किन्तु इतिहासकारों के प्रनुसार आह्मण, क्षप्रिय भ्रावि जो

१ देखिये, राषाकुमुद मुकुर्जी चन्द्रमुस मीयै भीर उसका काल, पृ० २५६ २ देखिये, सत्यवेत् विद्यालकार भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास,

पृ० ४७० ३ देखिमे, राधाकुमुद मुकुर्नी चन्द्रगुप्त मीर्य और उसका काल, पृ० २४४

४ पालम, रामाकुमुद मुकुता चन्द्रमुत माय आर उसका काल, १० १८१ ४ भगवतसरारा ज्याच्याय ज्ञाचीन चारत का इतिहास, ५० १४१

५ दयाप्रकारा चारत का इतिहास, पृ०१=६

यग्धिमावारस्थितिलक्षरात्थाच्च नौक्यात्राया । कामसून, पृ० २०

लेखक थे, वे कायस्थ कहलाते थे<sup>9</sup> । शूद्रक ने भी कायस्थी को न्याया-लय-लेखक दतलाया है<sup>य</sup>। इनके इलावा इस काल मे शूद्रो के चाण्डाल, ग्रन्त्यज ग्रादि प्रभेद भी हो गये थे। ये ग्रस्प्रय समक्षे जाने लग गये थे।

इस काल मे चारो वर्गों मे परस्पर अच्छा सम्बन्ध था तथा म्रापस मे विवाह-सम्बन्ध भी स्थापित था ।

वस्तुत वर्ग-व्यवस्था आर्य-सामाजिक जीवन की प्रमुख सस्या रही। प्राय सभी सम्राटो ने, जो अधिकाशतया क्षत्रिय होते थे. इस व्यवस्था की सुरक्षा मे योग दिया। ब्राह्मण-वर्ग प्रपने त्या**ग श्रीर** तपोमसजीवन के कारण सूर्घन्य पद का ग्रधिकारी रहा। मौर्य साझाज्य त्यागन जानन क कारण धुमन्यपद का आयकारा रही मिन्न हो आवस्य का सस्यागक और महासहित प्रचान प्रमाश नामाय नाणवय पूस की ओरची में निवास करता था। चन्द्रगुप्त ने कृषन-वर्ग और व्यापारी-कर्ग की गुविषा के निमे पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इससे वेदस-वर्ग की शार्मिक जति हुई। गुप्तकाल में इस क्यवस्या में पुढ़का ही आई। मालोच्य नाटुको के प्रयोवलीकन से तत्कालीन वर्ण-व्यवस्या सम्बन्धी ऐति-हासिक विवरण की पृष्टि होती है।

पुरुप और नारी सामाजिक जीवन रूपी रथ के दो समान महस्व-पूर्ण पहिंदे हैं। आदिकाल में तो नारी को पुरुप से अधिक महस्वपूर्ण स्थान प्राप्त या किन्तु धीरे धीरे पुरुष ने नारी की स्थिति सत्ता को अपने हाथ में कर नारी का

स्थान अपने से बहुत नीचे कर दिया।

मैंगस्थनीय के विवरणो और अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से ऐति-हासिको ने निष्कर्ष निकाला है कि मौर्यकाल मे नारी की स्थिति सामान्यतया अच्छी मही यी। र स्त्रियाँ खरीदी व वेची जाती थी। एक जीडा वैल या गाय देकर कन्याएँ विवाह के लिए खरीद ली जाती थी। स्त्री को प्राधुनिक अर्थ की स्वतंत्रता भी नहीं प्राप्त थी। विवाह में भी उच्चकुल का व्यक्ति निम्नकुल की स्त्री के साथ विवाह कर लेता था

देखिये, भोमा मध्यकालीन मारतीय सरकृति, पु० ४७ 8

भृच्दकदिकम्, € १४

फाहियान का यात्रा विवरण, पृ० ३१

देखिये, बासुदेव उपाध्याय मुप्त साझाज्य का इतिहास, माग २, प्० २०६ ¥ सरवनेतु विद्यासकार भारतीय सस्कृति भीर उसना इतिहास, प्० २७३ ¥

30

या सरीद कर रसेल रस लेता था। पति की आज्ञा के विना घर छोड़ कर जाने तक में बहु दण्ड की भागिनी बनती थी। पर्दे की भी प्रया थी। किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि स्त्रियों की स्थिति नितान्त अनुस्रत थी। समाज में स्त्रियों का भादर होता था तथा सामाजिक जीवन में भाग लेने की उनको पर्याप्त स्थतंत्रता थी। उनके प्रति प्रस्पाय करने वाले व्यक्ति को राज्य की और से दण्ड विया जाता था।

इनके खितिरिक्त कुछ दार्श्वनिक स्त्रियाँ भी होती थी, पर वे संगोग नहीं करती थीं ।

गुरिकालीन समाज में स्थियों का स्थान श्रीयक उच्च था। रिनयी गृहलस्मी समभी जाती थीं । स्त्री की प्रादर्श एरमी एवं विदुषी बनाने के लिए स्त्री-तिहा पर भी जोर दिया जाता था। कालिवास के 'साकुन्तलम्' में दाकुन्तका हारा प्रेम-पत्र-तेखन का वर्षोन प्रस्ती पृष्टि करता है कि गुप्तकाल में स्त्री-तिहा का अच्छा प्रवार था। गुप्त-सम्राटों के सिक्कों पर राजाओं के साथ राजमहिषयों के जित्र इस बात का साक्ष्य प्रसुत करते हैं कि तत्कालीन समय में स्त्रियों को प्रच्छा स्थान प्राप्त था। पद की प्रथान प्राप्त भारत है कि तत्कालीन समय में स्त्रियों को प्रच्छा स्थान प्राप्त था। पद की प्रथा भी नहीं थीं ।

इतना होते हुए भी रुप्री की जतमान व्यर्ध बाली स्वतंत्रता का स्थाव था, कोडुन्चिक कम्पति में करेट दायाधिकार भी प्राप्त नहीं थे । विवाह में झागुर, राक्षा और दंशाच विवाह उनकी दयनीय स्थिति की ही मुचना देते हैं । यह पिवाह-प्रया भी थी ।

सब मिला कर प्रालीज्यकालीन समाज में स्त्रियों की दशा न हो प्रस्पन्त युरी थी और न बैदिककाल के समान शीर्पस्थानीय ही। वह सामान्यतया 'बदुर्ग्यहेली' का जीवन व्यतित करती थी और ज्यपने सद्गुल्यों के कारण ममान पाती थी तथा दुर्गुलों के कारण उप प्रमुख्यों के कारण प्रमान पाती थी तथा दुर्गुलों के कारण उप प्रमुख्यों के कारण प्रमान पाती थी अधिक के प्रमुख्य प्रमुख्य सम्मि आवी थी। शिक्षा का प्रसार मीर्यक्राल की प्रपेशा ग्रुपकाल में प्रधिक हो गया था, तब भी स्त्री को बहुत उच्च स्थान नहीं मिल सका

२७२-७३.

दयाप्रनादा : भारत का इहितत, पू॰ १६१

२. देखिमे, रापाकुमुद मुकुर्जी : चन्द्रमुस मीर्थ और उसना बाल, पृ० २४८ २. देखिमे, भागुदेव उपाच्याय : ग्रुत सामाज्य ना इतिहास, भाग २, प०

४. यासुदेव चपाच्याय : गुप्त साम्राज्य का इनिहास, न्नाम २, पृ० २४४ ४. यही, प्० २४२-४१

था। दुःयन्त शकुन्तला के साथ किये गये गान्धर्व विवाह को खटाई मे हाल कर उसे प्रपमानित जीवन व्यतीत करने के लिए विवश कर देता है। उबर कण्वाश्रम में भी उसके लिए कोई स्थान नहीं बच पाता जवकि इसमे शकुन्तला निर्दोप थी। यदि स्त्री की अवस्था बहुत अच्छी होती तो कालिंदास की शकुन्तला को भरे-दरवार मे इस प्रकार ग्रामानित नहीं होना पडता। गुप्तकालीन इतिहास भी इस बात की पृष्टि करता है।

प्रत्येक यूग या समाज-विशेष की अपनी एक विशिष्ट रहन-सहन-पद्धति होती है। युगानुकूल वेशभूपा, श्राहार, ग्रावास, ग्रामीद प्रमीद मादि को

रहन-सहत का ढंग

इतके अन्तर्गत सिश्चविष्ट किया जा सकता

है । मौर्यकालीन समाज का रहन-सहम सारियक होते हुए भी मलकृत था। मैंगस्थनीज ने उस समय के नियासियों में यह देखा कि जीवन की सरलता के बावजूद भी वे लोग नाना प्रकार के तथा घटकीले रगी के यस्त्र पसद करते थे। सोने चाँदी, हीरे-जवाहरात के आभूपए। तथा बेलबुटेदार मलमल का प्रयोग करते थे। वस्तों में पूर्व उपगीप और उत्तरीय का प्रयोग करते थे। निम्नोकर्स ने सिन्धू नदी के किनारे रहने वाले लोगो ने वस्त्रों के बर्ग़न में लिखा है कि वे लोग चमकदार सूती बस्त्र पहनते थे। एक पिण्डली तक लम्बा कूर्ती तथा दी अन्य बस्त होते थे जिनमें से एक को कधे पर डाल लेते और दूसरे को सिर पर बांध लेते थे। हाथी-दांत के कुण्डल चमडे के सफेद जुते जिन पर बेल-यूटे कडे होते थे, उन्हें अधिक पसद थे। शरीर पर सुगन्धित भ्रगलेपन का प्रचलन था।

भीजन में चावल, जी, गेहूँ आदि प्रमुख खाद्यात्र थे। लोगो का ध्यान सुरवादु भोजन की ग्रीर अधिक था। भोजन में मास का भी प्रयोग था किन्तु मर्दिरा का विशेष स्थान नहीं था। मदिरा पर राज्य-नियत्रएा भी था और केवल उत्सव समारोहो मही खुलकर प्रयोग की छूट रहती थी। सामान्यतया मुर्य बाहार भात था जिस पर मसालेदार मास रखा जाता था। भोजन करने के लिए विशेष प्रकार की मेज बनी होती थी जिस पर सोने-चाँदी के प्यात भी रखे जाते थे। भोजन ग्रकेले करना

देखिये, राषाकुमुद मुकुर्जी चन्द्रशुप्त मौर्य और उसना काल, पू॰ २५७ यही, पृ० २५७

सत्यनेत् विद्यालकार भारतीय संस्कृति चौर उसका इतिहास, पृ० २७६

प्रया थी । बाज़ारों में भी कई प्रकार का भोजन उपलब्ध होता था। मैगस्थनीज ने पाटलिपून नगर के निर्माण में सकडी वा विशेष

उपयोग बनाया है। भवन सुन्दर और कलापूर्ण ढग से निर्मित होते थे। भीजनालय, स्नातामार आदि की अलग-अलग ध्यवस्था थी। प्रासादों की दोभा बढाने के लिए सुनहरे स्तम्को पर सोने की उभरी हुई बैलें मण्डित रहती थी। प्राय घरों की दीवारों पर सुन्दर चित्र-कारी की प्रया थी।

श्रामोद-प्रमोद के कई साधनों का उल्लेख मैगस्थनीज नै मी

जिया है और सरकालीन साहित्य में भी उसका अनुमोदन होता है। आम्तरिक खेलों से सकरज अधिक प्रिय तेल था। कुछ ऐसी पेनेवर जातियाँ भी थी जो अपने कौनुकों में मनोरजन किया करनी थी यथा—
नट, नर्तक, गायक, बारक, बारजीवक, कुलीव्य प्रांदि। इनके प्रति-रिक्त क्षावेद, नाव चलाना, बीड, दगज, कुली ब्रादि प्रतेक मनोरजन के बाह्य सापन थे। स्वय राजा व सामान्त वैनों और फोडों की बीड करखते थे जिन में सीने-चींटी वी बाजी लगाया करते थे। युगों, बटेरों, घोडों, मेंसी और हावियों की लडाई भी होती थी। भागाजिक उसवों और रोहोंहों पर प्रामाने-प्रमोद किया जाता या। सीपावती, गिरिपूजा, पुप्त-मनारोहों पर प्रम मची स्ति वी राजा के जम-दिवस का ममारोह भी मनाया जाता था। राज्य में स्थान-स्थान पर उद्यानों का प्रवन्य भी था, जिनमें कृतिन में जात्व तिनित होने थे। 'क्षावानिक का महारोह भी था, जिनमें कृतिन में जाता, तहहित थी। 'क्षावानिक का मारा के का मता के स्थान का स्थान के स्थान का स्थान के साहित्य की पुणों की नरारों, जाता, तहहित प्रीर कालित कलाओं का अध्वार जाता, तहहित प्रीर कालित कलाओं का अध्वार जाता, तहित प्रीर कालित कलाओं का अध्वार तानों कहा है ।

रहन-सहन का यह भौतिक जीवन गुप्तकाल में अपनी पराकाधा को पहुँच गया था । लोग सुखमय जीवन वितात ये । फाहियान में तत्कालीन समाज को सुख-अस्पत्ति का वडा सुन्दर वर्एन किया है ।

गुप्तकाल में रेझामी खौर कली वस्त्रो का प्रयोग वहूत श्रायिक यह गया था। कुछ रेशमी वस्त्र चीन से आते थे जिनके लिए चीनागुक

दैलिये, राधारुमुद मुकुर्जी चन्द्रगुप्त मीर्य धोर उसका काल, पृ० ६३
 चृतिया भारतीय सम्यदा धौर सस्कृति का विकास, पृ० १७०

सजा दो गई थी? । साधारण पुरुष उप्णीप तथा राजा मुकुट धारण करते थे । स्वियां साही-चीली का भी प्रयोग करने लग गई थी। गुप्त- काल में प्राभूपण का प्रयोग बहुत प्रिकः होने लग गया था। वेन्यूर, हार, अपूलीयक प्रांति का प्रचलन बढ़ गया था। अमूल्य मिण्यो, रत्नी के हार, अपूलियक प्रांति का प्रचलन बढ़ गया था। अमूल्य मिण्यो, रत्नी के हार, अपूलियो, रत्न-वित्त खुवाबो तथा खुख्यतो आदि का उप- मंग होता था। वे लोग फंजान-पसद भो थे। पुंचराले केणो का वडा प्रांत था। वे लोग फंजान-पसद भो थे। पुंचराले केणो का वडा प्रांत भा । हरी, पुरुष, कच्चे सभी रखते थे। धपने केशो की सुर्गान्यत करने के लिए सुर्गान्यत चूर्ण जलाये जाते थे जिन की गर्मी से दिन्यमें अपने केशो को सुखाय करती थी ।

सोजन से जावल के घतिरिक्त गुड, दुत, दिंब, मोदक, पूपक, साल, रोटी, दूब, मिठाई धादि का जुल कर प्रयोग होता था। मुतकाल मे मास का प्रयोग सीमित समाज मे ही होता था। मदिया का नियेध भी था, किन्दु उरखमें, समारोहों के प्रतिरिक्त भी कुछ, लोग उनका सैयन करते थे। भोजन के लिए सोने, चाँबी, वाँबे, जोहे प्रावि के पान का में लाये जाते थे। में लहुन्न, प्याज धादि का प्रयोग गुप्तकाल मे प्राय बनव ही हो गया था॥

प्रावासों को कनात्मक ढण से सजाया जाता था। मीर्यकालीन सक्तडी के भवत भ्रद नहीं रह गये थे, कुन्दर तराशे हुए एक्परों के भवतों का निर्माण होता था। उब समय वा बास्तु-शिक्ष उक्तृष्ट कोटि का था। कालिदास ने 'वेघडूत' और 'अभिज्ञान-शाकुन्तकम्' में जिन कला-पूर्ण खावासों का वित्रण किया है वे गुप्तकास की वास्तुकला की जलक्ता के प्रमाण हैं।

चौमड और शतरल घर के भीतर लोकप्रिय आमोद-प्रमोद के साधन थे। " उत्तरकालीन मीय-साम्राज्य में बोद्ध-धर्म के कारण

 <sup>&#</sup>x27;चीनायुक्तिव केती प्रतिवात नीयमानस्य'—प्रभिक्रानसाकुत्तलम्, १३१

२ वापुदेव उपाच्याय शुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० २३४

जालोदगीर्णे चपितवपु नैदासस्कारष्ट्र । पूर्वमेष, ३२
 देखिये, बाटर ह्यान्साग, माग १, पृ० १४०, १४१, १६८, १७६

श्र डा॰ वासुदेव उपाच्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० २३०

जूनिया भारतीय सम्यता तथा संस्कृतिका विकास, पृ० १६७

\* 8

आतर का महिमा कम हा गई था, किन्तु भूतकात के आदन्आत उसकी पुनः प्रतिष्ठा हो गई । नटों, कलाविदों, नाटकों, प्रहुमनों, मेकों धौर तमाशों का प्रचुर प्रचलन था। पशुष्मों की लड़ाई भी होती थी। यूद-मीड़ा का बहुत प्रधिक प्रचार था।

इस प्रकार आलोच्य नाटकों का काल रहन-महन की दृष्टि से भारतीय संस्कृति का जरुष्ट काल था। सब प्रकार की सुल-मामग्री एवं भोग-विलास के प्रसावनों से चुक्त यह काल इतिहास में भ्रमती सला ही विशेषता एकता था। क्या बर-माभूपण, क्या माहार, क्या आवारा, राभी दृष्टियों से इस काल में नागरिक उत्तम जीवन अ्यतीत करते थे। उनका रहन-सहन कलापूर्ण एव सुर्शवपूर्ण था। वस्तुतः सुदृढ शासन-अ्यवस्या, पर्योन्त व्यापारोश्रति एवं उन्नवशील कृपि-काल से रहन-सहन का स्तर स्वयमेव ही उच्च हो जातत है।

समाज की उप्रतिचील भवस्या का एक वहा उत्तरदायित्व उसकी घिला-पद्मति परहोता है। सामा-रिक्षा-प्रसाको जिक, राजनीतिक एव घामिक जीवन के

सुप्रवाह को शिक्षानुमीदित मस्तिष्क ही भली प्रकार से चला सकता है।

मीर्यंकालीन शिक्षा भारतीय संस्कृति के इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्णं स्यान रसती है। शिक्षा का कार्यं ब्राचार्यं, पुरोहित, श्रोष्टिय

महुस्तपूर्ण स्मान रस्तती है। विवात का कार्य बालायं, पुरोहित, श्रीविध्य ध्यादि करते थे जिन्हें राज्य धीर समाज की धीर से घन, भूमि प्रावि की पूर्ण सहायता दी जाती थी। तबादिका विकारणालय उत्त समस का विवस्वविध्यात थी जाती थी। तबादिका विकारणालय उत्त समस कार्दिक के स्वादक्षियात थी वहुत असिद थे। तत्कारांची माचारणालये कार्दि के विवस्वविध्यात थी वहुत असिद थे। तत्कारांची माचारणा धूमचे विद्यात के वेद, प्रष्टाच्या विच्या, विविध्य दिस्स, प्रजुविचा, पृस्तिविधा, मनन-विच्या, पश्चियो की बीसी सममने की विच्या, विविद्यातादात आदि की विद्या के वाला देवे । तत्वादिका में एक आवार्य के चार १९०० विच्याची रहते थे जहाँ उज्यक्तित के राजकुमार भी विद्या पात विदे । तत्वादिका से तत्व त्वा विच्या विव्या विव्या विव्या विद्या विद्या की विद्या विव्या विद्या वि

फीस चुकाते थे, जो लगभग १००० कार्पापरम होती थी<sup>९</sup>।

जुप्तकाल में तक्षाज्ञाला विश्वविद्यालय की भाति नालग्दा महा-विद्यालय शिक्षा का प्रस्थात केन्द्र था। उसे यद्यापि राज्य की और से सरक्षण मिला हुया था, किन्तु अन्तेवासी अपनी फीस देते थे। इस काल में विक्षा सरहत और प्राह्त दो भाषाओं में दी जाती थी?। गुरु भौर विष्य का सम्बन्ध पिता-पुत्र का-सा रहता था। इस काल में स्त्री-विक्षा की और भी विशेष प्यान दिया गया था। वेद-वेदागों के साथ दर्शन, प्रस्-वान्त्र, आयुर्वेद, धनुप-कला, सर्पेदिया, मिथिकला भादि की दिक्षा भी दो जाती थी। जीनी गानी फाहियान और हुनेस्सा

ने सहस्रो सस्यागारो का वर्णन किया है जिन में शिक्षा दी जाती थी । पाटलिपुन परीक्षा-केन्द्र था। गुप्तकाल में लिपि का भी पूर्ण विकास हो गया था जिसे गुप्त-

लिपि कहा जाता था। यह ब्राह्मी लिपि का ही रूप थी।

मौर्यकाल भीर गुप्तकाल की सुविक्षा में बौद्धिक भीर दारी-रिक बोनो प्रकार की शिक्षा का स्थान था। तत्कालीन राजनीति की ध्यान में रखते हुए युगानुक्रल शस्त्र-विद्या प्रवर्य दी जाती थी। राजकुनारों भीर सामन्तकुमारों की शिक्षा इस हिंदे से कुछ विशेष महत्त्वपूर्ण हुमा करती थी। चाएक्य जैसे निष्णात मीति-विद्यारद श्रीर वर्राच, नतस्त्रिल जैसे महान् वैय्याकरण इस युग की शिक्षा की सेन थे। उनके प्रतिरक्त गुप्तकालीन कालिदास, चरक, शुद्रक शादि विद्यानों की शिक्षा का श्रेय भी तत्कालीन पदित को ही है।

सम्यता और सस्कृति के साथ-साथ समाज को धार्मिक श्रवस्था में भी परिवर्तन होते हैं। शालोच्य-नाटको का काल भौतिक एवं राजनीतिक उन्नति की हृष्टि से अपने

धानिक स्थिति घरमोत्कर्प पर था। यथपि मौगंबाल के पूर्व ही भारत मे बौद्ध और जैन धर्मी गा काविमौंब हो चुका था, फिल्तु उसके प्रारम्भिक काल मे सामान्य-

दैक्षिमे, सत्यनेतु विद्यालनार भारतीय संस्कृति भीर उसना इतिहास, पूरु २७८

पृत्र २७८ २. देवियो, टा॰ वामुदेव उपाध्याव बुस साम्राज्य वा इतिहास, भाग २।

पु॰ १८३ ३. वही, पु॰ १८२

83

तमा वैदिक देवतायों को उपासना का सर्वन प्रचार था। इस्त्र, वस्त्रा भ्रादि देवनाभ्रों की स्तुति और पूजा भी प्रचलित थी। वासुदेव, इस्त्रा और वलराम के उपासक भी थे। साथ ही गंबीदित बीढ़ भीर जैन-मत भी धीरे-धीरे ग्रमने उत्कर्य की और वह रहे थे। वस्तुत. मीर्य-सासक उदारपर्यों से, इसलिए मभी भारतीय धर्म फूल-फल रहे थे। ब्राह्मस्य-पर्यों यतो और अनुसानों का भी प्रचार कम न था।

इसके बायजूद भी मीर्थकाल में बौद्ध-घर्म भीर जैन-घर्म को भ्रिक उन्नित करने का अवसर सिला। क्या वन्द्रमुख नीय ने जैन साधु अप्रवाहु का जिप्यत्व स्वीकार कर जैनयमाँनुर दीका ग्रहण की एवं सिहानन का त्याप कर दिया। राज दरवार में जैन-प्रभाव द्या चुका था। इयर बौद्ध-घर्म भी विकसित होता जा रहा या श्रीर अयोक के सासन-काल में तो यह जनति की वरमावस्था की पट्टैंक प्रमा। प्रधाप अरोक स्वय बौद्ध-घर्मानुयायी हो गया था भीर उसने उसके अवाह के सिहा के सि

पुस्तकाल में सनातन-धर्म ने पुनः अपनी लुस्त प्रतिष्ठा का उद्धार कर लिया। वस्तुतः मोर्स राजध्ये के पतन के परचात् ही लिहिसात्मक सद्दम्मों की निर्वीयंता से शासक-ममुदाय जनने लग गया था। पांतेदादि साहिसक कर्मी पर भी धर्म कर प्रावद का जाने के जो दुर्वजता ह्या रही थी उनसे स्वभावतः बीर जाति अपना पीछा छुडाना पाहती रही होनी। इसके शतिरिक्त वीद-धर्म में कितने ही मनाचारी का प्रचार भी बढ़ने लग गया था। परिखामत. पुष्त-काल में पुन अद्भिय यशों को बाढ आयो, वैदिक देवी-देवतायों का आहान और प्रावद कर्म के लिहिस कर्म-के कि स्वान हरी-धिक्य, विश्व स्वान की स्वान की प्रवाद आदि स्वारारों का पूजन-कीर्तन होने चना। शिंत की पूजन की भी प्रोत्तिक दिनी है के वीद-धर्म की प्रवाद आदि स्वारारों के प्रवाद आदि स्वारारों के प्रवाद आदि स्वारारों के प्रवाद और स्वारारों के प्रवाद आदि स्वारारों के प्रवाद अपने स्वारार्थ स्वत्व है। यह स्वाराय सद नहीं के वीद-धर्म अपने स्वाराय अद नहीं के वीद-

रे. देखिये, बार राषाकुमुद मुकुर्जी : बन्द्रमुप्त मौर्य धीर उत्तका काल, पृरु ६७ -२. बार वामुदेव उपाध्याय : गुप्त साम्राज्य का दृतिहास, ग्राम २, २२२-२४

गित धारण निये हुए थे। सम्राट् छदारचेता थे, अतएव बौढ-विहार स्रीर मठी की न्यापना का कार्य भी छतनी ही तीव गित पर या जितना कि सूर्य मन्दिर और जितना कि स्वापना निर्माण। उन्होंने किसी धर्म-विदेश के साथ पहणात का व्यवहार नहीं किया। सम्राट् समुद्रापुक सम्राय में कितने ही विहारों और यठों को प्रतिस्थापना इसका प्रमाण है। हाँ, समय के प्रमाल के कारण निरोक्यरनारी बौढ-धर्म में भी भिक्त का प्रसार होने बाग गया था, ध्यतारवाद को करणना को बल मिलने लग गया था।

बस्तुत भारत की प्राचीन चार्मिक नीति विवादासक होते हुए में वदार रही और वहाँ के सम्राटो का सभी के प्रति समान व्यवहार रही और वहाँ के सम्राटो का सभी के प्रति समान व्यवहार रहा । यहाँ कारए। है कि सीवंकाल के ससकत नाटको से तातत-भभी देवी वेवताभी का प्रभुत वर्णन उपलब्ध होता है और गुप्तकालीन नाटको से बौद्ध-धर्म और जैन धर्म के प्रति भी उपेक्षा का भाव हिट-गोचर नहीं होता। जनता धर्म-प्राए थी, चाहे बहु किसी धर्म में विवस्तास करती हो। जन जीवन से धर्म को नैतिकता के साथ स्वीकार करती हो। जन जीवन से धर्म को नैतिकता के साथ स्वीकार करती हो। जन जीवन से धर्म को नैतिकता के साथ स्वीकार करती वालाला चा और मन्दिरों झादि के निर्माण को प्रोत्साहन मिला हुम्रा था। प्राप धार्मिक स्वत-नता ची घरि किसी पर धर्म के जवर्दस्ती नहीं लादा जाता था। तभी धर्मों से वार्षोनिकता का समावेश ही चुका था। जिनको लेकर समय-समय पर समाबी घरि राज-वरदारों में साराम होते थे।

सामाजिक जीवन के यूल म अर्थ-व्यवस्था का बढ़ा महत्त्व है। समाज की सुख-समृद्धि का अनुमान उसके आर्थिक ढीने से भी लगाया

मनुमान उसक प्राथक ढान स भा लगाया जा सकता है। भालोच्य नाटक-युगो मे

श्रापिक स्थिति भारतीय समाज गुल-मुनिया के साधनो से सम्पन्न या, क्ला-बोशल की उन्नित में सचेपन या, क्ला-बोशल की उन्नित में सचेपट या एवं आमोद-प्रमोद के क्षेत्र में पर्याप्त विकासशील था। मृत्यप्त सिप्तप्त होगी। इविहान इस बाव ना साक्षी हैं कि मीसँबाल भीर गुरुवनाल में मारतीय समाज सभी हर्षिट्यों से पर्याप्त उन्नित नर गया था। उत्तरी भार्यक स्थित में स्थापन स्थापन स्वति मार्ग स्थापन स्यापन स्थापन स्यापन स्थापन स्य

१ देखिय, सुविधा भारतीय सम्यता तथा सस्कृति का इतिहास, पृ० १६२-६७

मीर्ये वश भारतीय साम्राज्य के क्षितिज म प्रथम ऐतिहासिक घटना थी, किन्तु उसका विकास इतनी तीवता एव सुहदता के साथ हुन्ना कि भारत का यह प्रथम साम्राज्य माज तक अनुकरसीय वना रहा। प्राचीन सम्यता के उस दौर में 'देश के आर्थिक जीवन का बहुत वहा भाग राज्य के नियन्त्रण मे था। देश के कृपि, उद्योग, तथा व्यापार पर राजा का नियन्त्रख था ।"

इधर गुप्तकाल भारतीय इतिहास में स्वर्ण-युग के नाम से प्रस्पात रहा है। साहित्य के साथ-साथ कला-वौदाल भीर भौतिक उत्तति में इस काल ने अपने आपको बहुत आगे प्रतिप्ठित कर रखा था। "ग्राध्यात्मिक उनति के साथ-ही-साथ घन धान्य की भी प्रचुर वृद्धि हुई। गुप्तकाल मे जनता वैभवज्ञालिनी यी तथा सुख से अपना जीवन व्यतीत करती थी" । पूरे साम्राज्य मे कोई भी मातं, दरिह, व्यसमी, कदर्य मयना दु ली नहीं था । इससे सिंख होता है कि भालोच्य नाटक-काल में समाज की भाषिक स्विति पर्याप्त उत्तर थी।

किसी समाज या राष्ट्र की धार्षिक व्यवस्था की घाघार-शिलाएँ कृपि, बाल्पिज्य, विनिमय प्रलाली, व्यवसाय घादि होती हैं। मौर्यकाल ग्रौर गुप्तकाल के समाज में उनकी ग्रवस्था निब्चय ही समुन्तत थी जिसके फलस्वरूप तत्कालीन समाज का स्राधिक ढाँचा इतनी प्रगति पर था।

वस्तुत भारत की आर्थिक व्यवस्था मे एक धडा उत्तरदायित्व-पूर्ण योगदान कृपि का रहा है। शस्यस्यामला भारत भू सदैव ही

धन धाय उत्पादक रही है। इसलिए कृषि जिस किसी भी शासक-वग ने यहाँ की

कृपि-व्यवस्था को सर्वप्रथम स्थान दिया उसी के काल में भारत का श्राधिक स्तर उन्नत रहा।

मौर्यकाल म स्वय प्रथम सम्राट्ने इस भ्रोर विशेष घ्यान

१ रायाकुमुद मुकुर्जी चाद्रपुप्त मीर्य ग्रीर उसका काल, पु० २६० ₹

वही ।

धासुदेव उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, ५० ४३

मातों दरिहो व्यसनी कदयों, दण्डची न वा यो मुदावीडिन स्वाद ।--स्क द-पुप्त का जुनागढ वाला क्षेत्र ।

दिया। स्वय राजा की निजी जुमीन के रूप में देश की कृषि का वड़ा भाग रीवे-सीचे राज्य के हाथों में थां। मैगस्नानीज हारा विश्वत तत्नालीन समाज के रात वर्गों में कृषक वर्ग को हितीय स्थान प्रास्त था। देश की जनता में कृषकों की संख्या सबने अधिक भीर। ये लोग युद्ध करने तथा अस्य राजकीय कर्लव्यों से मुक्त रहते थें। युद्धकाल में भी से सुरक्षित रहते थे तथा कीई भी पश कृपक-वर्ग को हानि नहीं पहेंचाता था।

राधात्रमुद मृशर्भी चाडगृत शीय भीर उसका वाल, प० २६०

र देखिय भगवतधरण उपाच्याय प्राचीन भारत का इतिहास पू० १४४-४५

मंगरवतीज, देशिय, सत्यवेतु विद्यालकार आरतीय मश्कृति भीर उसका इतिहास, पृ० २१८

स्ट्रदामा का जुनगढ वाला लेखा देखिये, भगवत्तरारण उपाध्याय प्राचीन भारत का द्वतिहास, पृथ् १४३

मारत ना द्वातहार, पृ० १४३ देखिये, सत्यनंतु विद्याननार भारतीय सस्त्रति सौर उसना द्विहास, प्०२४=

६ देखिय, सूनिया भारतीय सम्यता तथा संस्कृति का दतिहास, पु॰ १६८

ऐतिहासिक परिचय यह राजकीय सुरक्षा एवं नागरिक सुरुचि का ही परिएगम या कि वर्ष मे दोनों फ़सलें अच्छी प्रकार उत्पन्न की जाती थी। फमलों में

719

विभिन्न प्रकार के चावल कोदों (कोद्रव) तिल तथा केशर, भूँग (मुद्रग) उडद (माप), मसूर, कुलुत्य ग्रादि दांलें, यव, गेहूं (गोधूम), कलाय, अलसी (अतसी), सरमो (सर्पम) शाक, मूल आदि सन्जियाँ और कद्दू, लौकी, क्रुप्मांड, अगूर, (भूदबीका) आदि फल तथा गन्ते का उत्पादन होता था ।

गुप्तकाल में भी कृषि की प्रधानता रही। गुप्त-सम्नाटों ने भी कृषि को महत्त्वपूर्णस्थान दिया। राजासमस्त भूमि का माप कर-वाता था तथा उस भूमि को दुकडों-प्रत्यय में बॉटता थारे। सिचाई की क्रोर भी गुप्त सञ्जाटो ने पूर्ण ध्यान दिया। चन्द्रगृप्त द्वारा निर्मित 'सुदर्शन' बाँघ का जीर्णोढार स्कन्दगुप्त द्वारा किया गया था। इसके मतिरिक्त गुप्त-नरेश मादित्यसेन की की ने भी एक बृहत् जलाशय का निर्माण कराया था । सिचाई की उस व्यवस्था और सम्राटों की निगरानी का स्वाभायिक परिणाम यह निकला कि भूमि उर्वरा हुई भीर देश घन-घाम्य पूर्ण हुआ जिससे कला-कौसल भीर साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति को समर्थन मिल सका ।

वाणिज्य-व्यापार नमाज की ब्राधिक स्थिति की दूसरी मुख्य श्राधार-शिला है। वस्तुतः उत्पादन के समुचित आयात-निर्यात के विना आर्थिक षास्यिज्य-ध्यापार ढाँचा ग्रधिक मुस्थिर नही रखा जा

## सक्ता ।

मौर्यकाल में व्यापार के सम्बन्ध में राजा के उपर एक विशेष उत्तरदायित्व था। उसकी आय का यहा भाग उसी पर निर्भर होने के कारण वह सम्पूर्ण देश के व्यापार पर नियन्त्रण रखे हुए था। व्यापार के लिए नियत पण्यशालाएँ (महियाँ) होती थी जहाँ

- १. देखिये, राघाकुमद मुक्तर्जी : चहुनुस सीथै और उसका बाल, प० २६२
- २. वेसिये, कार्पस इन्सिक्यानम इडिकेश्म, आग ३. २० १४ ३. जुनागढ का केन्द्र, देशिये, कार्पस इन्सिक्ट्यनम् इडिकेटम्, माग ३, न १४

४. तस्येव प्रियभार्यया नरपते : श्री कोगादेख्या सर: ।-ग्रवरसद का दिलालेख ।

माल का क्य-विक्रय किया जाता था। व्यापार में भूर, मिलाबट, कपट, सट्टेबाजी, चोरी आदि पर राज्य कठोर दण्ड की व्यवस्था करता या ।

भाचार्य चाणन्य के अर्थशास्त्र म इस प्रकार का विधान वहें बिरतृत रूप मे किया गया है। भौर्यकाल मे भारत का द्रान्तरिक ब्यापार बहुत उन्तत था। देश के विभिन्न भागो से विभिन्न प्रकार की बस्तुस्रो का व्यापार होता था। वितने प्रकार के मीती, हीरे, जवाह-रात, मणि, मुंगा, सुर्गान्धत लकडी, साल, कम्बल, रेशम, लिनेन, कौशेय, मुती कपडे ग्रादि का व्यापार बहुत जन्मत ग्रवस्था मे था"। स्त्रिया नो भी व्यापार होता था। व्यापार जल और स्थल दोनो मार्गो से हीता था। व्यापार अपने मार्गो पर निर्मर था जिसकी उचित व्यवस्था साम्राज्य ने वर रखी थी। कौटिल्य ने प्रपने सर्थ शास्त्र में इत मार्गों की भी व्यवस्था दी हैं ।

गुप्तकाल मे व्यापार मुस्यत छोटी छोटी समितिया के हाम मे था<sup>र</sup> । व्यापार-मार्ग सुरक्षित ये ग्रीर चौर-डानुग्री का डर नहीं था । स्थल और जल दोनो मार्गों से आयात निर्यात होता या भारत से उन, रेशम, मलमल, सुझ्म वस्त्र मिएा, हीरे, हाथी दौत, मीरपख, सुगन्धित इन्य, मनाला घादि का निर्यात प्रचुर मात्रा मे होता या तथा घोडा. सोना, सूँगा, क्यूर, रेशमका तागा, चन्दन ग्रादिका विदेशा से आयात किया जाता थार । स्त्री-व्यापार भी गुप्तकाल में वर्जित नहीं था ।

गुप्तकाल मे व्यापारिक सुविधा के लिए सहको घौर जलमार्गी का भी निर्माण हमा या। अव्छे अव्छे बदरगाहो को प्रतिप्टित किया गया या मडोच के अतिरिक्त पूर्वी समुद्र-तट पर कहर, घटनाली, कावेरी पट्टनम, तादई कोरकई बादि प्रसिद्ध बन्दरगाह थे।

इस काल मे भारत का व्यापार मिल्ल, रोम, फास, ग्रीस, फाररा आदि ने साथ वड़े विस्तृत पैमाने पर होता था।

देखिये, रायात्रम्द मुक्जी च द्रगृप्त गौथ चौर असका का र प० २६६ ₹

देशिये वही. पर २७७-७= ₹

मध्यास्त्र, VII १२ 3

देखिये, वामुदेव वपाध्याय अस साम्राज्य का इतिहास, भाग २, ५० ४४ ¥

वही, पु॰ ५०-५१

मीर्यकाल भीर गुरुकाल के व्यापारिक ढाने के समुन्तत रूप ने तत्कालीन समाज को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया । श्री-बृद्धि श्रीर सुक्त-समृद्धि के सायकों में व्यापार का स्थान बहुत ऊँचा है। साथ ही राज्य-नोप को व्यापार से बहुत अधिक लाभ होता है। दोनों के इति-हास को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जन वालों में भारतीय व्यापार ग्रयनी चरमोग्नित पर था।

बस्तु का बस्तु के रााय विनिगय बस्तुत उस काल का प्रकलन माना जाना चाहिये जवांक विकले और मुद्राधों का व्यविष्कार नहीं हुमा होगा। यो सामान्यवया ब्राज तक इरा प्रवासी

का कोई न कोई रूप देखा जा सकता है।

भौर्यकाल में सिक्को और मुद्राध्ये का प्राविष्कार हो जुका था। वेदों में भी 'निष्क' नामक सिक्के का प्रयोग मिसता है'। 'प्रार्यशास्त्र' में 'कोप प्रवेदय' और 'ब्यावहारिकी' दो प्रकार के सिक्को का विवरसा दिया गया है। राजनीय कर सथा क्य विक्रय के लिए 'कोप-प्रवेदय' सिक्को को ही प्रामास्थिक काना जाता था"।

सिक्के अनेक भूम्यों के होते ये जिनका निर्घारण धातु एव प्राकार पर निर्मेर करता था। सुवर्ण, कार्यापण, पण, मापक, कार्काण प्राचंपकरिए प्रावि स्ववेदी सिक्कों के अतिरिक्त फारस के सोने के 'हैरिक' ग्रीर कांदी के 'सिगकीई' या 'रोकेस्य' सिक्के भी उस समय विनित्तम में काम श्राते थे।

मुद्रा सचालन के लिए भौर्यकाल के एक पृथक् ग्रमात्य होता या जिसे 'लक्षणाध्यक्ष' कहते थे । टकसाल का प्रथिकारी 'शीर्याण्य' कहलाता था । प्रचलित सिनको की जाच-पहलाल के लिए 'स्पर्याक' होता था 3

विनिमय प्रखाली में गुप्तकालीन समाज कुछ और ब्रागे वटा पाया जाता है। समुद्रमुप्त ने भूमि कर के लिए अन्न अथवा मुद्रा की

१ आहम्बद, ३ १२६ २

२ सत्यमेतु निवालकार भारतीय सम्कृति भीर चत्रका इतिहास, पृ० २६ = ... ३ राषाञ्चमुद मुकुर्जी चाह्रमुत मीर्य भीर उत्तका काल, पृ० २८०-८१

द्भुट दे रखी थी। मोर्यकाल में भूमि कर सामान्यतया उत्पादनाथ के स्प में ही लिया जाता था। यो कोई चाहे तो मुद्रा स्प में भी जमां करा सकता था। पर उस काल की अपेसा मुसकाबीन कुपक 'मुद्रा करा स्पेत अपिक मुद्री करा यो थे। स्वकृति हम करा करो मुद्रा सिक मुद्री को र सुदर होती थी। समुद्रमुत के सिक्को पर उसका चित्र बीएा, बाए चनुप आदि सहित है, जो इस बात को सिद्ध करता है कि सिक्को में कला प्रियता भी आ गई थी। राजा का नाम सिक्के पर अवस्य अपिक होता था। मीर्यकाल की भीति' प्रत्येक नागरिक सातु के जाकर सीविएलक है सिक्के ता सकता था। सिक्के सात्र की कार सीविएलक है सिक्के सात्र बनवा सकता था। सिक्के राज्य की ओर से ही बनावे जाते थे।

इस प्रकार आलोध्य नाटकों के काल में विगिमय के हिए सिक्कों और मुद्राओं का प्रजुए प्रयोग इतिहास सम्मत चिद्र होता है। यद्योग पारस्थिक विनिषय प्रणालों भी प्रचलित रही होगी, किन्दु पर्याप्त मात्रा म सनेक प्रकार की मुद्राओं श्रोर सिक्कों का आविष्कार यही सिद्ध करता है कि विनिमय के लिए सोने चोदो, ताबे आदि की सिक्के प्रयुक्त होते थे।

समाज की शांपिक स्थिति पर उद्योगो एव विभिन्न व्यवसायी का वहा प्रभाव पहता है। कृपि के पदमार् उद्योग एव व्यवसाय विभिन्न वस्तुयों का ही शेला है।

भौयंकाल से छोटे और वहे कितने ही प्रनार के उद्योगों को मोसाहृत मिला हुमा था। कन के कम्बल, शाल दुसाने मादि बनाये लाते थे। खानों का खुरान-उद्योग भी उन्नत था। नमक वनाने, चकडे रेगने, वस्त्र बुनने, कच्ची याद्य को गला कर नई कोडों को निर्माण करने मादि—जितने ही प्रकार के उद्योगा का प्रचलन था। कार्क प्रतिरक्त कर्णवार, लोडाव ने विषक सार्थ मुक्त था। कार्क प्रतिरक्त कर्णवार, लोडाव की नीनामा ना निर्माण, मनोरजन, ओजन वनाने, नोजिंदन, मादि कितने ही म्राय व्यवसाय को भी स्वतन्त्रतापूर्वन चलाया जाता था। गणिवार्ष एव स्पत्रीवा मादि वेश्यामी के व्यवस्त्राय भी विधाननमम्बत्र है।

सत्यवेतु विद्यालकार भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, पृ० २६६
 वही, प० २६२ ६६

Χŧ

इनके अतिरिक्त गन्धपण्या, मालापण्या, गौरक्षक, कर्मकार, तालापचारा (गाने बजाने बाले), राज (मकान बनाने वाले), मिएा-कारः (विविध रत्नो, मिएयो व होरे ग्रादि को काट तराश कर उनके आभूपए। बनाने बाले), देवताकारू (विविध देवी-देवताओं की मृत्तियाँ

बनाने वाले), जिल्पियों का भी उल्लेख 'ग्रर्थशास्त्र' में हुमा है। गुप्तकाल में सोने चाँदी के व्यवसाय के साथ लीह-व्यवसाय का प्रच्या प्रसार हुआ। कच्चे लोहे नो गला कर फौलाद बनाया जाता या तया उससे दास्त्रादि का निर्माण होताया। लोहे का व्यवसाम इतनी अधिक मात्रा में होता था कि भारतीय आवश्यकताओं की पृति के परवात् लोहा किनीशिया बादि देशों को भेजा जाता या । सम्राट् चन्द्रग्रा का महरीली लोह-स्तम्भ इस उन्नत लोह-व्यवसाय का प्रमाण है। गुप्तकाल में सोने-चाँदी के सिक्के को डालने का व्यवसाय मौर्य-काल की श्रपेक्षा ऋषिक उन्नत हो गया था। सामृद्रिक ब्यवसाय में भी

इस प्रकार आलोच्य नाटक-कालीन समाज मे कृषि, व्यापार, ब्यवनाय एव उद्योग तथा विनिमय-प्रशाली यहुत उन्नत दशा को प्राप्त थी जिससे तत्वालीन श्रायिक स्थिति का धनुमान सहज ही लग जाता है। वस्तुत गोर्यकाल और गुप्तकाल भारतीय सस्कृति के मति उन्नत नाला में परिगणित हैं जिसना बहुत बडा श्रेय तत्कालीन भार्यिक व्यवस्था के पर्याप्त विकास की भी है। दोनो कालो के शासको ने जामन को सुट्यवस्थित कर समाज की सार्थिक स्थिति को सुदृढ एव समुक्तत करने की झोर गर्याप्त ध्यान दिया। इसी का परिणाम था कि इस काल में माहित्य, कला-कौशल आदि की पर्याप्त उन्नति हो सकी।

यह सीमाग्य की बात है कि धालोच्य नाटको के काल में राज-नीतिक सत्ता सुद्दढ और सुव्यवस्थित थी। मौर्य-साम्राज्य भारतीय इतिहास

## राजनीतिक वातावरस

लोग ग्रधिक रचिलेने लग गये थे।

मे प्रथम प्रामाणिक ऐतिहासिक साम्राज्य के रूप में सामने प्राता है। चन्द्रगृप्त मौयें ने अत्याचारी नन्द-वश का नाश यर तथा यूनानी प्रमाव के जुए को दूर कर भारत की राज- नीति को पहली बार एकच्छत्र रूप प्रदान किया था। मौर्य सम्राट् ने ग्रपने साम्राज्य को नई-नई विग्विजयो से वटाया ग्रीर पुरानी परम्परागत दुव्यंवस्थाओं को परिमाजित किया। इस कार्य में उसके सूयोग्य एव हुँड-सक्ल्पी मत्री चाएक्य का कौशल सराहनीय माना जायेगा । साथ ही नन्द-साम्राज्य की सुरक्षित सेना का बुशलतापूर्वन सदुपयोग भी शासन-व्यवस्था ने लामकारी सिद्ध हुन्ना। इस प्रकार भौगंकाल का राजनीतिक वासावरण एक सुन्दर व्यवस्या के रूप की सामने रखता है। इघर गुप्तकाल में तो समुद्रग्रुप्त की विजयवाहिनी ने ही सभी छोटे-मोटे राजनीतिक गुटो को समाप्त कर साम्राज्य की मानमण के भय से मुक्त कर लिया या जिसके कारण स्वय समुद्रगुप्त एव उसके उत्तराधिकारियों को शासन-प्रवन्ध की भीर मधिक ध्यान देने का ग्रच्छा ग्रवसर प्राप्त हो गया था।

मौर्यकालीन एव गुप्तकालीन राजनीतिक व्यवस्था का हम निम्नलिखित शीर्यको के भन्तर्यत विवेचन कर सकते हैं—

यह ऊपर बतायाजा चुका है कि मौर्यभौर गुप्त सम्राटो ने

भारत के छोटे-मोटे राज्यों को जीत कर एक विद्याल साम्राज्य स्थापित कर लिया (क) दासन-प्रशाली

या । इतने वडे साझाज्य का सचालन तभी ठीक हो सकता था, जबकि शासन-प्रणाली बहुत सुव्यवस्थित श्रीर सुदृढ हो। भौग साम्बाज्य के शासन-प्रवन्ध की देख कर तो खाज भी प्रकित रह जाना पडता है। मैगस्थनीय के प्रामाणिक विवरणी के प्रतिरिक्त कीटिल्य का 'ग्रयंशास्त्र' भी इस व्यवस्था को बहुत स्पष्ट रप से सम्भुख रखता है। वस्तुत भीयों का शासन जनहिननारी निर-कुश शासन था । श्र याचारी नन्द-कुल ना नाश कर याह्मण चाणक्य ने जनता का श्रनुमोदन प्राप्त कर नये सम्राट् को भूषांभिषिक्त किया था। अन मौर्य मम्राट बनाचारी नृपतियों ने अन्त से भली भौति परिचित थे।

प्रशासन की सुविधा की हिन्द से मौर्य धौर गुप्तों ने प्रपने विशास साम्राज्य को १ केन्द्रीय, २ शान्तीय धौर ३ स्थानीय शासन विभागों में विभक्त कर क्ला था जिनका पृथक्-पृथक् स्थौरा इस प्रकार दिया जा सकता है।

पूर्तिया भारतीय सञ्यता धीर शस्कृति का विकास, पू. १६०

केन्द्रीय शासन मे प्रधान राजा था, वह समस्त सत्ता वा स्रोत था। उसका श्रादेश श्रन्तिम होता था। उच्चस्य कर्मचारियो की नियुक्ति राजा स्वय करता था। परन्गु

१ केन्द्रीय शासन सारी सता का स्वामी होते हुए भी मौर्य सम्राट अपने को जनना ना सेवक समम्मता था। । धारान-कार्य मे सहायना देने के लिए मित्र परिषद् थी। साम्राज्य के विविध्य अधिकरण बनेक उच्चपदस्य राजपुरप- आमार्स, कृष्यक क्रांविक प्रकृत में ये । इनके प्रतिरिक्त प्रमास, कृष्यक क्रांवि के प्रकृत में ये । इनके प्रतिरिक्त प्रमास, कृष्यक क्रांवि के प्रकृत में ये । इनके प्रतिरिक्त प्रमास, कृष्यक क्रांविक प्रकृत में ये । इनके प्रतिरिक्त प्रमामी (जिला अधिकारी), बहात के हित के लिए राजुक, जिलो के लिए प्रादेशिक, एव उच्च-कृष्यों के लिए महामात्र या महामार्स अधिकारी होने थे । कौटित्य ने अठा-रह तियाँ प्रयाप विभागों का उच्लेख लिया है जिनम मत्री, पुरोहित, सेनापति आदि भी सम्मिलित थे ।

पुन्तकाल में भी केन्द्रीय शासन-प्रणाली लगभग इन्ह्री पद-चित्रों पर स्थित भी यहाँप उस काल में राजा की स्थिति प्रिषिक सुष्ठ हुं यह थी। साझाज्य की केन्द्रीय सत्ता का सचावन राजा प्रपत्ने या मिन-मड़ल के सहयोग से करता था। गुन्त सझाट् चनवर्ती सझाट् थे। सबींच्च सत्ता सझाट् के ही हाथ में होती थी। उनके प्रामान छोटेन्द्रीटे सामान होते थे जिनका विषद 'महाराजा' होता था।

बस्तुत उस काल का केन्द्रीय शासन बहुत बुछ बसँमान सधीय धासन जैसा माना जा सनता है। प्राप्तों के धात्मिक मामलों में केन्द्र कोई इस्तर्केश नहीं करता था, किन्तु सार्वेशनिक मासलों में केन्द्र कर्माई इस्तर्केश नहीं करता था, किन्तु सार्वेश एसता था। मीर्यकाल और गुप्तकाल में केन्द्र की रियति मुद्दुछ थी और सभी प्रकार की राजाज्ञा का प्रसारण नेन्द्र की द्वार से होता था।

१ सूनिया भारतीय सम्यता और सम्वृति का विकास, पृ० १६०

२ भगवतदारम् चपाच्याय प्राचीन नारत वा दृशिहासं, पू॰ १४० ३ चुनिया भारतीय सञ्चवा धीर संस्कृति या विकासः प॰ १६०

भगवतरारक उपाच्याय प्राचीन भारत का इतिहास, प्०१४०

मौर्यं साम्राज्य स्रनेक उपराज्यो तथा प्रान्तो मे बँटा हुमा या स्रोर इनमे से प्रत्येक हिन्दू राज्य युगो से प्रतिस्थ्ति तथा एक निविचत

रूप में ढले हुए नमूने पर सगठित था । २ प्रान्तीय ज्ञासन अशोक के शिलालेखों से चार उपराज्यों का चल्लेख मिलता है—१ तशकिता

का उल्लेख मिलता है—१ तदाधिता, २ उज्जेन, ३ तोत्रां और ४ स्वर्ण गिरि। इन उपराज्यों में सासक राजकुषार होते थे। केन्द्रीय वासन (वाटिलपुत) को मिला कर ये पीच चक समर्भ जाते थें। इन चकों के अन्तरात छोटे वासन-केन्द्र थे जिल्हे प्रान्त कह सकते हैं और उनमे कुमारों के प्रधीन महामारंग शासन करते थे। प्रान्त का प्रवान 'समाहत' कहलाता था। प्रत्येक प्रान्त में लगभग चार जिले होते थें। प्रत्येक खिले का प्रधि कारी 'स्वारिक कहलाता वार्ष'। चस्तुत प्रान्तीय चासन-व्यवस्था मौकरवाही राजतर बारा सचानित होती थी। इस व्यवस्था की सफलता समाट के गुलनवर विभाग पर निर्मर करती थी।

गुप्तकाल मे प्रशासन के चार विभाग थे—१ केन्द्रीय, २ श्रुक्ति (प्रान्त),३ विषय एवं ४ ग्राम। येन्द्र का बर्गन ऊपर किया जा चुकाहै।

गुन्त तेखों में प्रान्त के लिए देश या ग्रुक्ति सब्द का प्रयोग गिलता है। समस्त साम्राज्य श्रुक्तियों (प्रान्तों) य विभक्त था। भुक्ति शासक को 'उपरिक्तर महाराज नहते थे। इनके झ्यम माम राष्ट्रीय, भौगिन भोगगित सथा गोध्ता भी मिलते हैं । पुण्ड्रकर्षन, मन्दसीर, सौराष्ट्र भादि श्रुक्तियों का बल्लेख गुप्त सेखा से प्राप्त होता है। है। सासक 'ट्रुमार या राजकुल के लोग होते थे जिनकी मन्त्रणा के लिए परिषद की योजना होती थी।

भुक्ति के श्रन्तगँत विषय-व्यवस्था थी। विषयो की स्थिति ग्रापुनिक जिलों के समान मानी जा सकती है। यहाँ का शासन

१ राषाकुमुद मुकुर्जी चाइनुष्त मीय भीर उसका कात प्० ५१

२ सत्यनेतु विद्यानकार भारतीय संस्कृति और उसना इतिहास पृ० २४१ ३ समाहर्ना चतुर्धा जनपद विभव्य-भवदास्त्र, II ३४

४ एव म जनपदचनुर्माग स्वानिक नि तथत् । नही, II ३४

<sup>.</sup> पासुरव उराव्याय गुप्त साम्राज्य का इनिहास, नाग २, पु० ३१

'विपमपति' कहलाता था जिसकी नियुक्ति 'भोभपति' ही करता था। कई लंदों में विदयपित के लिए 'कुमारामात्य' की पदवी मिलती है। विययपित का भी एक मरिमाडल होता था जिसम वार सदस्य होते ये—नगरप्रेटी, सार्थवाह, प्रथमकुलिक एव प्रयम कायस्य। ये प्रमान-प्रपटी, सार्थवाह, प्रथमकुलिक एव प्रयम कायस्य। ये प्रमान-प्रपटी समितियों के मुखिया होते थे। इन कर्मचारियों की नियुक्ति सभवत निर्वचत काल के लिए होती थे। दामोदरगुर में ताझपतों के फाव्यमन से पता चला है कि विपयपित का नार्यकाल पाँच वर्ष का होता था।

वस्तुत मीर्यकाल और गुप्तकाल का प्रान्तीय शासन बहुत गुड्यवस्थित था। यह भुज्यवस्था का ही परिस्ताम था कि इतने विशाल साम्राज्य की प्रशासनिक कार्यवाही उस काल में भी भुवाह हम से होती थी।

केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन से सम्राद् का सीधा सन्पर्क रहता था। इसलिए इस प्रकार के धासन को इतिहासकारों ने नौकर-धाही सासनतन्त्र की अभिधा दी, किन्तु

३ स्थानीय प्रशासन यदि देला जाय तो यह प्रशासन तो

जपरी ढाँचा था, वास्ताविक शासना-प्रणाकी की व्यवस्था स्थानीय प्रशासन ने हाथ में रहती थी। मीर्च-काल में स्थानीय प्रशासन दो आगो से बँटा हुआ था, (क) नगर-प्रशासन, (ख) जनपद या ग्राम-प्रशासन। इसी प्रकार पुस्तकाल मे

भी नगरो ध्रोर मामो नी स्थानीय प्रशासन व्यवस्था पृथक् पृथक् थी। मैगस्थनीज ने मौर्यकालीन नगर-प्रशासन का सिप्ततर वर्णन निया है। नगर के प्रबन्ध के लिए छ सिगतियों का एक

परिवार होता था। प्रत्येक समिति में (श्र) नगर-प्रशासन पाँच-पाँच सदस्य होते थे। ये समि-

तियाँ निम्मतिवित्व थी—१ विल्लाकवा-समिति—यह श्रोद्योगिक कलाओ की देख-रेख करतो थी, २ वंदियक समिति—विदेशिया की देख-रेख एव प्रवन्य ना कार्य दुसके हाथ थे था, ३. जनतरवा-समिति —जन्म-मुखु वो सुचि सिद्ध जन-गागुना का कार्य इमके हाथ में था, ४ वाण्जिय-व्यवसाय-समिति—द्वका कार्य व्यापार से था, ५ वाण्जिय-देवका कार्य व्यापार से था, ५ वाण्जिय-व्यवसाय-समिति—देवका कार्य व्यवस्था

सायियो का नियन्त्रए। या, ६ कर-समिति—यह विक्रीत वस्तुओ पर कर वसल बरती थी।

मैगस्यनीज ने यह वर्णन पार्टलिपुत का दिया था, किन्तु उसी प्रकार का शासन-प्रवन्ध अन्य नगरी में भी होता होगा।

गुष्तकाल में नगर-प्रशासन के लिए नगर में एक सभा होती थी, जिसना गठन आजनल की 'म्यूनिसिपैसिटी' जैसा होता था। यह सभा ही पूरे नगर के जासन-स्वास्थ्य खादि का प्रवन्ध करती थी। तत्कालीन नगरपति 'द्रागिक' वहलाता था। नगर की व्यवस्था रराना, सफाई रखना, वर वसूल करना आदि वार्य 'द्रागिक' के होते थे। विषयपति 'द्रागिक' की नियुक्ति करता या ।

भालोच्य नाटको के काल में, यद्यपि एकतत्र सम्राट् का शासन था, भौर वही सर्वोपरि सत्ताथी, विन्तुनगर भादि के प्रशासन मे सम्राट विरोप हस्तक्षेप मही बारता था।

मौर्ववाल मे जनपद-शासन वा निम्नतम केन्द्र 'शाम' था। ग्राम या शासक 'ग्रामिक' होता था। ग्राम के बृद्धी की सहायता से वह

ग्राम पर शासन करता था। पांच ग्रयवा (मा) जनपर या दस ग्रामो का शासक 'गोप' वहनाता

माम-प्रशासन था। उसके ऊपर 'स्थानिक' होता था जो जनपद के चौथाई भाग पर दासन

वरता था। प्राम वा भपना कोप होता था। सार्वजनिक-हित का मार्य प्राम ही बरता या, लोगो के मनोरजन की व्यवस्था भी प्राम वरताथा। यह ग्राम-सस्था न्याय था भी वार्य वरती थी । ग्राम घपने नियम स्वय बनाने थे और उन पर घाषरण करते थे। ऐसी स्यिति मे उन पर राजतत्र की मीनरशाही का विशेष प्रमाव नहीं पहता था। 'गोष' भौर 'स्यानिक' ने भतिरिक्त ग्राम मे भौर वर्मेनारी भी होते थे, यथा-- १ मध्यक्ष -सोते, रतन-माभूपक्षी वे बाम पर निप-रानी रणने वाला, २ सरवायक-पाम का मुलीम, ३ धनीवस्य-

भगवाधरमा उपाध्याय आधीन भारत का इतिहास, पुरु १४१-४२ २ का॰ पामुदव उपाध्याय मुख्य साम्राज्य का इतिहास, मान २ ए० ३५-३६

भगवनगररा जगाम्याय प्राचीन भारत का इतिहास, प्०१४२

सन्यदेतु विद्यातकार । भारतीय सन्दृति सीर जनका इतिहास, ग० १४१

हाथिया को सधाने वाला, ४ चिकित्सक, ५ अद्दब्दमक्-घोडा को सबाने बाला, ६ जघाकरिक—हरकारा तथा सदेशवाहक े ।

गुज्जनाल में 'विषय' के यन्तर्गत सनेक ग्राम होने थे। ग्राम के प्रावपित को 'यापारित 'या 'गहत्तर' कहते थे। ग्रामपित को सहायता के लिये एक सभा होती थी जिसे प्रचायत' कहते थे। ग्रामपित को सहायता के लिये एक सभा होती थी। राजकीय कर को छोड़ कर उस पर केन्द्र का गोई सीधा नियन्त्रण नहीं रहता था। दासोदरपुर के ताअपन के प्रमुख्य प्राम-प्वायत के निम्नितित्त पदाधिकारिया का वाध्योरा नियत है - ए महत्तर र अप्टब्कुलाधिकारी, ३ ग्रामिक—प्राम के प्रधान प्रधान व्यक्ति के कुटुम्बिन्-परिवास के मुख्य व्यक्ति । राजा के सहसा महत्तर को भी ग्राम का समस्त अधिनार प्राप्त था। गासम का सारा कार्य वह ग्राम सभा की सलाह से करता था, जिसके अप्ततीत कई उपसिनिवर्यों भी होती थी।

ग्राम प्रशासन की इस सुरुयवस्था से भारतीय इतिहास की कई सराव्यियों ने लाभ उठाया। स्थानीय सासन की इस स्वतन पढ़ित के कारण किन्द्रों में होने वाली उचल पुष्पत ग्रामों को अधिक प्रभा-वित नहीं कर सकती थी। केन्द्र की सत्ता का सम्बन्ध केवल कर बसूती तक रहते के कारण श्राम शासन श्रपनी सुवाद यति से चलता रहता था।

संकालीन सुज्यवस्था एव राजनीति की मूलाघार सैनिक शक्ति थी। जिस सम्राट् का सैय सगठन धुवँल हुबा, उसका परान ध्रवस्य स्थानी बना। मीर्य साम्राज्य की सेना

(ल) सैन्य सगठन अस्थान सुज्यवस्थित थी। बह पूर्ण रप सं शस्यन्त सुज्यवस्थित थी। बह पूर्ण रप से शस्यनस्या से सुस्रिजन थी । चन्द्र के हाथ म नन्द्र-वदा की विज्ञाल सेना का नेतत्व ग्रा गया था।

गुप्त के हाथ म नम्द-बक्ष को विद्याल केना का नेतृत्व या गया था। इसके साम ही वह स्वय एक कुश्वल सनापति था। डाठ राघानुसुर मुकुर्जी के अनुसार चन्द्रगुप्त की सेना म कुल मिला कर ६६००००

१ राघानुमुद मुकुर्जी चंद्रमुख भीय मोर उसका काल, पृ० १७४ २ डा० वासुदव उपाच्याय मृत्व साम्राज्य का इतिहास, माग २ पृ० ३६

३ वही प्०३७

सूनिया भारतीय सम्यता तथा सस्कृति का विकास पू॰ १६१

सैनिक रहे होगे ' बो हाथी, रय, घोडे और पैदल विभागा मैं विभक्त थे। सेना पर युद्ध-कार्गालय निग्नन्यए रखता था, जिसके तीस सदस्य होते थे जो छ भडलों में कार्य करते थे। ये छ विभागों का कार्यभार सभावते थे—१ पैदल सेना, २ युटसवार सेना, ३ युद्ध-रय, ४ युद्ध के हाथी, ४ परिवहन, रसद न सेनिक सेवा, ६ जी-सेना। कोटिल्य में घोडो तथा ऊँटो भी सहायक सेना और उनके साथ कुछ गयो का होना भी रवीकार किया है जो सुखे भीसम में काम दे सके ।

प्रारम्भ में सेना के कार्य की देल-माल सम्राट स्वय करता या। श्रन्तिन गौर्य सम्राट् के शासनकाल में यह कार्य सेनापित करने तम गयाथा।

मौर्य समाठो को भौति गुप्त समाठो की भी एक विद्याल और राक्तिशाखी गाहिनो थी। सेना से सम्विग्यत व्यवहार के निरोसपार्ष प्रविभाग होता था जिसका पराधिकारी 'रण् भाष्टामारिक' वह-काला था। सेना वा सब से वडा पराधिकारी महासेनापित कहकाला था। सेना वा सब से वडा पराधिकारी महासेनापित कहकाला था। इसी को महास्वाधिहत या महास्वाध्या भी नहते थे। इसके नीचे सेनापित या वणाधिहत होते थे जो सेनिको की निपृक्ति कर से हास्यों वा नायक वहुन' कहलाता था, यह सवारों के प्रवास की शिवास के प्रवास की 'भटास्वपति' वहते थे। सेना की छोटी दुनहीं को चमूप' कहते थे। कारो भी ह्यास की जिए इस सेना के सिर्वास को प्रवास छोट प्रवास की श्रीवधा के लिए इस सेना के सिर्वास का प्रवास पा। यह प्रवास के सबसे वह सिर्वास को प्रवास के सिर्वास के सिर्वस के सिर्वास के सिर्वास के सिर्वस के सिर्वस

भौये एव गुप्त नालो ये सैनिक-स्यवस्था बहुत सुट्ट रही। प्रशोक के सास्त्र-बाल म वर्तिय विजय ने पदचाद बोद पर्म के प्रभावस्वरूप सेच निरोक्षण में कुछ शिक्षलता था गई, जिनवन परिसाम पागे प्राप्त बाले भौयें सम्राटा को भोगना पटा। गुप्त साम्राज्य में भी जब

राभादुमुद मुनुओं भाजगुण सीय सीर ससना भात, पृ० २२१
 'गरीपादवनप्राय' द०, राधादुमुद मुनुओं वही, २२३

का बामुदव उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास माग २, पृ० १४

तन चैन्य-व्यवस्था सुदृढ रही, गुप्त सञ्चाटो वा माग्य-सितारा प्रयर रहा। विदेशी शङ्को वो भी इस शक्तिशाली सेना के सन्मुल भुकता पडा। इस प्रकर हम देखते हैं कि झालोच्य नाटको के नाल में सैन्य-सगठन बहुत उत्कृष्ट कोटि का था।

विद्याल मगय साम्राज्य मे न्याय के लिए ग्रनेकविव न्यायालय थे। सबसे छोटा न्यायालय ग्राम-सस्या का होता था, फिर सग्रहण का, फिर दोसामस ना भीर फिर जनपद का।

३. न्याय-व्यवस्था एवं छीटे-छीटे मामले यही निषट जाया करते वण्ड-विधान थे। इनके ऊपर पाटलिपुत्र के न्यायालय थे

शीर सब से उत्तर राजा। न्यायालय दो भागों में विभक्त थे। १ धर्मस्थीय—इसमें व्यक्तियों के आपसी अभियोग पेरा होते थे, २ करूडकायोग—इसमें व्यक्तियों के आपसी इसियोग पेरा होते थे। २ करूडकायोग—इसमें वे मुक्टरे उपिरवाद होते थे जिनका सम्बन्ध राज्य से होता था। दण्ड-नीति कठोर थी। अग भग, प्रागुदण्ड झादि कठोर दण्ड छोटे-छोटे प्रपराधों पर भी दे दियेजाते थे। इस न्याय-व्यवस्था का इतना प्रभाव था कि कोरी-डाका-सनी भी घटनाएँ जुप्त हो गई थी और लोग घरो पर ताला तक नहीं सगाते थें।

गुप्तकाल में भी न्याय-व्यवस्था बहुत सुन्दर रही। फाह्यान ने प्रपत्ते विवरण में तिवा है कि प्रप्राय बहुत कम होते थे। बौर सहुनो मील की यात्रा करने पर भी उसे कोई वोर नहीं निला। गुज्ज-सासन में चार प्रकार के न्यायालय थे। १ राजा का न्यायालय, २ पून, ३ थेगी तथा ४ हुल । गुप्तवाल में प्रपर्शों की सब्दा यहुत कम होने के कारण बच्च भी सरल हो गये थे, फिर भी भय का पर्योक्त कम होने के कारण बच्च भी सरल हो गये थे, फिर भी भय का पर्योक्त कम होने के कारण बच्च भी सरल हो गये थे, फिर भी भय का पर्योक्त कम होने के कारण बच्च भी सरल हो गये थे, फिर भी भय का स्वीम स्वाम था। फाह्यान विलास है कि राजा न प्राग्यस्था मा प्राप्त पर्योक्त स्वाम था। काह्यान विलास है कि राजा न प्राग्यस्था पर्या भी भयम साहस था। काह्यान विलास की अवस्थानुसार 'वत्तम-साहस' या 'प्रध्यम-साहस' मा एफ दिया जाता था। शासीरिक दण्ड देने वाले को 'वाण्यक' कहा। आता था।

१ लुनिया भारतीय सम्यता तथा सस्कृति का विकास. प० १६१

२ डा॰ वासुरेव स्वाध्याय मुन्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ११ २ भागवत्वय ने भी उत्तम, मध्यम, प्रथम साहस में दण्ड देने का विधान धताया है। याज॰ स्मृति, १ ३६६

मौर्य शासन में मुख्य श्राय का साघन 'कर' था। धान एवं मुद्रा दोनों रूप में ही कर लगाये जाते थे। राजस्य के निम्नलिखित स्रोत थे। १ सीता (राजा की भूमि) से होने वाली

राजकीय ग्राय

ग्राय, २ भाग-कृषि उत्पादन का छठा भाग, ३ कर-फली पर लिया जाने

भाग, ३ कर—फलो पर निया जाने वाला कर, ४. विवील—चरागाहो का कर, ५ वर्षनी—चडन का कर, ६ वर्षनी—चडन का कर, ६ वर्षनी—चडन का कर, ६ वर्षनी—चडन का कर, ६ वर्षनी—प्राधिक कर, ७ चोर, रज्जु, चोकीवारी, पुलिस कर, ८ सेतु—सिचाई कर, ८ वन, १० यज—पद्युपालन, ११. बिल—राजा को दिया जाने वाला उपहार और १२ खिनो—सोना, चौदी, होरे जबाहराल खादि। इनके घरितरिक्त वाणिज्य, व्यवसाय, आदि के काने वाला कर भी राजकीय थाप का बहुत बडा कोत था। यन्य करो में विजय-चर, मदिरा-कर, मोतियो, मछलियो पर कर, वण्ड क्रांदि चितने ही क्रोलो से राजकीय भीप-पूर्ति होती रहती थी।

गुरतकाल मे राजा की बाय कई विभागो से होती थी। प्रायः ध्राय के भूलस्थान येथे--१ नियमित-कर २ सामयिक-कर ३ प्रथ-दण्ड ४. राज्य-सम्पत्ति से बाय ५ ध्रधीन सामन्ती से उपहार।

नियमित कर में ग्रुमि-कर, उपरि-कर, भूतोबात प्रत्याय, (न्योती चीजो पर टेक्स), किन्दी (विवार) तथा प्रत्य कर जैसे गी, बेल, दूप ग्रादि माते थे । भूमि-कर थान ग्रीर गुद्रा दोनों में ही चुनाया जा सक्ता था। कृषि वे उत्पादन के लिए विचार्ट का भी प्रवस्थ या जिस पर भी कर जिया जाता था। राजकीय मध्यस्ति में राजा की देती, जगल, चरागाह ग्रादि से ग्राने वाली ग्राय परिगणित होनी थी।

बस्तुत मीर्ष ध्रीर गुप्त वाल के सम्राट् जनहितवारी थे, प्रत-एवं 'करो' वी व्यवस्था प्राय को देख नर ही की गई थी। वे वेवल वर बमूल करना ही नही जानते थे, इसे लोक-कस्याएए में लगाने की विधि में भी परिचित से । यही कारए। या कि इतने सारे कर प्रत्यर्ते

रे डा॰ रामाकृमुद मुकुओं चन्द्रगुप्त मीर्थ चीर उसना बास, पृ० १७४ २ डा॰ बासुदेव उपाच्याय सुप्त माम्राज्य का इतिहास, भाग-२, ५० १७

६१

में किसी को ग्रसन्तोष नहीं होता था।

श्रालोच्य नाटको का काल भारतीय इतिहास में कला कौराल की दृष्टि से स्वर्णनाल माना जाता रहा है । इस युग में साहित्य, शिल्प, विज्ञान एवं घन्य नलात्मक सृष्टि को पूरा

कला-काँवाल प्रोत्साहन मिला। मीर्यवाल में साहित्य की दृष्टि से कीटिल्य का 'प्रयंगादन', भद्र-बाहु का कलासून', बौद 'कप्याबल्य' बादि यूग्ये के प्रतिरक्ति भास ब्रादि नाटककारों की प्रतिका भी इसी गुग में चमकी। कतियन वैय्या-पर्यों को भी इसी गुग ने जन्म बिया। पूर्ववर्ती पाणिनी की 'प्रदा-ध्यायी' के ब्रतिरिक्त काल्यायन और पदाजलि जैसे महान प्राचार्य

ध्यायों के ब्रितिरक्त कारपायन बौर पतजित जैसे महान् ब्रापायं इसी युग के ब्रास-पास हुए हैं। वास्त्यायन के काम सून की रजना का काल भी बहुत से विद्वान् यही मानते हैं। साहित्य की ष्टि से गुण्तकाल तो नि सन्देह स्थएंनाल था। विग्वज्यों गुज्य सम्राटो ने माहित्य-क्ता को पूर्ण प्रोत्साहन विया। कवि कुल-पुर कालिदास से लिप रिवास्वरत, आर्ति, भट्टि, मानुपुप्त,

विश्वनायां गुप्त सम्राटा न माहित्य-कला का पूरा प्रास्ताहृत विया । मि बृ कुल्मुण्य कानिवास से लेन्द्र विवासवाद का प्रास्ति, मिट्ट माहुपुत, सीमिल्ल, वासुल झादि किंव वया 'पंचलत' की रचना वा काल यही माना जाता है । व्याकरएण बीर मीच सन्वन्धी प्रनेक रुप सामने मादी । पण्डनोमिन ने 'वामन्ट व्याकरएण वी रचना वी । 'समर कीय' के रचिता इसी गुग में हुए। स्वृतियों में 'वारद-स्वृति', 'काल्यावन-स्वृति', 'बृहस्पित-सृति' का विमाण हुआ। गिएत बीर ज्योनिय झादि विज्ञानों ने जनित की थीर आर्थमहून, बराहिमिहर जैसे गिएतज्ञ और ज्योतियाचार्य इसी गुग में हुए। ज्योतिय विवयक प्रथम प्रव 'विष्टिक-विज्ञान' इसी गुग में विला गया। आयुर्वेदावार्य चरक क पश्यात् वागमर, प्रनन्तरि आदि इसी गुग में हुए। ज्योतिय विवयक प्रथम प्रव 'विष्टिक-विज्ञान' इसी गुग में विला गया। आयुर्वेदावार्य परम प्रयाद विश्वा को भी ज्याति हुई। विल्ली के समीप महरीली का विवास त्याति हराम्भ इसला जीता-जामाता ज्याहरुण है। इसके विविरत्त दार्यानिक साहित्य की भी इस गुग म बहुव जनति हुई। यहदर्जनो का निर्माण तो मौमितर काल म हो चुका था। मीमासा पर शावर भावर भावर 'वानिक साहित्य की भी इस गुग म बहुव जनति हुई। विद्यास मार्थ 'वानिक मार्थ की निर्माण विश्व हुई। विव्यास मार्थ परमा निर्माण विवास मार्थ मार्थ की साहित्य की भी इस गुग म बहुव जनति हुई। विद्यास मार्थ विवास भावर भावर 'वानिक मार्थ की की सारप्त में महासू वीद-दस्त न ना चहुत विकास हुआ।। पांचयी दाती के सारप्त में महासू वीद-दस्त न ना चहुत विकास हुआ।। पांचयी दाती के सारप्त में महासू वीद दानिक गुद्यभीए हुआ।। इस प्रकार साहित्य, व्याकरण, ज्योन

गुप्तकाल मे यह कला भपनी उन्नति के चरम पर पहुँच गई थी। मृत्ति-निर्माएः मे पत्यर, ताम्बे मादि पर बनी मूर्तियाँ प्राप्त है। प्रस्तर फलको पर भी बहुत-सी मूत्तियो का निर्माण हुन्ना था। महारमा बुद्ध, पौराशिक देवी-देवताभी भादि की मूर्तिया, जो कलात्मकता के साथ निर्मित की गई है, विश्व इतिहास मे असिद्ध उदाहरए हैं। विशाल प्रस्तर-स्तम्भो पर खुदाई श्रीर कारीगरी का काम हो रहा है। भवन भौर मन्दिरों के निर्माण की तो इस युग मे बाढ-सी था गई। नागोर के शिव-मन्दिर, अजवगढ राज्य के पार्वती-मन्दिर, देवगढ के दशाब-तार-मन्दिर के अतिरिक्त बहुत से गुप्तकालीन मन्दिर इस काल की भवन-निर्माण-वला के सुन्दर नमूने पेश करते हैं। गुप्तवाल की गुहाएँ भी इस क्या की जानकारी के बच्छे साधन हैं। चित्रकला तो गुप्त-माल की सर्वश्रेष्ठ थी। ग्रजन्ता के गृहा-चित्रो ने तत्कालीन चित्र-क्ला की सर्वथेष्ठताको प्रमाशित करते हुए उस काल की सुरचि भीर सम्पन्नता का भी प्रमाण दिया है। सगीत की दृष्टि से भी दूस काल मे पर्यापा उन्नति हुई । स्वय सम्बाट् समुब्रगुप्त प्रसिद्ध बीगावादक थे । वाघ के गुहा-मन्दिरो मे समीत धौर नृत्य मडलियो के चित्र बने हुए है जिनसे सिद्ध होता है कि समीत भौर नृत्य का इस मान में बहुत प्रसार या । सर्वेसाधारएा लोग मी इसमे प्रमिरुचि रसते थे । वस्तृत चालोच्य नाटको का काल साहित्य, विज्ञान, शिल्प,

ऐनिर्गासक परिचय ६३ सगीत ग्रादि सभी प्रकार की कलाओं में वडा-चढा था। इसीलिये

भौगंकाल भीर गुप्तकाल भारतीय सस्कृति के इतिहास मे बहुत महत्त्व-पूर्ण स्थान के प्रधिकारी बने हुए हैं। ग्रालोच्य नाटककालीन भारत की स्थिति पर हप्टिपात करने

से स्पष्ट विदित हो जाता है कि उस काल में भारतीय समाज चतु-विक् उन्नति के शिल्य र था। सामा-निष्कर्ष जिंक जीवन सुस्ती, सम्पन्न ग्रौर सुर्शन-

पूर्ण या। पारिवारिक जीवन से लेकर राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्र कोर विद्या स्था प्रभाव की राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्र बीदिक सभी प्रभाव के जीवन से लीग प्रिक्त में तुर का मानन्द का जीवन व्यतीत कर रहे थे। भोजन, रहन-सहन, कता, ताहित्य आदि में यह सस्कृति वहुत वडी-वडी थी। धार्मिक हिंदि से देश धन-धान्मपूर्ण या, व्यापार उन्नति पर या। राजनीतिक सुव्यवस्मा धी, ताझा ए प्रकृति हुए भी अपने को प्रणाव को सम्भन्ने थे। परिणामत वे लोक-न्याण की विन्ता में ही निरत रहते थे। वैसे प्रजातन शासन भी था। और लीग अपने सासन का महत्व सामन्ते थे। सर्वत राजनीतिक के वतना थी। यहाँप सासन का माधार सेना थी किन्तु उसना दर्जा बहुत उच्च नहीं माना जाता था। दार्जीतिक लीग, जो समाज का निर्माण निक्तिय होकर करते थे, सर्व-धेष सम्भन्ने जाते थे। उसने का माधार के यथायं नात्तिक हण्यक सम्भन्ने जाते थे। इसने का प्राप्त के प्रधाद सेना के स्थायं नात्तिक हण्यक सम्भन्ने जाते थे। इसने में विश्वी बीज की कभी नहीं थी, दूध-वहीं श्रीर घी की नहीं यो, दूध-वहीं श्रीर घी की नहीं बाते, दूध-वहीं श्रीर घी की नहीं बाते, दूध-वहीं श्रीर घी की नहीं बाते हरी बीत हो श्रीर घी की नहीं बाते, दूध-वहीं श्रीर घी की नहीं बाते हरी बीत हो श्रीर

यद्यपि नगरों का जीवन विलासम्य या किन्तु प्रामों में जीवन सारिवक हम से व्यतीत होता था जिन पर नगरों की उचल-पुथल का प्रविक्त प्रभाव नहीं पठता था। नगरों में भी विलासिता जीवन का प्रमा नहीं थी, अधितु सस्कृति के विकास में सहायक वनकर रहती थी। लोग वहुत बीर और सहादुर थे।

धमं के निषय में बंधिनतक स्वतनता के दर्शन होते हैं। बौड, जैन तथा सनातन-धमं साथ-साथ उनित पर रहे थे। सीनो घमं एक-दूधरे वे प्रतिस्वी यने हुए थे, चिन्तु धार्मिक सहिप्पुता ना अभाव नहीं था। किसी धमं के राजधमं हो जाने पर उसकी उनित होना संस्कृत नाटको में समाज-चित्रश

वस्तुत इस युग का जीवन सुखमय था। इसीलिए विभिन्न प्रकार की कलाग्रो को उन्नति करने का पूर्ण ग्रयसर प्राप्त हुमा। साहित्य, सगील, शिल्प, विज्ञान आदि ने इस काल मे आश्चर्यजनक उन्नति की। निसन्देह मौर्य युग और गुप्त युग भारतीय सस्कृति के स्वर्णकाल रहे, जिनकी अलक तत्कालीन नाटको मे मिलती है, जिसे

ę٧

तो स्वाभाविक या किन्तु दूसरे धर्मी पर कुछ अपवादो की छोड कर रोक नहीं लगाई जाती थी।

हम विस्तार से घलग-घलग दिखायेंगे।

## आलोच्य माटको का परिचय

बिगत सप्याय ये मारा, कालिवास एवं शूदक के तुम का ऐति-हासिक परिचम दिया जा चुका है जिसमें सामाजिब परिस्थितियों की सूक्ष्म विश्वेचना प्रस्तुत्र को गयी है। यह कहने की चावस्वतता नहीं है कि कोई भी साहित्यकार अपने ग्रुप से प्रभावित हुए बिना नहीं स्ट्रुमा यह प्रपने चारी और के वासावरण की बढ़े प्यान से देखता है हिंग मह उपने चारी और के वासावरण की बढ़े प्यान से देखता है और उसकी हात्री म उसके एक मान चित्र प्रक्रित हो जाता है।

सभी-कभी वे चित्र इतने गहुन एक सवढ होते है कि पाठक, श्रोता या दर्गन को उनने अवस्ता को अभिति होती है। आकोच्य माटक भी ऐसे ही अनेक नित्रा ते परिपूर्ण है। इत विका के निर्माण ने तत्कालीन साहिरियक प्रवृत्तियों का वियोग योग है। जहाँ साहिर्स्य प्रयमे युग का चित्र प्रस्तुत किये बिना गही रहु गकता बहाँ उसको प्रवृत्तियों भी परम्पराजा का सहयोग पानर युग-चित्र को व्यवस्था को प्राथित रिये दिना नहीं रह सकती है। इनी हरिक से आलोच्य नाटको के परिचय-तम में भास के नाटक पहले धाते है। यह प्रसिद्ध है कि नाम ने तीन से भी अधिक यथो की सर्जना की थी, किन्तु अवस्त कर उनमें से वेचल तरह रूपन उपलब्ध हो मने है, जिनके नाम ये है— मध्यम-स्थामीग, इत्यदोर-तन, वर्णकार, ऊरमग, पचरान, हतवाकर, वालचरित, प्रतिमानगटन, योगिन नाहक, धरिनारफ, नारकरान,

प्रतिज्ञा-योगन्यरायण् और स्वप्नवासवदत्त । क्याधार की हप्टि से इन नाटको को चार वर्षों म रख गक्ते है—१ कौरव-पाटव-क्या-घार नाटक, २. कृष्ण-कथाधार नाटक, ३ रामकथाधार नाटक तथा ४. काल्पनिक नाटक। प्रथम वर्ग में मध्यम-व्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्माभार, ऊरुमंग, पचरात्र तथा दूतवाक्य आते हैं। दूसरे वर्ग में 'वालचरित' को रखा जा सकता है। तीसरा वर्ग रामकथा से सम्बन्धित है। इसमें प्रतिमा-नाटक और अभिषेक नाटक के नाम उल्लेखनीय हैं, खीर चीथे वर्ग के नाटको में 'अविमारक', 'शितज्ञा-यौगन्धरायए' 'स्वप्नवास्वदन्त' की गएगा होती है।

## प्रथम वर्ग

यह भास का एकाकी स्वक है। इसमें मध्यम पाण्डव के व्यक्तित्व को सब से अधिक प्रभावशाली प्रदक्षित किया गया है। कथा इस प्रकार है कि हिडिस्स का पुत्र घटोरक व

१ मध्यम-ध्यायोग अपनी माता की ग्राज्ञा से बलि के लिए

एक ब्राह्मण को पकड कर ले जाना पाइता है। ब्राह्मण को विषम्त दशा में देखकर भीन दयाई होकर उसकी रक्षा करना चाहते हैं। घटोरक को टॉटर्स हुए भीम कहते है—"बिम-गरिवार रुपी चन्द्र के लिए तुम राहु बयो बने हो। शाह्मण सर्देव सक्चम है, खत. हुम उसे छोड़ दो।" ध्रमा निर्देश अस्वीहत हो जाने पर ब्राह्मण के स्थान पर भीन स्वय हिक्किय के पास जाने को उद्यत हो जाते हैं। भीम को लेकर घटोरक मा के पास पहुँचता है। हिक्किया अपने कल्वित आहार के स्थान पर भीम को देखकर विस्मत होती है और भामपुर्व कि कर उनकर प्रभिवार कर अपूर्व धानन्द का अनुभव ब रुपा है। इस अवार भीम और हिक्किया के साथींगिक मिलन के शाम नारक समल्य हो। जाता है। वि

यह एक एकावी रुपक है जो वीरव-पाडच-जवा से संबद्ध है। प्रारम्भ में मूत्रघार विष्णु की प्रार्थना करता है जिस में रूपक की निर्विष्णु समास्ति की कामना की गयी है।

२. दूतघडोत्कच नेपण्य के शब्दों से उसे मुद्र ऐसी प्रतीति होती है कि भीत्म के वध से बद्ध को त्यां

ने प्रभिमन्युयावध कर हाला है। १. भाष के धनुसार भीय।

२. मध्यम-स्वायीग, १. ३३-३४

यश्रिमन्युन्यव से पात्रवन्ता से प्रतिद्योग्यानित अडक उठती है। वैसे तो प्रलन्ति मे बहुत से बीर हताहत होते रहते हैं, किन्तु प्रतिमन्यु-वय की पीठिका म कुवनता, अनीत आदि की प्रमुखत है। अपिमन्यु के मृत्रसता पूर्ण वय से पाँडवो की क्षोत्राधि अनियनित हो जाती है। निरस्त वातक अभिमन्यु की हत्या के समाचार ते धृतराष्ट्र तक का हत्य करणाई हो जाता है। वे इस दुन्यत्य के लिए कीरवों को मन धिकारतों हैं। पुन-वश के समाचार ते अर्जुन के हत्य मे वही विकट एव तीज प्रतिक्रिया होती हैं। वह प्रपत्नी प्रतिक्रा में विकट एव तीज प्रतिक्रिया होती हैं। वह प्रपत्नी प्रतिक्रा के समाचार तो स्वापनी प्रतिक्रा के स्वापनी प्रतिक्रा के समाचार के प्रतिक्रा की विकट एव तीज प्रतिक्रिया होती हैं। वह प्रपत्नी प्रतिक्रा के स्वापनी प्रतिक्रा करता हुमा कहता है कि यदि वह सूर्यान्य से प्रतिमन्यु के हत्यरि जयद्व का वज न कर सकता तो स्वय अनित प्रवेश करके प्राध्यान्त कर लेगा। इस प्रतिमा की सुन कर दुर्योगन वश प्रता होता है। वह अपने प्रता है। के स्वपने की अर्तिज्ञा-पूर्ति के मार्ग में अनेक जिल्ला वाणाएँ प्रस्तुत करता है।

श्रमिमन्यु बंघ के विषय में शूतराष्ट्र दुर्योधनादि से बातांताप फरते हैं। उनती हिप्ट म श्रमिमन्यु-बंध विन्कुल श्रनुचित हैं, किन्तु दुर्योधन, हैं सामन भादि उसे उचित बतलाने हैं। इयर घटोत्कच हप्प सदेन लेकर रामा में प्रवेश करता है श्रीर प्रिमम्यु चय से लिन्न करण मा सदेश युनाता है। उसकी अवना करता हुआ दुर्योधन बढ़े दुर्विनीत घटरा में कह देता है कि हम्पा गई राजा नहीं है, उसका सदेश सर्वधा महस्वाहीन है। तब घटोत्कच कुप्प को अनुवनीय महिमा का वर्णा करता है। दुर्योधन घटोत्कच कुप्प को अनुवनीय महिमा का वर्णा करता है। दुर्योधन घटोत्कच को राक्षस कहता हुआ उसकी उपेक्षा कर देता है और अन्त म यह कहता है कि इस सदेश पा उत्तर तीक्ष्य बारी से रण-सेन में दिया जायेगा। नाटक के प्रन्तिम रलोक में घटोत्कच हुप्प-सदेश ने दुहराता है।

यह रपन एन जत्मृष्टिनान है। इसका नथानन फण नथा से सबद है। रसके वर्ण की दानसीवता का गुणगानु है। यादाण वेरा धारी <del>खाँ</del> रुद्ध की वेरान धामस्य करा-पूपरा तक

दान म दे देता है।

ŧ

बहूना समवेतानामेकस्मिनिर्घुणारमनाम् । बाले पुत्रे प्रहरता एथ न पतिता भूजा ॥

ŧ

इस रूपक के प्रारम्भ में महारथी कर्ण युद्ध क्षेत्र में जाने के लिए सजिजत दिलाये गये हैं। इस समय जनके मन से शबु-सेना को परास्त करने का सदूर उत्साह इंग्टिंगोचर होता है। उनके तेजीमम मुख-मण्डल एव ग्रींशपूर्ण नाएंगे से पराक्षमधीलता प्रकट होती है। उन्हें माज प्रजून से लोहा लेना है। यत वे सोस्साह प्रपने सारिय ग्रत्य को उस स्थान पर रय ले चलने का भादेश देते हैं जहाँ धर्जुन का रस है।

प्सी समय सहसा उनके मन में अनेन दुबंल विजार प्रवेश कर जाते है मोर उनका उत्साह उद्धा में परिवर्तित हो जाता है'। सर्प-प्रथम उनको अपने जम्म की क्या का स्मरण हो आता है। वे शोचते हैं कि वरतुत जनका जम्म कुलीना कुरतों के गर्भ से हुआ है। किन्तु राभा नाम की आतात कुलशोगा स्त्रों ने हारा पासित पीपित होंने के कारदा जन्हें 'पायेंय सजा से गर्द। आता यह दिन का गया है जय कि उन्हें अपने छोटे आई युधिशादि से युद्ध करना पड़ेगा। इत विचार में बूढ़ें हुए क्या यह अनुमान लगाते हैं कि आज निश्चय ही उनके समस्त अपनेशास्त्र कर्या सिद्ध होंगे

इसी प्रसा में उन्हें अपने गुरु परशुराम का शाप भी स्मरण हो माता है मि 'मुक्कान से तुम्हारी अस्त्र विधान रहों'। परशुराम भी प्रतिज्ञा भी मि के सत्त्र विधा ब्राह्मण नो ही सिलाते थे, शिषय स्मादि को नहीं। कर्ण ने अपने आपनो ब्राह्मण वता कर परशुराम से सादि को नहीं। कर्ण ने अपने आपनो ब्राह्मण वता कर परशुराम से साद्या सील तो ली पर एम दिन उसके क्षत्रिय होने का भेद लुल गया। इससे परगुराम ने उससे कुछ हो कर शाप दे दिया। वही शाप कर्ण को सत्य को तरह लटक कर हतोत्साह कर रहा है। क्ष्ण अपने सार्याय दाल्य को तरह लटक कर हतोत्साह कर रहा है। क्षण अपने सार्याय दाल्य को सहस्त्र प्रतिल्व हा हुस्त मुख्य प्रभावसूत्य पाते हैं। उनके मनोदार्वस्थ ने कारण उनके हाथों थोडे भी स्वलित होने लगते हैं। इस मक ग्राहों से कर्ण क्लके हाथों थोडे भी स्वलित होने लगते हैं।

भायो यशस्यविनिपातनिङ्गसमात्र-

योधाःववारणस्येषु महाहवेषु । क्रुडान्तकप्रतिमविकसिको समापि

में भी शैथिल्य था जाता है। यही पर वर्श में उन्माह का पुन सचार होता है और वह शल्य को यूद्धभूमि में ले चलने के लिए आदेश देते हैं।

शत्य रथ को युद्धभूमि की घोर ले जाने को उद्यत हो हो रहा या कि दंव दुविपाक से बही एक फिद्द सा गया भीर कर्ए के समक्ष उपस्थित होकर शिक्षा की याजना करने लगा। वर्ग ने अपने स्वभावा-मुसार भिव्युक का मिनवारन किया और उसे स्वर्णमण्डित प्रश्कुताला सहसों गाय स्वीकार करने को कहा, पर मिद्द ने उन्हे स्वीकार नही किया। यह देखकर सानयीर वर्ण में सहसो हाया-औड़े, प्रमित स्वर्ण-सम्पूर्ण पृथ्वों, प्रानिन्दोम यक का फल तथा प्रपना मस्तक तक दे देने का अस्ताव विवा, किन्तु हुठी भिक्षु ने उन्हें भी ग्रहुण नहीं किया। धन्त में कर्ण ने प्रपत्न अमुल्य कवय-कुण्डल देने का प्रस्ताव किया। किसे कर्ण ने प्रपत्ने कवय-कुण्डल भिव्या कार्यक मना करने पर भी वानी कर्ण ने प्रपत्ने कवय-कुण्डल भिव्युक को प्रदान कर दिये।

वह भिक्षु और कोई नहीं था, बाह्मए। वेश में स्वय इन्त्र था। यह भ्रभीष्ट कवन मुण्डक लेकर प्रधास्थान चला गया। उनने कर है स्वयुक्त लिया हुआ दान तो ले लिया किन्तु अपनी कपट-सीला पर उसे अनुतार होने लगा। वह तोचने सगा कि एक और तो वर्ग जैसा विमुत्तहत्त दानी और इसरी और मुक्त जैसा छड्मवेशी माणी। परिणासत आत्मानानि से मुक्ति पाने के लिए उनने नर्ग के पान पिनला नामक एक अमीच सिक भेजी जिसकी सहायता से पिमी भी एक पाण्डक का वश किया जा सकता था। कर्म ने उसे अन्योकार करते हुए कहा - 'कर्ग दिये हुए दान का प्रनिदान ग्रहण नहीं करता।' अपन से देवहुत के समक्षाने पर वर्ग ने उस धानित को स्वीकार कर दिया।

इस प्रसम के पश्चात् कराँ भीर शत्य पुन स्थास्ट होनर युद्ध-भूमि की योर प्रस्थान करते है। यही भरत-बावय के साथ नाटक समाप्त होता है।

्यह रुपक मो कौरव-पाडव-कया पर ब्राम्मारित है । कर्एमार की

तरह यह नी एक अब को 'उत्तृष्टिकाव'
४. करभंग है। संस्कृत साहित्व में यही ऐव मात्र द खान्त स्पन है। इस रूपक का कथानक महाभारत-युद्ध के अन्तिमाश से सम्बन्धित है। युद्ध के कौरवो तथा पण्डवो की समस्त सेमा विनय्ट हो जाती है। कौरव्य पक्ष के बीगे केवल दुर्वोघन जीवित बचता है। रूपक के प्रारम्भ में सूत्रवार युद्ध भूमि का वर्षान करता है। तदन-तर भीम भीर दुर्वोघन के गदा युद्ध का इत्य उपस्थित हो जाता है।

कोनो पीर परस्पर एक दूतरे पर गदा-प्रहार करते हैं। भीम दुवांयन के प्रहार से कुछ क्षण के लिए मुख्कित हीनर गिर जाता है। यह देककर पाडव पता के सभी लोग विराण हो जाते हैं, पर वलराम अपने लिप्य दुवांयन के परान्म को देककर हॉवत होते हैं। भीम के सचेत होने पर श्री कृष्ण उसे एक गुप्त सकेत' करते हैं, जिसके सनुसार कह दुवांयन की जाग पर मर्मान्तक प्रहार करता है। परिणामत दुवांयन की जांग हुट जाती है और वह गिर पक्ता है।

हापने शिष्य की दयनीय दया देखकर बलराम भीम पर प्रत्यत क्रुपित हो जाते हैं और उसके द्वारा दुर्याधन की जीव पर किये गये गया-प्रहार को धर्म विरुद्ध बताते हैं। वसराम के भीम की भरसंगा करने पर दुर्योघन की साल्यना मिलती हैं।

दुर्वोधन को मरणासम देख कर धृतराष्ट्र, गाथारी झादि होक-मग्न हो जाते हैं। दुर्वोधन उन सबको झपने बीरोचित स्वभाव से सान्त्वना देता हुआ होक न करने की सलाह वेता है।

इसी समय दुर्योधन को ढूँडता हुआ धरवरथामा प्रवेश करता है और दुर्योधन की दशा को देल कर पाण्डवो पर फूड हो उठता है। वह आवेश में मानर श्रीष्टरण तथा मुर्लून को मार डानवे की प्रतिज्ञा नरता है। दुर्योधन इस प्रतिज्ञा की पूर्ति को ससभव बता वर उसे साग्द करने का अवस्थल प्रशास करता है। उसे ध्रवने प्रति-गोध कीने के वरन्य पर इस्ट देश वर प्रतर्शन्द क्या खलाम भी उसमा समर्थन फरते हैं। स्वस्त्यासा दुर्योधन के विहासन पर उसके पुत्र दुर्येय का राज्याभियेन वरता है। उचद दुर्योवन ध्रवने पूर्वजो का समरण करता हुआ देहरथान देता है।

इसी स्थल पर भरतवाक्य के साथ यह स्पन समाप्त होता है।

रै एर ६८१नीमपहाक्रयमान भीमतेन हृष्टा स्वपूरगभिहत्य सामिष सना प्रयन्यति अनार्देश ६ — ऊरभग, सक १, पू॰ २९

तीन मकों का यह 'समवकार' रूपक भी कौरव-पाण्डय-कथा पर ब्राश्रित है। इसके प्रथम अंक में दुर्योचन के विशाल यश का निरूपण किया गया है। यश की समाप्ति

पिरुणा किया गया है। यज की समाप्ति
पर दुर्योधन आचार्य द्रोण को अक्तकार करते हुए द्रोण कहते है—'पाण्डलों को उनका राज्यार्थ दे दो,
यही मेरी आधार्य-दिक्षणा हैं। अजुनि ब्रोण के द्रव अस्ता है और इसे दुर्योधन के प्रति आधार्य की धर्म-प्रवचा
बताता है। द्रोण अपने निश्चय पर हुद रहते हुए कौरवों को स्वय्द
शब्दों में बता देते हैं कि पाण्डलों को राज्यार्थ दे देना हो उनके लिए
स्वेदकर है, अस्यया पाण्डल सपने प्रचण्ड पराचम से उन्हें विजित कर
बलपूर्वक अपना राज्य ले लेंगे। आधार्य की देस हुददा को देल कर
दुर्योधन पोपएा करता है कि यदि गाँच रात की अविभि के भीतर
पाण्डलों का पता लगा लिया जाय तो उन्हे राज्यार्थ दिया जा
सकता हैं।

हीए दुर्योघन की इस शत को मानने के लिए तैयार नहीं होते पर इसी समय उन्हें यह सभाचार मिलता है कि किसी व्यक्ति ने विना शहन-प्रयोग के ही विराद के सम्बन्धी कीचन-बन्धुमों को मार डाका है। इसी शोक के कारण विराद यज में सम्मिलित नहीं ही खो हैं। इस सभाचार से भीम्म यह शतुमान लगाते हैं कि कीचन-बन्धुमों को इस प्रकार मारने वाला भीम के मिबा और कोई नहीं हो सकता है। मृत. बहुत सम्मब है कि पाण्डम विराद से यहाँ ही निवास कर रहे हो। भीम्म के इस अनुमान के आधार पर द्रोण दुर्योधन की उक्त शत स्वीकार कर सेते हैं।

अब भीष्म एक ऐसी बुक्ति निकालते हैं जिससे कौरवो के समझ पाण्डल लीग उपस्थित ही सकें। उन्होंने दुर्वीयन को बताया कि विराद के साथ हमारी पुरानी धनुता है। उसके यक मे उपस्थित नहीं होने का भी यहीं कारण है, अतः उस पर आत्रमण करके उतका

## १. इहात्रभवान् बुरुराजो भवन्त विज्ञापयित ।

यदि पनरावेल पाण्डवाना प्रवृत्तिरुगतेत्त्व्या, राज्यस्याचे प्रदास्यति नित्त । समानयतु भवानिदानीस् ।—पनरात्र, प्रक १, पृ० ४१

गोधन हर लिया जाय। इस अस्ताव को सभी स्वीकार कर लेते हैं। विराष्ट होएा का शिष्य है, भत वे जनान्तिक में अस्ताव का विरोध करते है। भीरम वा अनुमान है कि विराष्ट पर आकारण होने पर उसके यहाँ निवास करने वाले पाण्डव कृतवताबवा उसकी सहायता के लिए बहुं अवल्य सार्थेंगे। इस अकार पाण्डवी का पता लग जायेंगा सार उपीप्त कर के उन्हें राज्यार्थ देने के लिए वाच्य होना पठेगा। यह है इपल के प्रथम सक को करों करी।

द्वितीय अक मे बिराट के यहाँ उनके जन्मदिवस का उत्सव मनाया जाता है। इसी समय दुर्योपनादि उन पर आम्रमता कर देते है और उनका गोधन हर लेते हैं। विषाद को जब यह सूरना मिलती है तो वे अगयाव नामक प्राह्मता कपधारी पुविध्वित को दुला कर सारा प्राान खुनाते हैं। स्वय विषाद भी गुढ़ में जागे को उचत होते हैं। किन्मु यह जान कर रुक जाते है कि राजकुमार उचत हात्रु को पराहत करने के लिए पहले ही युढ़केन में पहुँच गये है। उत्तर के रुव का नारिष बृहदाना (अर्जुन) को बनाया जाता है। कुछ समय परचात विराट मो सुबना मिलती है कि सभी विषकी परास्न होकर माना गये हैं, केवल अधिनन दुर्श लंद रहा हैं।

इसी समय दूत द्वारा सूचना मिलती है कि पांकवाला में नियुक्त व्यक्ति (भीमकेन) ने भीममन्त्र नो पक्त लिया है। विराट बृहमला की मादेव देते है कि बीर अभिमन्त्र नो यहाँ सारद्यक्त लाया जाय। तत्त्वतार अस्मिनम्त्र निराट के समय उपस्थित होता है। इसी अभवर पर उत्तर द्वारा भीपणा को जाती है कि आज के युद्ध में विजय प्राप्त करने हात हो जात है। कार के यह भी तात हो जात है कि बाह्य पहिच्यों को पर्यों में पूर्व पिता होता हो जात है कि बाह्य पहिच्यों कार परिच्या प्राप्त कर के सात सहसा श्रेय पहिच्यों कार परिच्या पांचवाली में नियुक्त व्यक्ति भीमसेन है। इस व्यक्तियों का पांचवाली के हप में परिच्या पांचव विराट को हार्विक प्रसानता होती है। असिमन्त्र में अपने पित्याय हो पित कर मनस्तीण का असुम्य करता है। विराट धर्जुन में निवयोगहार के रूप में अपनी पित्या पर्यों कन्या उत्तरा के देने की घोषणा रूप स्थानित करते है।

उधर कौरव-पक्ष मे यह सगाचार फैन जाता है कि ग्रनिमन्यु को राज्ज ने पकड लिया है। इसके बाधार पर भीष्म ग्रीर द्रोगा यह अनुमान लगा लेते हैं कि अभिमन्यु को पकडने वाला भीम के अतिरिक्त ग्रन्य कोई नहीं हो सकता, पर शकुनि को इस बात पर विस्वास गहीं होना।

द्वी समय दूत द्वारा शकुलि को सूचना मिलती है कि जिस यारा ने उसके रच की ध्वजा की ध्वस्त किया है उसमें दिसी का नाम सिना दुखा है। देखने पर बात होना है कि उस पर अर्जुन का नाम प्रकित है। शकुनि इस प्रत्यक्ष सत्य वो यह कह बर उपेक्षित कर देता है कि यह माम पाण्ड्र-पुत्र अर्जुन का नहीं अन्य किसी अर्जुन का है। सब दुस्यान ब्रोग्ण श्रादि को कहता है कि यदि वे युधिस्टिर को साकर दिखा दें सी पाण्डवा को राज्याय है दिया जायेगा।

इघर राजकुमार उत्तर विराट नगर से दुर्योबन की सभा म प्राकर धमराज का सदेश देते हैं कि उत्तरा उन्ह पुत बच्च के एप में प्राप्त इहें है प्रत उत्तरा धमिमन्यु का विवाह आप लागो के यहाँ सम्प्र हो या विराम्पुर म। इस के उत्तर में शकुनि गुरन्त कह वेता है कि विराटपुर म।

इस प्रकार सबको पूर्णतया जात हो जाता है कि पाण्डब विराह के यहां विद्यमान् हैं। यह प्रमाशित होने पर दोणाचार्य दुर्यो-धन को उसको प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए कहते हैं। ऐसी स्थिति म विवस होकर पाण्डबों को राज्यार्थ देन की पीरणा करनी पड़ती है।

भोस का यह रूपक भी कौरव पाइव कथा लेकर उत्पत हुमा है। श्रीकृष्ण कौरव पाइवो म सचिव ६ दूतवाक्य कराने के लिए पाण्डवो की स्रोर से दूत

६ दूतवाक्य कराने के लिए पाण्डवों की छोर से दूत बन वर दुर्योघन की सभा म जाते हैं और यहां गुश्चिरिठरादि का सदेश भूनाते हैं। योहण्ण ने दूत कार्य के प्राधार पर ही इस रूपन का नामकरण निया गया है। यह एक एकाकी रूपक है। इसना सार यह है—

नान्दीषाठ के पश्चात् मूत्रवार नेषध्य सकुछ घटर सुनकर यह मूषना देता है कि कीरत-पाइवी म परम्पर नैर भाव उत्पन्न हो जाने के कारण हुर्मीयन प्रतिकारार्थ स्वपक्ष के राजाझा से मत्रणा करना चाहना है। दुर्मीयन आयतित राजाबा को यवीचित स्नामन देकर मम्मानित करता है। ७४

इसी यन्तराल में कजुकी दुर्योधन को पाण्डवों के शिविर में दूत के रूप में आने बाले पुरुषोद्धम नारायण का समाचार देता है। उसके मुत से श्रीकृष्ण के लिए 'नारायण' अभिवा सुन कर दुर्योधन के ग्रहुकार को मार्मिक चोट लगती है, अत. वह उसे फटकारता हुआ कहुना है कि मूर्ख । श्रीकृष्ण को 'नारायण' आदि शब्दों से सम्मान न देकर उन्हें पाण्डवों का सर्वेशवाहक दूत 'केशब' कहुना चाहिंगे या।

इसके परचाल वह वहाँ उपस्थित सभी राजाओं को आदेश देता है कि श्रीकृप्ण के राभा में आने पर कोई भी अपने आसन से नहीं उठेगा। अन्यशा ऐसा करने वाले को बारह 'सुवर्गभार' से दिण्डत किया जामगा। स्वय उसे भी न उठना पड़े, इसिलए वह ब्रीपदी के चीरहरण के चित्र को अपने सामगे मेंगा कर देखने लग जाता है।

इसी समय बुर्योजन की आज्ञा से श्रीकृष्ण सभा-मयन में प्रवेश करते हैं। उन्हें देखते ही सभी नरेश उठ खडे होते हैं घौर फिर उनकी श्राज्ञ से ने प्रमना-श्रपना आसन प्रहेण कर तेते हैं। राजाभी के इस स्पबहार को देखकर दुर्योधन को बढा शाक्ष्य घौर दु ख होता है। यह इन्छ होकर श्रीकृष्ण का समादर करने वाले राजाभों को पूर्व निर्धारित कह होकर श्रीकृप्ण का समादर करने वाले राजाओं को पूर्व निर्वाधित वरण हैने की घोपणा करता है ग्रीर सक्षम के कारण स्वय भी प्राप्त स्वर है। वे हिल्ला द्वीपदी के लिय को देखकर दुर्गोधन की सरमान करते हैं। वे इसे जसकी घोर भूकंता बताते हैं। स्वजनो के प्रयम्त का समरण कर प्रसम्म होने से वढ कर मूखंता और क्या ही सकती है? प्रारम्भिक छिटणार की वार्ता के परचाद श्रीकृष्ण दुर्गोधन को पाण्डयो का 'दायाय' देने के लिए कहते है। दुर्गोधन से यह सुनकर कि पाण्डय बस्तुत पाण्डु के पुत्र नहीं है, अत वे पाण्डु का मान प्राप्त करने के अधिकारी नहीं है—इसका प्रदूष्त देते हुए श्रीकृष्ण दुर्गोधन को युनितपूर्वक समझाते हैं कि वैसे देखा जाय तो एतराष्ट्र भी विचित्र-तीय से उत्पाद नहीं है के कारण उत्पत्त राज्य की प्राप्त करने के अधिकारी नहीं है है। श्रीकृष्ण के देख बात की पुनितपूर्वक समझाते हैं। यह से देखा जाय तो एतराष्ट्र भी विचित्र-तीय से उत्पाद नहीं के कारण उत्पत्त राज्य की प्राप्त करने के भिषकारी नहीं ठहरें से श्रीकृष्ण को देख बात को पुनितर दुर्गोधन कृद्ध हो जाता है और उन पर दूत की मर्यादा का उत्कामन करने का प्रारोप लगाता है। वह जन्हे सामिमान कहता

१ केशव इति । एवमेष्ट्रव्यम् । श्रमभेव समुदाचार ।

હ્ય

है कि राज्य न तो मांगकर प्राप्त कियाजासकता है स्रौर न दीनों को सहज में लुटाया जा सकता है। यदि पाण्डवों को राज्य-प्राप्ति की याकांक्षा है तो वे युद्ध-भूमि मे पराक्रम दिखाकर उसको पूर्ण करें।

इस प्रकार का प्रलाप करने पर श्रीकृष्णा दुर्योधन को खरी-खरी सुनाते हैं और उसे चेतावनी देते हैं कि वह अपने ऐसे कार्यों से कुरुवंश को बीघ्र ही नष्ट कर देगा। यह मुन कर दुर्योघन श्रीकृष्ण को बन्दी बनाना चाहता है, किन्तु ने अनेक रूपों में सर्वत्र व्याप्त हो जाते हैं, जिससे दुर्योबन उन्हे बन्दी नही बना पाता ।

दुर्योघन की ऐसी धृष्टता देखकर श्रीकृष्ण कुपित हो जाते हैं ग्रीर उस पर प्रहार के लिए अपने सुदर्शनादि अस्त्रों का श्राह्मान करते हैं। सुदर्शन उपस्थित होकर भगवान् को संतुष्ट करता है। उनका कोप भान्त हो जाता है और वे अपने सभी अस्त्रों को वापस लौट जाने का श्रादेश दे देते हैं। वे स्वयं पाण्डव-शिविर में लौट जाने का निरुचय करते हैं।

उधर धृतराष्ट्र को जब यह जात होता है कि दुर्योधन ने महा-महिमाजाली श्रीकृष्ण का अपमान किया है तो श्रीकृष्ण के पास आता है भीर उनके चरलों में गिर कर बपने पुत्र के बपराब के लिए क्षमा-याचना करता है।

धन्त में, भरतवावय के साथ नाटक समाप्त होता है।

## द्वितीय वर्ग

यह वर्ग श्रीकृप्ण के चरित्र से सम्बन्धित है। श्रव तक इस वर्ग से सम्बन्धित भास का केवल एक रूपक उपलब्ध हमा है जिसका नाम 'वालचरित' है।

इस रूपक में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाएँ निरूपित की गयी है। कथानक का प्रसार पाँच बको में हुआ है। पहले में हुप्स्-जन्म की कथा

र्वाणत है। वसुदेव के घर मे श्रीकृप्स

का जन्म होने पर देवगण भानन्द-वालचरित निमग्र हो जाते है। नारद उनके दर्शन

का लोभ-संवरण नहीं कर सकते। वह उन्हें देखने के लिए आते हैं। कंस के भय से वसुदेव अपने पुत्र को मधुरा से वृन्दावन ले जाने का निश्चय कर उस और प्रस्थान करते हैं। मार्ग में यमुना नदी अपनो उत्ताल तरगो से बहती मिलती है। पार जाने का कोई साधन उप-लब्ध नहीं था। अन्त में वह उसे तैर कर पार करने का निश्चय कर पानी मे उतर जाते है। इसी समय एक मलौकिक घटना घटती है। ज्योही वभुदेव नदी में उतरते हैं त्योही उसका पानी दो भागों में विभक्त हो जाता है और बीच में मार्ग निकल स्नाता है। वस्देव उसी मार्ग से नदी को सहज मे पार कर लेते हैं।

नदी पार करके वह एक बृक्ष के नीचे बँठ जाते है । वह यह सोच ही रहे थे कि ग्रव किराके यहाँ चला जाय कि इतने में उन्हें नदगोप विखाई देते है। उसी रात उनकी पत्नी यशोदा ने एक कन्या की जन्म दियाथा, जो उत्पन्न होते ही मर गई थी। नद श्रपनी मृत पुत्री को यसुना मे प्रवाहित करने साथे थे। सुयोग देख कर वसुदेव ने श्रपनी बात नव से कही स्रोर उनके समक्ष पुत्र को ले लेने का प्रस्ताव रखा जिसे उन्होंने कुछ रोज-विचार के बाद स्वीकार कर लिया। वसुदेव पुत्र देकर और नद की मृत पुत्री की लेकर समुरा की छोर चल दिये। हैवयोग से मार्ग मे उस वालिका मे पुन प्राया-सवार हो गया। मधुरा सौट कर बसुदव ने उसे इत्या के स्थान पर सुना दिया।

दिसीय अक का प्रारम्भ कस के राजमहल से होता है। कस की दितीय श्रम का आरम्भ कर के राजमहुल रो होता है। का का का का का जा प्रकार जाण्या पुजियों दिलाई देती हैं जो उसका उपहास करती हैं। कस ज्योतियियों से पूछना है कि जिगत रात की जो भूकम्प, उत्कारात पादि हुए है उनका नया फल है? उत्तर में कस को उस समय किसी माहापुक्ष के श्रमतार की सुन्ना देते हैं? पह सुन कर कस को भय हो जाता है कि हो न हो उसको भारते नाला उत्पास हो गया है। वह कचुकी को यह पाता लगाने के लिए भेजता है कि गत राति में किस का जग्म हुआ है। नगर में पूछनाख करने के परचाल कचुकी कस को देवती के गर्म से एक पुनो के जन्म की पुनता देता है। कस वादेव कि मी मांचा कर उसको भार देता है, किन्तु उसका एक प्रश्ना आकारा में पूछन कर कालायायों से कर पे दिलाई देता है।

हरीय अक में श्रीबृष्ण की गोचारण-लोला और पराक्रम का

कार्यातरेख नरलोकमिह अपन्नम्। माकाश दुन्द्रमिरवे समहीधकम्पै-

स्तस्येव ज मनि विदेवकरी विकार ॥ - बालवरित, २ १०

१ भूत नभस्तलनिवासि नरे है । निस्य

चित्रण हुया है। श्रीवृष्ण के जन्म लेने के पश्चात् गोधन में अपूर्व द्वृद्धि होती है। जिसका हेतु गोपनाण श्रीवृष्ण मो मान कर उनकी महिमा का गान करते-फिरते हैं। श्रीवृष्ण वात्यवाल में ही धूतना, उनकट और ने देशी आदि दानवों को भार कर प्रजवासियों पर परारम मी अमिट छाप डाल देते हैं। गायों को कष्ट देने वाले श्रीर्एम भो मार कर गोरक्षण के क्षेत्र में अपूर्व स्थाति प्राप्त कर लेने हैं।

चतुर्ष सक में श्रीकृष्ण कालिय नाम का दमन करते के लिए कालिय हुद में प्रवेश करते हैं। नाम उन्हें विषयजाता से भरम रामा के मनी पर सारवाद हो जाते हैं। नाम उन्हें विषयजाता से भरम करता चारा पर सहर उनका से सरम करता चाहता है, पर उन पर कोई प्रभाव नहीं होता। भयकर सबधं के बाद वह उनका वमन कर डावते हैं। अपन से बहु उनकी घरएम मौगता है, जिससे वह उसे अभयदान देकर मध्य के भय से मुक्त कर देते हैं। इसी समय श्रीकृष्ण को एक भट से सूचना मिलतो है कि मधुरा में कम के हारा पत्रुर्वन भी आयोजना की गई है, जिसमें उनको परिजनो के साथ आमिता किया गया है। कस को मारने की हिन्द से श्रीकृष्ण यह निमन्यण सहयं स्वीकार कर लेते हैं।

पचम प्रक में बस कुष्णा-वस्तराम को मारने की क्पट-योजना तैयार करता है। उसी समय उसे सुचना पितानी है कि कृष्ण-वस्तराम नार

करता है। उसा समय जसे सुचना मिलनी है कि कृष्ण-अलराम नगर में थ्रा गये हैं। उन्होंने राज-रजक से बरन दीन बिये हैं तथा निर्फुश हुबलवापीय हाची नो भी पद्धाड याता है। इनके धांतरिक उन्होंने राजप्रासाद में साती हुई कुटना को मार्ग से रोक पर भीर उनके सुग-न्यित द्रव्यों की छीन कर उनके नुब्बन्दन को ठीक बर दिया है और धनुसांता ना रक्षक भी उनके हाथ से बराशायी हो चुका है।

सदमन्तर युद्ध पटह की क्वांति होती है और पूर्विमिन्दत कार्य-त्रमानुसार चार्युर और पृष्टिक के साथ नगम कृष्ण और वतराम का इन्द्र युद्ध होना है, जिसमें दितीय पक्ष की विजय होती है। चार्युर और मुश्कि जैसे तानवों के मर जाने पर क्या वो सादवर्ष होता है। चार्युर की गिराकर हुण्ण क्या की और स्वयंकते हैं और उद्यद्ध प्रिक्ट एकड कर एक ही अटके में वे उसे नोचे गिरा देते हैं जिससे जमारी जीवन सीता समाम हो जाती है। उसी समस्वयुद्ध आते. हैं. म्बर्ट युद्ध प्रकट कर देते हैं कि वे बोगों और उन्हों के पुन हैं और इस्प्रण का जनम् कस यध के लिए ही हुम्रा था । त-पञ्चात् उपसेग को कारागृह से मुक्त कर कस के सिहासन पर प्रतिधापित किया जाता है ।

यह देख कर देवगएा बाकाश से पुष्पवृष्टि करते है। नारद भी भगवान् का गुरगानुवाद करते हुए वहाँ घाते है ब्रीर उनका अभिवादन

कर चले जाते है।

ग्रन्य नाटको की भाँति यह नाटक भी भरतवानय के साथ. समाप्त होता है।

उपर्युक्त नाटकों के अतिरिक्त भास ने कुछ ऐसे नाटक भी

लिले है, जिनका मुख्य ग्राधार 'रामकथा' है।

इस प्रकार के नाटको में प्रमुख प्रतिमा-नाटक है। यह भास का सर्वश्रेट्ठ नाटक माना जाता है। इसमे राम के यनवास से

हेकर राज्याभिषेक तक की कथा का १ प्रतिमानाटक वर्णन है। इसमें प्रतिमागृह घयना मूर्ति-गृह की घटना का विशेष महस्त्र है, ° जो

दसके नामकरण का भी हेत है।

इस रूपक के घटना चक्र को सात अको से विभवत किया गया है। प्रथम अप से राम के राज्याभिषेक की तैयारी की जाती है। राजा दलरप की आजा से राज्याभिषेक की सभी सामिषयां बुटा वी जाती है। यसिष्ट संस्कार प्रारम्भ करने के लिए महाराज की प्रतीका करते हुए दिखाई देते है।

उधर सीता अपने कहा में चेटियों के साथ विनोद-बातों में आनम्बर्गन दिखाई देवों है। इसी बीच एक चेटी राजप्रासाय की मान्यवाना से एक वरकत्वम्दन खाती है जिसकी सुन्दरता से आइष्ट ही सीता उसे गहन लेवी है। इतने में राम के राज्याभिषेक के ममन-वाय बजते-बजते सहसा बन्द हो जाते हैं। कैंक्यों रक्षरण से बर गोग कर राम के राज्याभिषेक को रक्षवा देती है। राम सीता ने, पास आकर अपने वनगमन का समाचार सुनाते हैं। अक्स्यात् उनका ष्यान सीता के पल्कन-यहण की बोर जाता है और बहु भी उसे पहुनने की इज्छा प्रकट करते हैं। पारिस्थितिक आधात से दत्तारण के मुण्डियत हो जाने के कारण अन्त पुर का करण अन्यन सुनाई पढ़ता है। लक्ष्मण की जब यह जात होता है कि यह सब अनर्थ कैकेयी के कारण ही रहा है तो यह, उस पर कृत होकर, समस्त हवी-जाति के संहार की प्रतिज्ञा करते हैं। राम लक्ष्मण के जोव को सान्त करते हैं। शान्त होंकर लक्ष्मण भी राम के साथ बनगमन की तैयारी में लग जाते हैं। बूसरे अंक में राम-वियोग से विकल हुए दश्वरण की मूच्छी का करुणापूर्ण निज्ञण किया गया है। कीसल्या दशरण को प्रबुद्ध कत का प्रयास करती है। इसी समय रामादि को स्रयोध्या की सीमा से पार पहुँचा कर सुमंत्र लीटते हैं। इसर रामवनगमन के बृतांत की

सनकर दशरय प्रार्ण त्याग देते हैं।

द्यालोच्य नाटको का परिचय

30

पाते । अन्त मे यह राम की म्राजा को शिरोधार्य कर उनने प्रतिनिधि के रूप मे राज्य ज्ञासन चलाना स्वीकार कर वापस म्रा आते हैं।

पत्था प्रक मे रावरण सन्यासी का वेश बना कर छलपूर्वंक राम का आतियम प्रहुण करता है। दसर के शाद के लिए वह राम को सुवर्ण मुंग के निवार का उपयेण देता है। तदनुसार राम सुवर्ण मुंग को पव बने के लिये सुदूर बन में चले जाते है। सक्ष्मण भी एक महाँप के स्वागताचे आध्यम से वाहर चले जाते है। साम्य में केवल सीताजी रह जाती है। राजको प्रकेशी देख और प्रपत्ना वारतिषक परिचय देकर रावरण उन्हें चल पूर्वंक प्रपहरण करके लक्ता की श्रोर चल देता है। सीता के जश्दन को सुनकर जटायु रावरण के मार्ग में अनैक विभन प्रपित्य करता है।

छठे प्रक में रावण सीता को प्राकाश-मार्ग से उडा कर ले जाता है। बहुत देर तक रावण से जाता हुआ जटायु अन्त में धरा-घामी हो जाता है। इस घटना को अवनामा के ऋदिकुमार देवते हैं भीर उनमें से दो इस घटना को अवना राम को देने के लिए वहाँ से प्रस्थान करते हैं। युअप भी जनस्थान में गये हुए थे। वहाँ से जीट कर से सीताहरण के समाचार को गरत है। दिणाने का प्रमत्त करते हैं पर अन्ततीगत्वा भरत को मह वात कात हो ही जाती है। इन सव वालों के लिए भरत पुन कैंकेयों को अर्थना करते हैं। वह अरत से समा-पाना करती हुई कहाती है कि वीरह दिन जनकास के स्थान पर उसके मुंद से चौदह वर्ष का बनवास निकल गया। इसीलिए यह सब अनर्थ हुआं। भरत इस बात पर विश्वास कर शान्त हो जाते हैं और रावण से प्रतिशोध लेने के सित प्रवारित करते हैं।

सप्तम धक मे राम रावण को पराजित कर सीता और लक्ष्मण सहित जनस्थान मे मा जाते हैं। उसी समय वहाँ सेना को लेकर भरत भी जा पहुँचते हैं। उनके साथ कैकेगी भी थी। वहाँ भरत राम के चरणों में राज्य-भार समस्ति कर देते हैं। केकेग राज्य-को राज्या-भिषेक की माना देती है जिसे वे स्वीकार कर तेते हैं।

श्रात । श्रुदशदिवसा इति वक्तुकाम्या पर्याकुन हृदयमा चतुर्देशवर्षाशी रयुक्तम् । —प्रतिमा नाटक प्रक ६, ५० १६५ ६६

राम कथा से सम्बन्धित यह भाम का दूसरा रूपक है। इसमें वालिन्बथ से लेकर राम के राज्याभिपेक दः ग्रभिषेक नाटक तक की कथा का समावेदा दिया गया है। इस नाटक की कथा-वस्तु का विकास

छ श्रकों में हुमाहै। प्रथम श्रक म वाली और सुग्रीव का युद्ध होता है जिसमें राम की सहामता से मुग्रीव की विजय होती है और वाली मारा जाता है। उसके स्थान पर मुग्रीव को राज्याभियेक किया जाता है। इस प्रकार

यह वानरराज वन जाता है। हुसरे अन के आरम्भ में सुग्नीव हारा सीता की लोज के लिए सभी दिशाधों में बानरगण भेजे जाते हैं। उनमें से हुनुमान जटायु के ककेतानुसार लगा पहुँचते हैं और मीता का पता लगाने में सफलता प्राप्त करते हैं। वे अशोकवाटिका में बंदी सीता को देखते हैं। पहले हुनुमान के समक्ष आने पर सीता को उनके राम-दूत होते पर विस्वास नहीं होता, पन्तु बाद में उन्ह अरवस हो जाता है कि हुनुमान में राम ने ही उनके पास भेजा है। हुनुमान सीता को आवस्तत कर राम ने ही उनके पास भेजा है। हुनुमान सीता को आवस्तत कर राम ने साथ लीटने का निश्चय करते हैं। लका से प्रस्थान करने से पूर्व ने लका के उनवन के फल खाकर उनका विष्टम भी करने हा विवार करते हैं।

जुतीय अन में हनुमान द्वारा शावण का उपयन विध्यस्त कर दिया जाता है। सूचना मिसने गर रावण हनुसान की पक्ष्म के लिए प्रमुद्ध को अकता है, जिनको हनुमान परास्त कर देते हैं। उनके इसरा प्रश्नकुमार का भी यथ कर दिया जाता है। अन्त में हनुमान को परुड कर मेपनाइ रावध के दरवार में प्रस्तुत करता है। हनुमान रावध नो राम का आदेग सुनाते हैं, जिससे प्रह्नारी रावध उन पर दिवाद उद्ध्या है। वह परामसं के लिए अपने साई विभीषण्य में दुलाता है। वह माई को राम मार्यों को लौटा देने की सम्मति देवा है पर पान्य इसे स्नीकार नहीं करना और विभीषण् पर मृद्ध होनर उसे स्वना से निर्वाधित कर देता है।

चतुर्थं श्रक म सीता वा पता लगा कर हुनुमान राम के पास जाते है। रावण पर आक्ष्मण करने ने लिए सुग्रीव सेना सजाता है, जिसे लेकर समुद्र पार करने हुए राम लका पहुँचते हैं। वहाँ विभीषण उनकी घरण में भावे हैं। राजण अपने दो राक्षस-गुप्तचरों (गुक-रागरण) की राम के पास जेजता है, जिनका भेद खुल जासा है भ्रीर वे पक्क तिये जाते हैं। राम उदारतापूर्वक उन्हें क्षमा कर देते हैं भ्रीर उन्हीं के द्वारा राजण के पास युद्ध का सदेश भेजते हैं।

पत्रम ग्रक में राम-रावण की सेनाओं में युद्ध होता है। एक-एक करके रावण के सारे योदा मारे जाते हैं। निराश होकर रावण सीता को ही मार डालना चाहता है, पर मंत्री उसे ऐसा करने से रोकते हैं। अन्त ने वह मायापूर्ण युक्ति से राम और लक्ष्मण के क्टे हुए सिर को प्रतिकृति बनवाकर क्षीता को दिखाता है और उसके मन में यह विक्लास जमाने का पिकल प्रयत्न करता है कि राम लक्ष्मण सो मारे गये है पर सीता उसकी इस बाल में नहीं ब्राती और अपने बल पर हवता से आहक रहती है।

छठे प्रक में राम-रावण का घोर सग्राम होता है, जिसमें रावण मररा जाता है। शीवा को पाकर राम उन्हें कसकाक्षेप के कारण प्रस्वीकृत कर देते हैं। सीता व्यक्तिपरीक्षा से प्रपनी शुद्धता प्रमाणित कर राम का विश्वास आप्त गर सेती है। ग्रन्त में राम-राज्याभिपेक हो जाता है।

उपर्युक्त रूपकों के श्रतिरिक्त मास ने कुछ ऐसे रूपकंभी जिसे हैं जो कि मुख्यत कल्पनाश्रित है। उनमे से एक 'अविमारक' भी है।

सह एक प्रकरण 'रूपक' है। इससे कुन्तिकोज नी पुनी और श्रविमारक नामक राजकुमार की प्रेम-१ प्रविमारक कथा का विजय किया गया है। कथा नर्मक कुनी हु अनी से विभाजित किया

प्रथम स्रक में राजा जुन्तिभोज की कन्या कुरगी उपयन में भ्रमण करने जाती है। वहाँ से जौटते समय मार्ग में उसे एक उन्मत हाथी मिल जाता है, जिसे देखकर वह भयभीत हो जाती है। हाथी राजकुमारी की भोर मार्गटता है, किन्तु एक सुन्दर युवन वहाँ साकर प्रपत्न पराज्म से हाथी को भाग देता है। वह युवक स्विमारक था। कुरभी उसके पराजम स्वीर सोन्दर्भ गर मुख्य हो जाती है भीर

गया है।

स्विमारक में फुराी के रप-भोवन पर रीक जाता है। राजा ने स्विमारक के पराजम से सुष्ट होकर उनके मुखरील का पता लगाया तो जात हुआ कि वह चाण्डात है। पर उनके सहदयता, दया- जुता, दाक्षिण्य सादि गुणो को देखकर किसी नो सहसा विश्वास नहीं हो सकता पा कि श्रविमारक अत्याब है। इसी समय काशिराज अपने पुत्र का शुररी से विवाह पक्का करने के लिए कुन्तिमोज के पास एक हुत गेजते हैं। उसर कुन्तिगोज ने कुरगी का विवाह सीवीरराज के पुत्र के साथ करने का निश्चय कर रखा था, पर इन दिनो उसका कहीं पता नहीं चल रहा था। चण्ड आगंव नामक क्षेत्री मुनि के साथ करने का निश्चय कर रखा था, पर इन दिनो उसका कहीं पता नहीं चल रहा था। चण्ड आगंव नामक क्षेत्री मुनि के साथ के मारत नहीं चल राय साथ स्वाप्त पता नहीं चल राय साथ ही निवास कर रहा था। उसके पुत्र का नाम विष्णुलेन था। श्रविष्यारि किशी असुर को मारने के कारण खते 'श्रविमारक' कहने नयी थे'। इसी कारण कुन्ति- सोज की सीवीरराज श्रीर उसके परिवार का पता नहीं चल पाय।

दितीय अक में अविमारक और कुरगी बोनों ही एक दूसरे के सियोग से पीडिंद दिखाई देते हैं। कुरगों के परिजन उसकी वियोग वेदना को दूर करने के लिए अविमारक के घर का पता लगाते हैं। धानी और निर्तितिका अधिमारक के घर पर पहुँच जाती हैं और उसे प्रच्छलन रूप म कुरगी के पास आन का निमंत्रण दे आती हैं जिसे यह सहर्ग स्मीकार कर लेता है।

तृतीय श्रक मे पूर्वनिश्चय के श्रनुसार श्रविमारक गुप्तवेश म राजा के वन्यापुर मे प्रवेश कर कुरनी का सहवास प्राप्त करता है।

चतुर्थं प्रक के फर्त्यांत श्रविणारक एव कुरपी के प्रम की बात राजा के कानो म पहुँचती है। यह जानकर श्रविमारक राजा के कन्या-पुर से निकल भागता है और निराश होकर सारमपात के प्रनेश प्रयत्न करता है। पहने यह पानी में डूब कर मरना चाहता है पर उसे सफ्तता गृही मिनती। फिर वह श्रविण प्रवेश द्वारा प्राण-स्वाग

१ मानुपस्वस्पवनशीवपराक्षमेशानेन वधमानेन यसमाविष्यस्पधारी मारितोऽपुर तस्मावऽविमारक इति विष्णुनेन नोको बवीति। श्रविमारक, श्रक ६, ५० १६५

करना चाहता है, पर वह बच जाता है। तीसरे प्रयत्न में घह परंत-रिश्वर से गिरमा चाहता है, फिन्तु वहाँ उसका साक्षात्कार एक विद्याघर से होना है जो उसे एक विकलण अँगुठी देता है जिसे वाँगे हाथ में घारण करने पर पहनने वाला अदृश्य हो जाता है भीर दाये में घारण करने पर दृश्य। इस अँगुठी को प्राप्त कर अविमारक प्रसन्न होता है और उसकी सहायता से पुन कुरगी के पास आने का निश्चम करता है।

पचम क्षक के प्रारम्भ में कुरगी अविभारक के वियोग में विकल दिखाई वेती हैं। वह निराश हो गलें में फन्दा डाल कर प्रारमहत्या के लिए उद्यत हो जाती हैं। इतने में क्रेंगूठी की राहासता से प्रविमारक क्रीर पित्रुपक बहाँ पहुँच जाते हैं। जिसमारक को देखते ही कुरगी का मन प्रफुलिलत हो जाता है।

छठे घक में कुलियोज घपनो पुत्री कुरती के विवाह की योजना में क्यस्त दिलाई देते हैं। उन्हें जब सोबीरराज के पुत्र विष्णुक्षेत्र का कोई पता नहीं नगता तो कुरती का विवाह काविराज के पुत्र जयवर्का के साय कर देने का निश्चय कर रेते हैं। तत्रतुकार अध्यमर्का के सही पुला विया जाता है। यज दीजित होने के कारण काशिराज स्वय वहीं घाना ठीक नहीं समग्रते। सोबीरराज भी वहीं उपस्थित है। उन्हें सपने पुत्र का पता नहीं लग पा बहाई देश तब्द हम विवाह के प्रयस्त पर लिल हों रहे हैं। राजा भी यिवागरक को खोजने के लिए मित्रों को इधर-उधर भेजती हैं पर उसका पता नहीं लग पाता है।

ऐसी स्थिति में जयवर्मा के साथ क़ुरती का विवाह होने को है। है कि मारद प्रनेश करते हैं। वे कुन्तिभोज भीर सोबीरराज को बताते हैं कि अविमारक क़ुरती के पास ही निवास कर रहा है और उसने क़ुरती के साथ गावव विवाह भी कर विया है। नगर सोबीर राज को इस बात का भी विश्वास दिखाते हैं कि अविमारक सोबीर राज का ही पुर है अन्त्यज नहीं। यह रहस्य प्रकट होने पर जयवर्मा का विवाह कुरती की छोटी वहिन के साथ कर विया जाता है। इस प्रकार सभी के मनोरय पूर्ण हो जाते हैं।

भास का दूसरा कल्पनाथित रूपक 'प्रतिशा-यौग-धरायण' है।

इसकी कथा चार ग्रंकों में विभक्त है। प्रथम अंक में वत्सराज का इदिमान मत्रीयीगन्वरायण रगमन पर

बुद्धिमान् सत्रायाग्यरायग् रिकासी देता है। वार्तालाप के मध्य वह यह सुचित करता है कि स्यामी कल प्रात.

यह सुम्बित भरता है कि स्वामी कर प्रति.

गागवन को प्रस्थान करेंगे, यत. वह पत्र एवं रक्षा-सुत्र लेकर सालक
को उनकी रक्षायं गेजना चाहता है। इसी समय उदयन के साय
सदैव रहने वाला झंगरक्षक हंसक वहाँ आकर वताता है कि राजा
विना किसी को सुचना दिये ही प्रात्क काल नागवन मे चले गये। वहाँ
उन्हें नीता हाथी दिवायी दिया, जिस को परकड़ने के लिए बह
उस और चल पढ़े। उनके वहाँ चहुँचे ही उस क्रिम्स हाथी में से
फ्रोनेक शहतवारी योदा निकल पड़े जोकि प्रयोत ने छिपा रखे थे। उन
सीनको से उदयन युद्ध करते रहे, पर सीमित साथनों के कारण उन्हे
पराजित होना पड़ा। प्रयोत के सैनिकों द्वारा उन्हे वन्दी बना लिया
जाता है।

इस दुसान्त को मुनकर यौगण्वरायण बहुत शिन्तित होता है। वह यह समाचार राजमाता के पास भी नेज देता है जिससे वह भी खित होती है और यौगण्वरायण से प्रार्थना करती है कि वह प्रपत्ने बुद्धि-वैभव से किसी-न-किसी प्रकार उदयम को बम्बन-मुक्त करा दे। अपनी स्वामि-भिवत से प्रेरित होकर यौगण्यरायण उदयन को बम्बन-मुक्त कराने की हट प्रतिज्ञा करता है । वैययोग से इसी समय महिंग क्यास वहीं प्राप्त्वें वह है और यौगण्यरायण को एक ऐसा बस्व प्रवान करते हैं, जिससे वह अपना स्वरूप तिरोहित कर सा अपुर में स्वच्छाता प्रवीन विभाग करता हु या स्वयन स्वरूप तिरोहित कर सा अपुर में स्वच्छाता पूर्व कि विपरण करता हु या स्वयन प्रभीत्व प्रस्त हु या स्वयन स्वरूप तिरोहित कर सा अपुर में स्वच्छाता प्रवीन विभाग करता हु या स्वयन प्रभीत्व प्रस्त हु या स्वयन स्वयं प्रस्ति है।

हितीय कक में महासेन प्रचोत अपनी राजधानी में आ जाता है। वहाँ पर वह वासबदता के विवाह के विषय में अपने प्रमुख कर्म-चारी तथा राती के परामर्थ करहा है। वह विभिन्न स्थानों से आये हुए राजाओं के नाम तथा गुर्यों का परिचय देकर राती से। पूछना है कि इनमें से तुम किसको कन्या के योग्य पति समभत्ती हो। इसी समय कंपुकी बत्सराज की वन्दी बनाने का सुभ समाचार लाता है। राजा

मिद शासुवलयस्तो राहुणा चन्द्रमा इव मोचयामि न राजान गास्मि योगन्परायणः । प्रतिकायीगन्यरायसः, १.१६

कचुकी से कहता है कि राजकुमार के अनुरूप सन्कार कर उदयन को भीतर प्रवेश कराओ । उदयन के साथ उसकी घोषवती वीएगा भी लाई जाती है, जिसे प्रचोत अपनी पुत्री के पास भेज देता है। रानी सकेत रूप में राजा को यह बता देती है कि वासयदत्ता के लिए योग्य पति उदयन ही सिद्ध होगा।

तृतीय श्रम में वरसराज के तीनो मंत्री—यौगन्धरायण, वसत्तक ग्रीर रमण्यान्—वेश बदल कर उज्जियनी से रहते हुए वरसराज को बाधन-मुनत कराने का प्रयास करते हैं। इसी बीप उदयन वासवन्दना को देख लेता है और उस पर कामासन्तर हो जाता है। ऐसी स्थित में वह बसत्तक को सूचना देश है कि यह वासवदता को छोड़ कर वर्षीगृह से मुनत नहीं होना चाहता। राजा की इस इच्छा को वसत्तक योगन्धरावण से भी कह देता है। योगन्धरावण्या घोषवती बीणा, निर्णाणित हस्ती, एव वासवदता के साथ वरसराज का हरण कर को शासा हर हर कर कर की स्थान के साथ वरसराज का हरण कर को शासा है।

चतुर्धं प्रकं मे योगन्वरायस्य के चातुर्धं से नलागिरि हाथी जन्मत्त हो जाता है। उसे वहा में करने के तिए वस्तराज को बन्धन-पुक्त कर दिया जाता है। मुख्य स्थान हो कर वसराज का बन्धन सुक्त कर दिया जाता है। मुख्य स्थान होकर वहारे नाग जाता है। प्रयोत की सेना योगन्वरायस्य एव उसके सावियो पर प्राक्तमस्य करती है भीर उसे वन्दी बना जेती है। वन्दी के रूप मे योगन्वरायस्य करती है भीर उसे वन्दी बना जेती है। वन्दी कहा मे योगन्वरायस्य को सहमागार में स्थान दिया जाता है। वहीं उसके प्रयोत का प्रमास्य भरत्ररोहक मिलका है जो वस्तराज के इत्यों की नत्संना करता है। योगन्धरायस्य भरत्ररोहक के समस्त आक्षेपों का उत्तर है स्थान हो स्थान के समस्त साक्षेपों का उत्तर है स्थान हो स्थान हो स्थान हो स्थान है। स्थान स्थान से स्थान है। उत्तर हो स्थान हो स्थान है। स्थान देश से स्थान है स्थान है। उत्तर हो से स्थान है। स्थान है। स्थान से स्थान है। स्थान है। स्थान स्थान स्थान स्थान से साम से स्थान हो साम से स्थान है। स्थान से साम से साम से स्थान से साम से साम से साम से स्थान हो जाता है। साम स्थान से साम नाल्य से साम नाल्य से साम हो लाता है। साम स्थान से साम नाल्य से साम नाल्य से साम नाल्य से साम हो जाता है। साम से साम नाल्य साम हो जाता है।

घटना-कम की दृष्टि से 'स्वप्नवासवदत्त' 'प्रतिज्ञा-यीगन्यरायस् की कथा का उत्तरार्घ है । इस नाटक का स्वप्न सम्बन्धी दृश्य बडा ३. स्वप्नवासवदत्त

महत्त्वपूर्ण है, अत इसे 'स्वप्न' नाटक की सज्ञा भी दी जाती है। यह भास का सर्वोत्हृष्ट नाटक माना जाता है।

दसके प्रथम क्रक में तपोवन पा हस्य है। उसमें क्रमात्य
योगन्यरायए। सन्याती के बेस में तथा पानी बागवदता एक अवन्ती
महिला के ख्याचेश में दिखाई देती हैं। मनाव के राजा दर्शक की
माता भी उसी तपोवन में निवास कर रही है, अत उसके दर्शनाये
मगयेक्वर की वहिन प्यान्ती वहीं आती है। उसके देवकगए। उसके
लिए मार्ग को खालों कराने के खिए लोगों को मार्ग से हुट। रहे हैं।
तपोवन में भी इस प्रकार की अपवारएं। किया देख कर योगन्यरायण
एव वासवदत्ता को बेद होता है। प्यावती अभीष्ट स्थान पर पहुँव
कर राजमाता का बर्णन बरती है और अम्बर्धियों की दानादि से
सुद्ध करने की घोषणा परती है। तबनुद्धार केवल योगन्यरायण
यावना के लिए प्राणे बढता है और प्यानवती से वासवदत्ता को
न्यास-रूप में प्रपत्न राज अपना कोई उत्ताह नहीं दिखाति, पर अपनी
प्रतिज्ञा का पर्यों प्रपत्न को अपना कोई उत्ताह नहीं दिखाति, पर अपनी
प्रतिज्ञा का स्मरण वर वासवरत्ता को स्वीकार कर लेती है।
पीगन्यरायण की भाषी योजना के अनुसार प्यावती उदयन की रानी
होगी, अद वासवदत्ता को वह प्यावती के साथम में रखना उचित
समभता है।

इसी समय योगन्यरायण की योजना के धनुसार लाबाएक ग्राम से एन तपन्यी माता है जो एक दुष्टना की सूचना देता है। उत्यक्ष प्रमुसार उनत भ्राम में उदयन भ्रपनी पत्नी वासवदता तथा मनियों के साथ ठहरे हुए हैं। एक दिन जब वे विकार के लिए बन में जाते हैं तो पीछे से उनके निवासस्थान में भ्राम लग जाती हैं, जिससे वासवदता और योगन्यरायण जल मरते हैं। पत्नी भी मृत्यु न समाचार सुनकर उदयन शोव गुल होकर प्रास्महत्या के लिए उत्त हो जाते हैं। पत्नी के बिए उत्त हो जाते हैं। पत्नी के सिए उत्त हो जाते हैं। पत्नी के सिए उत्त हो जाते हैं। मिययों के बढ़ प्रयत्नों से वे ब्रास्महत्या करने से स्वते हैं।

दूसरे ध्रव के प्रारम्य में वासबदत्ता और पद्मावती कन्दुक-शीडा परती हैं। उनमें परस्पर हास-परिहास भी चलता है। इसी प्रसंग में वासपदत्ता पद्मावती के विवाह की चर्चा छेड़ देती है। श्रवसर पाकर दासी इस रहस्य की प्रकट करती है कि प्रधावती महासेत परिवार में स्थाना विवाह नहीं करना चाहती वह तो उदमन में प्रम करती है। दूसरो दासी आकर यह सुवना देती है कि प्रधावती के मार्ड ने उत्तक वाददान उदयन से कर दिया है। वासवदत्ता प्रकट रूप म इस विवय में अपनी उदासीनता दिवाती है। इसी समय एक बेटी आकर तुकना देती हैं कि उदयन प्रधावती का विवाहोत्सव आज ही समय नुकर नुकरा होती हैं कि स्थान प्रकावती हो। इसी समय एक किटी आकर तुकना देती हैं कि उदयन प्रधावती का विवाहोत्सव आज ही समय न होन का रहा है।

तृतीय सक के प्रारम्भ म नासवदत्ता चिन्ताकुल दिलाई देती हैं। उसे यह सक्च नहीं है कि उसके पति इसरी पत्नी का बरण करें। विश्व सक्च नहीं है कि उसके पति इसरी पत्नी का वरण करें। विश्व है भारता मुश्च के नाम भी उसे ही सींपा जाता है। वहे क्टर के साथ वह माला को गूब कर पूण करती ह। तत्पश्चात् उसे नींद ब्रा णाती है जियसे उसे सान्दवना मिलती है।

चतुष प्रन में राजकीय उपवन ना राय है जिसम पद्मावती, सासवस्ता और एक दाती दिखाई वेती हैं। कुछ समय परचात् उदयन और विद्युपन वराजन भी वहीं मा गति है। उदयन से पद्मावती ना विवाह हो जाने पर विद्युपक एका त में उदयन से पूछता है कि उद्दे पद्मावता और वाशवदता में से मौन प्रधिन प्रिय है? दराक उत्तर म बहु गुणों को हिन्द से पद्मावती को अध्य अताता है एर उत्तर म वह गुणों को हिन्द से पद्मावती को अध्य अताता है एर सासवदत्ता के प्रति भी अपना प्रयाद अनुराग प्रनट करता है। यह जान मर नता गुरुन नी और म छिती हुई वासवदत्ता नो प्रतासता होनी हैं। विद्युपन पद्मावती के प्रति राजा नो अधिक आइस्ट होने का आपह नरता है जिसस राजा नी घालों से अध्य दुसक पडन हैं। दुछ काल पदमाद राजा एक भीति उत्सव म सम्मित्तत होन के लिए वहाँ से पक्षा गता है।

पत्तम अव में पशावती िरारोव्यया संपीढित होती है। राजा और गमयदात की शे इसकी सूचना मिलती है। राजा प्रधावती के जप्यसार्य के अंधिय जन जाता है पर वापम आन पर रोग राव्या पर प्रपाप पर प्रदान के पाता । साली गम्या देशकर वह स्वय वहीं नट जाता है। बातवदत्ता भी बही था जाता है और राजा के स्वयन प्रवास की उत्तर के स्वयन प्रवास की उत्तर के साम प्रधान के स्वयन प्रवास की उत्तर के साम प्रधान के स्था के साम प्रधान के स्था के स्था के स्था के स्था के स्था के स्था के स्थ

जाती है और उनके हाय नहीं श्राती। इनसे राजा को यह विश्वास हो जाता है जि वामवदत्ता जीवित है। इसी समय प्रतिहारी के मन्देश ने अनुसार राजा आरुशि पर नटाई करने को तैयार होकर प्रस्थान कर देता है।

छुठे ग्रक में उदयन को नासबदत्ता की प्रिय बीएा भीपवती मिल जाती है, जिससे उसके मन में वासवदत्ता की स्मृति पून नवीन हो उठवी है। इसी समय उज्जियनी के राजा के वहाँ ने उदयन भौर बासबदत्ता के बिबाह का चित्र प्राप्त होता है। उसमे बासबदत्ता का चित्र देखनर पद्मावती कहती है कि एक ऐसी ही महिला मेरे पास है। जमे उसके भाई ने भेरे पास न्यास-रूप में रखा था। इस बात पर उदयन को विश्वास नहीं होता । इसी समय अपना न्यास वापस लेने के लिए यीगम्बरायरा भी का जाता है। वह राजा के समक्ष अपना सम्पूर्ण रहस्य प्रकट कर उसका जय-घोप करता है। वासवदत्ता भी वहीं या जाती है। इस प्रकार वामबदत्ता और उदयन पून पति पत्नी के रप मे मिल कर भ्रानन्द का अनुभव करते हैं।

'बारुदत्त' भास का अन्तिम नाटक माना जाता है। इसमे भाम को प्रीट नाट्यश्ला के दर्गन होते हैं। इसमें बाह्मए चारदत्त प्रीर गिएका वसन्तसेना की प्रेमकथा का वर्णन

४ चाख्यत

किया गया है। इसके प्रथम शक में मैंनेय (बिद्रपक) दिखाई देता है, जी चारुदत्त

के प्रतीत वैभव भीर वर्तमाने दारिदर्भ ना वर्रोन करता है। वह देव-वर्ति के लिए चारदत्त के पास पुष्प ले जा रहा है। चारदत्त की ध्रपनी

दिखता पर उनना दुख नहीं होता शितना विवन्नता में मुख मोड लेने वाले मित्रों के ग्रायरण पर। इमके परवात् गरिएका वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार एव विट दिलाये असे हैं। उनको बानो में ज्ञान होना है कि वे दोनो

ही अत्यत क्रूर प्रकृति के प्रस्प हैं। उन दोनों से पिण्ड छडाने के

दारिद्रधात् पुरपस्य वा घवजनी बानवे न सन्तिहन

सत्व हास्यभुपैति श्रीलशशिन वान्ति परिम्नायते । निर्वेरा विमुनीभवन्ति सहद स्पीता भवन्त्वापद

पाप नमं न यन परैरपि कन तसन्य सम्बाध्यने ।

— चारदत्त. १६

लिए वसन्तसेना पास ही चारूदक्त के मकान मे छिप जाती है। चारुदक्त के मकान से रदनिका और विदूषक जब देवबिल के लिए बाहुर क्ले जाते हैं तो वसन्तसेना चारुदत्त के घर मे प्रवेश करती है। यह धपना हार चारुदक्त के महीं न्यारा रूप मे रख देती है। फिर विदूषक जसको पर पहुँचाने जाता है।

द्वितीय छम मे वसन्तमेना श्रीर बेटी का बार्तालाग होता है जिसम बहु पहले चारदत्त के प्रति छपना प्रमुराग प्रवट करती है। इसी समय नवाहर, जो जुझारी भी था, बसन्तपेना के घर में प्रवेश करता है और प्रपत्ते को पाटिलयुद्ध का निवासी बताता है। बहु विजेता जुझारी के भय से अपनी रहा। की याचना करता है और छफ़्ते को चारदत्त का पुरागा मुख्य बताता है। वसन्तसेना विजेता जुझारी को प्रभीष्ट यन देवन उससे जसका पिछा छुझा वेती है। इसी समय केटी बसात्सेना यो चारदत्त की उदारता की एक घटना सुनाती है जिससे जावदत्त ने हाथी से एक व्यक्ति की प्राण्याद्वा करने

सुतीय छन चारवत्त में घर में हत्य से प्रारम्भ होता है। राप्ति होन पर चारवत्त सोंगे से पूर्व वसत्तरेता वा सुवर्णहार राष्ट्रि में रक्षा मरते में निश्च विद्रूपन मो दे देता है। सुवर्ण भाष्ठ मो तेणर यह प्रमादयस सो जाता है। क्र्यंशांत्रि में परचात्त सठजत्य नामम चौर सँध तगामर चारवत्त में घर म धुम जाता है। चारों और चन मी तलारा गरमें पर भी उसे दिव चारवत्त में घर में मुद्द मही मिलता। इतने में उसे स्वय ही बटउटाते हुए विद्रूपन मी प्रावाज सुनायी पटतो है, जा मारदल मो गृह रहा है मि खपना सुनर्ण भाष्ठ ले थो। यह मनेत पापर मज्जान विद्रूपन में पास पहुँच जाता है और मुवर्णमाण्ड मो पूपनाण जठा नर यहाँसे चम्पत हो जाता है।

प्राप्त पास होन पर घोरी हो जाने का पता समता है । बिद्राप्त प्रमादयन यह देता है कि उसने मुक्तमं-भाष्ट चारदत को सौटा दिया है। बाद में उन विद्यास हो जाना है कि वस्तुत चोरी हो गई है।

१ नतारि मुनवृत्रणीचिता यामरणस्यानानि विलोक्यांकुटनानीयापि पुनर सम्प अन्य देवनुतानस्य दीर्घ नि स्वर्यशायान् म विभव इति कृत्या परिन्नरस्य यामारम प्रवित्त ।—वारदक्त, सक् २, ५० ७०

चाहदत्त को वसन्तसेना का हार लौडाने की विन्ता हो जाती है। पित को चिन्ताकुल देखकर चाहदत्त की पत्नी अपनी बहुमूल्य माला उसको देदेती है जिससे वह वसन्तसेना के न्यासभार से मुक्त हो सके। चाहदत्त विदूषक ढारा उस भावा को वसन्तरीना के पास भेजता है।

चतुर्य अस में बसन्तरोत्ता के पास उसकी माता की माता सुनाने एक चेटी जाती है। उसकी मां कहलाती है कि अलंकृत ही कर राजरयात्तक के पास जाओ, किन्तु वह मना कर देती है। उसकी समय सजजलक भी वहां आ जाता है। वह यसन्तरेता की चेटी मतनिया का प्रेमी है। वह मदिनका को चारदत्त के घर से चुराया हुमा हार दिखाता है, जिसे घर पहिचान जाती है और उसे कहती है कि यह हार बसन्तरीता को दे दो और कह यो कि यह बाचरत्त ने भेजा है। इसी समय बिद्धक भी अमूल्य हार किनर आता है और वसन्तरोत्ता से कहता है कि यह सावस्तरों है कि यह जावर के कहता है कि चार सावस्तरों होता समय विद्धक भी अमूल्य हार किनर आता है और वसन्तरोत्ता से कहता है कि चारदत्त तुम्हार हार को जूप में हार चुके हैं, अतः उसके बदले यह अमूल्य हार स्वीकार कर सो। विद्युपक के अति पर मदिनका के कथतानुसार सज्जलक वसन्तरीता को हार जीटा देता है। इससे असल होकर वसन्तरीता मतिका को स्वयं असल्व होता है। इससे असल होकर वसन्तरीता को स्वयं असल्व के ता स्वयं कर सज्जलक के साथ विदा कर देती है।

इन सब बातों को देख कर वसन्तरों ना की आइन्स होता है। यह सोनती है कि यह सब कुछ स्वयन है या यथाएँ। नाइदत्त के स्वयहारों को देख कर वह उसके प्रति और भी प्रधिक धनुरक्त हो जाती है तथा उसके घर जाने की उत्कण्ठा व्यवत करती है। यही नाटक समाप्त हो जाता है।

न्समाप्त हा जाता हू। स्रालोच्य नाटकों में भास के माटकों के पृथ्वात् कालिदास के

नाटक थाते हैं 1 कालियास ने 'फ्राभियान-फालियास ने नाटक शाकुन्तल', 'विक्रमोर्वशीय' एव 'माल-विकारिनिमन्न' नाटकों की रचना की ।

इनका सक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत क्या जा रहा है। शाकुन्तन कालिबास की ग्रमरकृति हैं। इसमें राजा दुप्यन्त और कण्य ऋषि की पालिता पुत्री

शर कण्य ऋषि का पालता पुना १. भ्रभितानशाकुन्तल 'शकुन्तला' के प्रेम का निरूपसा निया गया है। यह नाटक सात धकों में निभक्त

किया गया है।

प्रथम धक में राजा बुय्यत रख पर बैठ कर मृगया के लिए वन की घोर जाता है। यह एक भूग का अनुगमन करता हुआ कण्य कृषि में आवा है। यहा एक भूग का अनुगमन करता हुआ कण्य कृषि में आवा के कि यह आश्रम का मृग है अत बक्य है। राजा तपस्वी की बात मान जाता है। तपस्वी की प्राथमा पर राजा धाशम में जाकर प्रतिथि सत्कार स्वीकार करता है। कण्य व्हिथ सोमतीय गये हुए है अत सकुनका ही राजा का खाविष रात्कार करती है। उसके सौन्य को देवकर राजा उस पर आसकत हो जाता है कीर उससे विवाह करने का निस्वय कर लेता है।

दूसरे भ्रक में दुष्यन्त की कामासकत दवा ना वर्णन किया गया है। ऐसी स्थिति में राजा विकार खेलने भी नहीं जाता ग्रीर सदैव सक्त तका की स्मरण, करता रहता है। वह विदुष्य से कोई ऐता बहाना ढूढने के लिए कहता है जिससे यह अधिक समय तक तपोवन में कल एके। देवयोग से उसी समय वो तपस्पी कुमार प्रांकर राजा है प्रांक्ष माया गया करने के लिए कुछ समय ग्राथम को रक्ता करने के लिए कुछ समय ग्राथम में रक्ता करने के लिए कुछ समय ग्राथम में ब्रीर करने के लिए कुछ समय ग्राथम में किया करने के लिए कुछ समय ग्राथम में ब्रीर इस्पात की माता उसी राजधानी में जुलाने के लिए दूत राजसी है। प्रांची वीच दुष्पात की माता उसी राजधानी में जुलाने के लिए दूत राजसी है।

तुसीय झक मे यकुताला भी राजा वर झालक दिलाई देती है। कामामिक्त के कारएग वह अस्वस्थ हो जाती है। सिखमा उसका वीतलोपवार करती है। इसी अन्तराल में राजा भी वहां आ जाता है और लताओं की बोट में दिय कर वह जाता है। यकुतला अपनी सिखसों से राजा के अति अपनी अनुपतित अविधार गरती है। इसी बीच राजा वहां आकर शकुतला के अति अपनी प्रमुख को अकर करता वहां आकर शकुतला के अति अपनी प्रमुख को अकर करता वहां आकर शकुतला के प्रति अपनी पाध्य विवाह करने कर अस्तान रखता है जिसे शकुतला के सांसीलाथ के बीच हो। गीवारी करती। इच्यात और सक्तुतला के सांसीलाथ के बीच हो। गीवारी

कपमित्रं सा नव्यक्तिता असास्त्रवर्गी शत्तु सत्रभवास् काश्यपः य इमामाश्रमधर्मे निवुत्ते ।—श्रीभ० शा० श्रकः १ पृ० १२

प्रवेश करती है ग्रीर शकुन्तला को ले जाती है। राजा भी राक्षसो से श्राथम की रक्षा करने के लिए चला जाता है।

चतुर्य प्रक के विष्कामक भे राजा का शक्नुतला से गाथवं विवाह हो जाता है। राजधानी को प्रस्थान वरते समय राजा शक्नुतला को चुला लेने के लिए बीध ही दूत भेज देने का प्राश्वासन देता है और पहचान वे लिए अपनी नामाकित मेंगूठी भी दे जाता है। इसके परचात् वंडी रहती है। इसके परचात् वंडी रहती है। इसके परचात् वंडी रहती है। प्रवस्थात दुर्वासा ऋषि धाय्यम म प्रवेश करते हैं। प्रिय-वियोग से विकल शक्नुत्तला जनका आविष्य नहीं कर वाती। इससे शुरूष दुर्वासा जसका शाप देत हैं कि तूने जिसके चिन्तन में मेरी उपेशा की है, वह मुक्ते भूल जायेगा। शक्नुत्तला की सिख्यां दुर्वासा संप्रधान करती हैं कि वह हुप्ता अपने शाप को वापिस से से। प्रधिक प्रमृताम करती हैं कि वह हुप्ता से प्रधान करती हैं कि वह हुप्ता सर वह है ते हैं कि कोई परिचय विह्न विज्ञान पर वह शक्नुतला को पहचान को सहस्था। सिख्यां इस शाप की वान राष्ट्रकला को पहचान लेगा। सिख्यां इस शाप की वान राष्ट्रकला से नहीं कहती।

हुस घटना के पहचात् कण्व तीर्ण यात्रा से आश्रम की लीटते हैं। उनकी आवात्रकाएंगे द्वारा कात हाता है कि शहुन्तका का गावर्ष विवाह उप्पत के साथ हो गया है और वह गर्भक्ती भी है। वह दम विवाह का राहुएँ अनुभोदन कर राकुन्तका को पतिगृह भेजने की तीयारी करते हैं। इस बीच राजा की घोर से गहुन्तका का की सुवादा नहीं पाता। वह इस घटना को भूक जाता है। यहुन्तका की विदा के समय कताबुदा पुष्पा क आश्रूपरा प्रदान करते हैं। शकुन्तका नन के लता-बुकी, मुगा आदि से विदाई तेती है। जाते समय कण्य इसे सुगृहिशी के कराज्या की दिक्का देते हैं। शुन्तका गीतमो और देते तपहिंदयों के साथ पतिगृह को प्रस्थान करती है।

१ विभित्तमारी यमन यमानसा सपोषन वरिस न मामुपस्थितम् । स्मरिप्यनि त्वा न सं वीधिकोऽभि सन् क्या प्रमतः प्रथम क्रनानिव । धनि । पा । ४१

२ मुद्रपुरव गुरुन्कुरु प्रियससीवृत्ति सपत्नीजने पत्युविष्रहृताऽपि रोषणातया मा स्म प्रतीप गम ।

भूमिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्यप्यनुस्तिकनी

यान्त्येव गृहिस्मीपद युवतयो वामा कुलस्याधय ॥ —-व्यमि० सा०, ४१६ पचम प्रक में शकुरतला अपने पतिग्रह में पहुँचती है। दुप्पन्त उसके साथ अपने गाधवं विवाह की वात विल्कृल भूल जाता है। शाङ्गंटब तपस्वी राजा को उथ घटना का स्मरण दिलाता है, पर वह विवाह की बात को सर्वथा अतस्य बताता है। शकुरतला राजा की दी हुई अँगूठी दिया कर उसको घटना की सत्यता का विश्वास दिलाने की सोचती है, पर वह अपूंठी रास्ते में ही कहीं गिर चुकी है। अपने से पुरोहित पुत्रवन्म तक अकुनत्वा को अपने घर में रखने का प्रस्ताव करते हैं। इस अवस्या में तकनुत्वा को अपने घर में रखने का प्रस्ताव करते हैं। इस अवस्या में तकनुत्वा को छोड़ कर गौतमी प्रादि सभी लोग चले जाते हैं। इसी समय एक अस्परा आकर सकुनतला को आकाश से उड़ा ले जाती है, जिसे देख कर सभी को आहक्ष्म होता है। युप्पन्त भी खिल्म हो जाता है।

छुठै प्रक में एक वीवर राजा की ग्रेंगूरी बेचता हुआ पकडा जाता है। यह ग्रेंगूरी उसे सार्वासीय से पकडी हुई एक मछली के पेट में मिली थी। राज्य के रक्षक कीवर को बोर समफ कर उसे राजा के पास के जाते हैं। श्रेंगूरी देखकर राजा को सकुत्तला के साथ विवाह को बात स्मर्र्ण हो आसी है। वह पीचर को पुरस्तार देकर विवाक र देता है और रवस सकुत्तला के बियोग में हु खी रही लगात है। इसी अवसर पर वहां राजा इन्द्र के सारिष्य मातिल का प्राप्तमन होता है। वह राजा को इन्द्र का नाव के लिए इन्द्र ने उन्हें सुरुत्त खुलाया है। तबनुसार राजा रथ में बैठकर स्वर्ग के लिए प्रस्तान करता है। वतनुसार राजा रथ में बैठकर स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है।

सप्तम अक में राजा दानवों पर विजय प्राप्त कर स्वर्ग में बापिस लीटता हैं। मार्ग में बहु मारीच ऋषि के आध्म में रक्तता है। बहुं वह एक ऐसे वालक को देखता है, जो सिंह-साबक के दौत मिनने का प्रमुंत कर रहा है। राजा उसे देत कर उससे पुत्रवह प्रेम करने तमता है। वालिताप के प्रसुग में उसे तपस्विमियों से यह भी कात होता है कि यह वालक पुरुवती है और उसकी गाता का लाग रक्कुत्वता है। उसकी माता पिल-पिरस्थका है। इस मुकार की बासो से पुष्पत्त को विश्वास हो जाता है कि वह वालक उसी का पुत्र है। पुष्पत्त अपने अपराय के लिए धक्कुत्वता से क्षायाचाना करता है। तप्तरवादों से योगों मारीच कृषि के दर्शनामं आते है। वनका प्राप्ती-र्याद सेकर वे दोनों राजधानी में खाते हैं और सुखपूर्वक रहने लगते हैं। नाटक की समाप्ति भरत-वाक्य के साथ होती है।

इम रूपक मे राजा झन्निसित्र तथा मालविना के प्रेम का चित्रण किया गया है। इसकी क्या-बस्तू

निजण किया गया है। इसको नया-बस्तु २ मालबिकाग्निमिज पाच ब्रको मे विभक्त हुई है। प्रथम ब्रक का प्रारम्भ विष्कर्भक से होता

है जिस में इग बात का पता चलता है कि महादेवी धारिएी माल-विवा को राजा की इंग्टि से बचाना चाहती है। उनको भय है कि कही राजा की इंग्टि मालविका पर पढ गई तो वह इस पर अनुस्तत न हो जाम । सपोगवता एक दिन राजा भालविका के चित्र को देख तेते हैं और कुमारी वसुन्वमी से उन्हें इस बान का सकेत मिल जाता है कि उसका नाम मालविका है। बही पर नाज्याचार्य गएवशत हारा इस बात का पता चलता है कि धारिएों ने मालविका को सगीत व हुएय की शिक्षा देने के लिए रख लिया है।

हम विष्क्रभन के बाद मच पर राजा अमिनिमन दिखाई देते हैं। राजा बिद्दान की प्रतोक्षा कर हो रहे थे कि वह मनेग करता है। बह मानिक्ष्म को राजा के समक्ष उपस्थित कराने के लिए अन्त पुर के नाट्यायार्थ गण्यास और हरत्त के बीच भगवा करा देता है। फलत के दोनो अपने को एक दूसरे से थेष्ठ बताते हैं और इसी बात को लेकर भगवते हुए राजा के समक्ष उपस्थित होते हैं। इस बिबाद का निर्णय करने के लिए भगवती कौसिकी को युनाया जाता है। वह यह प्रस्ताव रगती हैं कि दोनो गाट्यानांध अपने विष्या का प्रायोगिक प्रदर्शन प्रस्तुत करें, जिस से उनकी श्रेष्टना का निर्णय किया जा सके। धारिएण दग बात को टालगा बाहती है, क्योंकि बह सोचती है कि स्म प्रदर्शन में यदि राजा मानिक्षना के प्रति कही आकृष्ट हो गये तो ससरा महरूव यह जायेगा।

प्रभाग ने पर पार्च पर कार्याचन के बात कहा कि हरू है। यह पर पार्च करना महत्त्व पर जायेगा ।

दूसरे कक मे गएएदात की कुशल शिष्या मालिक्का क्रपना नृत्य
प्रस्तुत करती है। उनके प्रदर्शन की उल्क्रण्टता को देलकर कौशियी
प्रपना निर्णय गएएदाम के पक्ष में देती हैं। उचर पारिएगी मालिक्का
के सीन्यर्थ पर
मुग्य हो जाता है।

सीसरे अन में इस बात का सकेत मिलता है कि राजा और मालविका दोनों ही एक दूसरे पर अनुरक्त हैं। मालविका की ससी वकुलाविकका दोनो को मिलाने का प्रयत्न करती है। इसी बीच महा-रानी घारिएों के भैर में चोट घा जाती है। अत अशोक-दोहर की पूर्ति के लिए रवय उद्यान में न जाकर अपने स्थान पर मालविका को भेज देती है। इस प्रकार राजा को मालविका से मिलने का अवसर प्राप्त हो जाता है। गालविका की उपरिचित दशवती को प्रच्छी नहीं समतो, ग्रत वह राजा से कष्ट होकर वहाँ ये चली जाती हैं।

चौथे श्रक में घारिणी मालविका और उसकी सली यजुला-विलका को प्रपना यादु समक्र कर उन्हें बन्दी के रूप में तहलाने में बन्द करवा देती है। मालविका को राजा से मिलाने के लिए प्रयत्न-सील विदूरण को इस बात से बडी चिन्ता होती है। मालविका को मुन्त कराने के लिए वह एक गुक्ति सोच निकालता है। वह सर्प दश का यहाना कर विग-भी वन के लिए अगवती थारिणी को सर्पमुद्राकित संगुठी प्राप्त कर लेता है और उनकी सहागता से तहलाने में प्रवेश कर मालविका और वक्ताविलका को बढ़ों से निकाल लाता है।

कर मालविका और वकुलावितका को वहाँ से निकाल लाता है। पचम श्रक में विदर्भ देश से दो सेविकाएँ श्राती है जोकि माल-

पत्रम अक म विदम्न दश से दा सावकार आता है जाकि माल-विका और भागवरी कीयिनों को पहलान लेती है। माललिका विदम्ने के राजपुत्र माध्यसेन की बहित है और फीशिकी वहाँ के मत्री की भिगत। । यह जानकर राजा की और भी मसन्तता होती है। इसके पश्चात् भारिशी राजा को मालविका से विवाह करने की स्वीकृति वे देती है, जिससे उन बोनो का पाशिग्रहण निविंदन सम्पना हो जाता है।

यही भरत-वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

यहा नरत-वाक्य क साथ गाटक समाप्त हा जाता हा कालिदास का तीमरा रूपक विक्रमोर्थशीय है। इसमें ऋग्वेद

तथा शतपथ ब्राह्माए के माख्यान के विक्रमोर्वेजीय ग्राधार पर पुरूरवा तथा उर्वेजी के प्रेमा-

रयान का चित्रएा किया गया है। मालविकान्तिमित्र की तरह इसके कथानक को भी पाँच बको मे विभक्त किया गया है।

प्रथम अक के बन्तगंत उर्वशी हिमाचल-प्रदेश में शिव की पूजा के

शठ ऋविश्वसनीयहृदयोऽसि । माल०, ग्रक ३, ५० ३११

उनकी करुएाभरी आवाज पुरूरवा के कानों मे पहुँचती है और वह

लिए जाती है। वहां से लौटते समय उसको दानव पकड लेते है। यह

89

वहाँ ग्राकर ग्रम्सराग्रो से उनके स्दन का कारए। पूछता है। कारए। ज्ञात होने पर वह दानवी से युद्ध कर उर्वशी की रक्षा करता है। इससे उर्वशी पुरूरवा के प्रति आकृष्ट हो जाती है और यह भी उर्वशी के सौन्दर्य को देख कर उस पर मुख्य हो जाता है। दितीय अक मे उबंधी के प्रति पुरुषा राजा की अनुरक्ति का विशेष परिचय मिलता है। पुरुरवा धपने हृदय की प्रेम-दशा का वर्णन बिद्रपक से करता है। इसी बीच अपनी सखी के साथ उर्वशी

भी वहाँ मा जाती है और एकान्त में छिप कर राजा की प्रेम-कथा को सुनती है। वह एक भोज-पत्र पर अपना प्रएाय-सदेश मिल कर राजा के पास पहुँचा देती है। यह पत्र अकस्मात् श्रीशीनरी की मिल जाता है जिससे यह राजा से रुष्ट हो जाती है। रानी को प्रसन्त करने के लिए राजा अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करता है।

तीसरे अक में सूचना मिलती है कि उर्वशी ने भरत मुनि द्वारा प्रदक्षित नाटक में लक्ष्मी का अभिनय किया है और उनमे उसने भूल से एक स्थल पर पूछपोत्तम के स्थान पर पुरूरवाका नाम ले लिया है। इससे मूनि ने उसे शाप दे विया है। शाप के उपरान्त इन्द्र कुपा

कर उर्देशी को प्रपने पुत का मुँह न देखने तक राजा पुरूरता के पास रहने की प्राज्ञा दे देते हैं। इसी बीच श्रीशीनरी भी राजा पर प्रसन्त हो जाती है और उसे उर्वशी से प्रेम करने की छट दे देती है।

है कि वह पुरुरवा के पुत्र आयुग का वासा है। राजा की पुत्रोत्पत्ति का पता तक व या, क्यों कि उर्वशों ने उसे ज्यवन के आप्राम में इस-लिए छिपा दिया था कि राजा उसका गुख जन वस सके तथा दोनों प्रेमी वियुक्त न हो। उर्वशों को इस घटना का पता चलने पर दुख होता है। दसी बीच नारद आकर बताते है कि देव दानवों के गुढ़ में इन्द्र को पुत्र-रवा की सहायता अपेशित है तथा इसके फलस्वस्य जर्वशी उम्र भर राजा पुरुरका के साथ रहेगी। यही भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

स्रालोच्य नाटको मे कालिबात के पश्चात् शूब्रक के नाटक स्राते हैं। शूदक का एकनाय क्ष्मक 'मुज्यकटिक' 'पुज्यकटिक' उपलब्ध है जो उनकी स्रमस्कीर्ति का स्थायी स्टान्स है। इसकी

कथा-यस्त भी वस अशो में विभाजित किया गया है।

प्रथम श्रम से शकार, बिट बीर बेट गिएका बसन्तसेना का पीछा बारते हुए विकार शेत है। मूर्ण शकार के कहने पर बसन्तसेना की जात होता है कि वाम से ही बावरत का पर है। शकार श्रावि के सम्मान के जात होता है कि वाम से ही बावरत का पर है। शकार श्रावि के सम्मान के कि स्वामी रेक्ष करते के लिए वह बाउरत के पर से प्रवेश करती है। शकार भी अपने के स्वामी करते पीड़े पीड़े बहा जाना बाहता है पर विद्वयक ऐसे प्रवेश नहीं करने दें दानां दें पत की धमको देता है। बात है वाद विवाद वाद वाद का की धमको देता है। वाद विवाद करते के परवात वाद की धमको देता है। वाद विवाद करने के परवात वाद की धमको है। हो हो है। इसके परवात वाद की धमको होता है। पर जाने से पुर्व बसन्तसेना अपने आप्तिपुष्ट का करता की धात बीत है। पर जाने से पुर्व बसन्तसेना अपने आप्तिपुष्ट का वाद की शात प्रवास करने के सी प्रवास की सी है। बारवत आप्तुष्टा की रहा का नाम दिन म वर्षमान में श्रीर रहा ना विद्वप्त की सीए देवा है।

दूसरे घन मे चूतकर-सवाहल का बुतान्त प्रमुख है। परिस्थितियां के भायद से सवाहल पक्का जुआरों वन आता है। जुए म हार कर वह एम पून्य देवालय में छिए जाता है। माधुर और चूतकर उसे वही पक्क लेते हैं और उससे घन मांगते हैं। वह दर्षुरण भी महायता से घहीं से निकल भागता है और सक्तक्तिमा की दारण म चला जाता है। बसत्ततीना उसे भ्रमना हस्लाभरण स्टर ऋण मुक्त करा देती है। इसी समस मण्यूरण प्रवेश नरता है। यह वसत्ततीना पो वताता है। प्रात काल उसका हाथी उन्मत हो गया था और एक नियुक्त को ग्रुचलना ही चाहता था कि वर्णपूरक ने उसे बचा लिया। इससे प्रसन्न होकर चाहरत उसे अपना दुशाला देते है। वसन्तसेना उससे दुशाले को लेकर ओढ़ लेती है।

तृतीय अक में चारदत्त का चेट मच पर दिखाई देता है जो स्त सुपता देता है वि अपंताित का समय है, पर चारदत्त सभी घर नहीं लीटे हैं। कुछ समय परचाल रेकिस ने चर से सगीत तुन कर चारदत्त घोर विद्रयक घर लीटते हैं। घर जाकर वे सो जाते हैं। राति मैं सुवर्ण-भाण्ड की रक्षा का भार विद्रयक पर है, मत वह भी भाण्ड को तेकर सो जाता है।

रानि में शर्विलक नामक थोर सेंच लगा कर चारुदत्त के घर में प्रवेश करता है और निद्रापण्न विदूषण के पास से सुबर्स-भाण्ड लेकर चला जाता है।

प्रात काल होते ही चोरी हो जाने का पता लगना है मीर नाइवत को बग़लकोना के न्याबीकृत बामूपएमा की चीरी हो जाने से बडी पिन्ता होती है। यह विद्राय के द्वारा घपनी पतनी की रतनमाला नसलोना के पास भेज कर उसके न्यास भार से मुक्त होता है।

चतुर्थं श्रक में शविलक चोरी विया हुया धलकार लेकर यसन्त-सेना के पास पहुँचता है। वसन्तरेना को श्रलकार देकर यह श्रमनी प्रेमिक्स <u>प्रतिक्रा की</u> वसन्तरोना के शासी-कर्म से मुक्त कराना चाहता है है। <u>एतर्किना</u> उस हार की पहचान जाती है और शक्तिक को उसे मसन्तरोना को सीटा देने को कहती है। तबनुसार वह वसन्तरोना को जाकर यह कहता है कि शाक्ता यह हार चाहदत्त ने भेजा है<sup>1</sup>।

उपर विद्यक भी रत्नमाता लेकर वसन्तसेना के पार्र धाता है ग्रीर उसे वसन्तसेना को देकर चला जाता है।

पचम श्रक में वसन्तरोंना चाहदत्त के घर जाती है। वसन्तरोंना बी नेटी विदूषक से रत्नावली का मूल्य पूछती है और कहती है कि उसने बदसे यह सुवर्ण-भाण्ड से जीजिये। यह देखकर सब चक्ति हो

तार्यवाहस्त्वा विज्ञापयिति—जजरत्वाद् गृहस्य द्वरस्यमिद माण्डम्, तद् गृह्यताम् ।
 —मृण्डल, प्रक ४, पृ० २२०

जाने हैं। चेटी सुवर्ण-भाण्ड की भ्राप्ति का सारा बृतान्त विदूपक को यता देती है। विदूषक द्वारा यह बृत्तान्त चारुवत्त को भी ज्ञात हो जाता है।

दहे यक में येटी यसन्तरेता को बताती है कि चाहदत पुप-करण्डक ओगोंचान गये हैं और उस (वसन्तरेता) को भी वहाँ बुता गये हैं। यसन्तरेता चाहदत के पास जाने के लिए मम से राकार की गाडी में बेठ जाती है। इधर मार्थक राजा पासक के कारागृह से भाग कर चाहदत की गाडी भे बेठ जाता है। मार्थ में उसे दो सिपाही मिलते हैं जीकि उसे रखा का चचन वेते हैं।

सप्तम झक में झायंक को गांडी उद्यान में पहुँचती है। विदूषक वसन्तिमा को देखने के लिए गांडों का पर्दा उठाता है। यह उसमें वसन्तिमा के स्पान पर सायंक को देखकर सादक्य करता है। सायंक भाददत से दारण मौगता है। भाक्दत उस समय-दान देकर उसके सम्मन मटवा देता है।

आठर्षे घण से बनन्तमेना पुष्पकरण्यक वजान से पहुँचती है। वहाँ चते चायरत्त के स्थान पर दुष्ट धकार मिनता है। बहु उत्तते प्रण्य-पाचना करता है। वसन्तमेना उसकी प्राप्ता को अस्वीचर्र कर देती है। इस पर वह उसका मांवा मोटता है, जिससे वह सूँच्यित होचर गिर जाती है। उसकी सूर्च्यन देसकर भिस्नु (सवाहक) उत्ते विहार से के जावर विश्वास कराता है।

ननम प्रत में रानार न्यायानय में जान र यह मूकता देता है वि बारदान ने वरन्तरीता को मार हाला है। न्यायात्वय के अधिकारी बारतिया की हत्या की जीन के लिए वीरव को घटनास्थ्य पर भेजने हैं। वहीं से प्राक्त वह निशी स्त्री की हत्या की पुष्टि परता है। इसी बीन वसन्तर्मना के आभूपण लेकर विद्युपक वहीं था जाता है। उसना रानार से भगवा हो जाता है, जिसमें उसकी वगन से वमन्तमेना ने प्राभूपण गिर पटते हैं। इस प्रमाण के आधार पर न्यायाधिकारी नारदात की प्राथ्टण्ड भी धाजा देते हैं।

दराम मन में चाण्डाल लोग चारदत्त को वयन्त्यत पर छे जाते हैं। चारदत्त के प्रारादण्ड की माजा से नगर में चारों मोर करसापूर्ण बातावरण छा जाता है। सभी लोग इस दण्ड को मनुजित बताते हैं। इसी समय यह सूचना मिलती है कि आर्येक पालक को मार कर स्वयं राजा बन गया है । आर्येक चाहरत का परम बित्र है अतः वह चाह-दत्त को प्रायादण्ड से मुक्त कर देता है और दुष्ट शकार को फांसी का आदेश देता है। चारदत्त राजा को कह कर शकार को भी क्षमा दिला देता है। प्रान्त में चाहदत्त के साथ वसन्तसेना का विवाह सम्मन्न होता है ।

भास, कालिदास और शुद्रक के उपर्युक्त रपकों में सामान्य-रप से तत्कालोन समाज के विभिन्न रुपों का विश्रण हुआ है जिसके प्राधार पर उम समय की सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। नाटकों में समाज-विश्रण के विविध्य रुपों के प्रन्तात परि-वार पर ही विचार किया जाय तो जात होता है कि तत्कालीन समाज में एक और अनुर वंभव से सम्पन्न राज-गरिवार या तो दूसरी और अनेक अमावों से अस्त सामान्य परिवार। राज-गरिवार का आवास, वेदाभूया, त्यान-यान, मनोरंजन आदि मभी विधिष्ट प्रकार के होते थे। सामान्य परिवारों के रहन-चहुक का स्तर सामान्य कोटि का या। इन गरिवारों में संयुक्त युद्धम्ब-प्रणाली प्रचलित थी।

समाज में प्रचलित वर्गों-व्यवस्था एवं धनेक सामाजिक वर्गों से भी उस काल के ममाज की स्थिति का गरिचय मिलता है। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार समाज बाह्यण, क्षत्रिय, बेश्य तथा शूद्र—चार वर्गों में विमक्त था। इन वर्गों के धार्तिरक्त समाज में सामाग्यतः अनेक वर्ग-भेदों की सत्ता थी। राजा-प्रजा, गृहस्य-संन्यासी, धनी-निर्मन, गृह-शिष्य, स्वामी-वैवक ब्रादि ऐसे ही वर्ग-भेद थे।

नारी भी समाज का एक प्रमुख ग्रम थी। माता, प्रेयसी, परती, गृहिएरी यादि के यिविच रूपों में वह भ्रपने कत्तंच्य का सम्यक् निर्वाह करती थी। पार्मिक कार्यों के सम्मादन में भी उसका विरोप महत्त्व

श्रहिए। स्वाद क त्यांचव रूपा में वह अपन कराव्य का सम्यक् । तवाह करती यी। प्राप्तिक कार्यों के सम्पादन में भी उसका निरोध महस्व या, इसीलिए, तसे महर्ध्यायको, धर्मवल्यों बादि नामों से महिता किया जाता था। समाज में विश्ववाधों का सम्मान नहीं था। पति

श्रापंत्रेणाँगवृक्तन नुलं मानं च रक्षता । प्रमुक्यज्ञवाटस्थो दुरात्मा पालको क्ष्त ।

मृष्छ० १०-५१

२. भाग ! असत्तरेते ! परितृष्टो राजा अवती वधूनाव्देनानुगृह्णाति । मृच्छ०, अस १०, ए० ५६८

की मृत्यु के पश्चात यद्यपि उनका जीवन त्याग और तपोमय होता या पर समाज उहे उपेक्षा की दृष्टि से ही देखता था।

धालोच्य नाटको में तःकाखीन समाज के रहत सहत का भी चित्रसा मिलता है। राजा तथा अन्य धनी व्यक्ति ऋतु के अपुत्रस्त प्रविधाओं ने परिपूर्ण धावाध-मुहों में पहिले थे। जनका भीजन भी विविध प्रकार के सुस्वाहु और पीछिड़ पदार्थों से मुक्त होता था। धनी कोग प्राप्त आमियभोजों थे। इनके विपरीत सामान्य लोग साधारस्य कोटि के घरों ये रहते थे और जनका भोजन सादा और निरामिय होता था।

समाज में जिक्षा का महत्त्व भी कम नहीं था। गुरुकुल जिक्षा केन्द्र से, जिनमें रह कर विद्यार्थी मनेक प्रकार की विकार प्रारत करते से। विद्यार्थियों का जीवन सादा भीर स्वावनमंत्री होता था। सेंसे तो बालन की मनौपवारिक शिक्षा माता पिता के उपदेशों के रूप में घर से ही प्रारम्भ हो जाती थी, पर अपवस्थित शिक्षा गुरुकुलों से ही से जाती थी।

यामिक दृष्टि से समाज में प्रमुखत आह्मण धर्म, बैच्नाय धर्म त्या बीढ धर्म का प्रचार था। समाज ने स्रनेक दावामिक मापताएँ प्रचलित थी जिनने बहा, जगत् जीव कर्म पुनर्जन्म स्नादि के सिद्धात प्रमुख थे।

समाज में प्रचलित कृषि बािराज्य, व्यापार, विनिमय, उद्योग एवं विभिन्न व्यवसायों में द्वारा समान की कार्यिक रिपति का प्रच्छा परिचय मिलता है। जीविकोपार्जन के साधनों से कृषि, ब्यापार एवं गोपालन प्रमुख थे।

विषेण्य नाटको के आधार पर तत्नालीन समाज के राज-नीतिक यातावरण का भी अनुमान नगाया जा सकता है। उस समय राजतत्रात्मक धामन प्रखाली प्रचलित बी। राजा न्याय प्रीर व्यव स्या का प्रतीक होना था। न्यायी एव योग्य धासक सोवप्रिय हुवा करते थे।

उस समय ये ज्ञानीतन को देख कर ममाज के सुख झौर शास्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने का धनुमान लगाया जा नवना है। बास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला एवं साहित्यकला—ये सभी विद्यार उस समय उन्नत रूप में विद्यमान थी। लोग प्रायः कला-प्रेमी होते थे। माटको में चित्रित समाज के इन विविध रूपों का सविस्तर विवेचन खाने के ख्रध्यायों में प्रस्तुत किया जायगा।

भाशोच्य नाटकों का परिचय

803

## परिवार

पिछले बध्याय मे बालोच्य नाटको मे चिजित समाज के विविध हमो को जिन शीर्षको के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है, उनमें से परिवार की यहाँ सविस्तर विवेचना की जाती है।

'परिवार' शब्द सस्कृत की 'परि' उपसर्गपूर्वक 'बु०' घातु से ब्युरपन्न है। इसका अर्थ है 'समूह' या सगठन । इस शाब्दिक अर्थ के

परिवार

ग्राधार पर परिवार व्यक्तियो का सबसे छोटा श्रीर महत्त्वपूर्णं सगठन है। यह

विशाल समाज का घटक या मूल है। समाज-शास्त्रियो भी समाजपरक विवेचना के बनुसार यह समाज की ग्रतिवार्य ६काई है। समाज वे सगठित स्वरूप एव सुसवालन में परिवार ही सहयोग देता है। सामाजिव सुदृदता ग्रीर सुव्यवस्था पारिवारिक सुदृढता और सुव्ययस्था पर अवलम्बित है। इस प्रकार समाज-विनास परिवार से ही प्रारम्भ होता है।

परिवार-निर्माण के गुल में भारतीय सस्कृति की समन्वय-भावना ही कियाशील है। समन्वय भारतीय संस्कृति का प्राण है। संस्कृति की ब्राह्मा सर्वांगीए। विकास की साधिका है। इमने विभिन्न जाति, धर्म एव सस्कृति के किरोधी तत्त्वों को बड़े प्रेम एव धादर से गले लगा कर अपने में समाहित किया है। भारतीय संयुक्त-परिवार बा यही घाषार है। विरद्ध गुण एव प्रहृति बाले व्यक्तियों के स्नेह-मय एवं विस्वासपूर्ण सम्बन्ध का नाम ही परिवार है।

प्राचीन समाज-व्यवस्था वे द्याघारभूत परिवार वो दो श्रेशियो में विमक्त विया जा सकता है—राज-परिवार एवं इतर परिवार या

सामान्य-परिवार ।

प्राचीन समाज में राज-परिवार का खपेसाकृत विशिष्ट एवं गौरवपूर्ण स्यान था। जनता में उसको विशेष सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। असको जीवन की सामान्य

राज-परिवार एवं देनिक सुविधाओं के राण साथ भोग-दाज-परिवार एवं देनिक सुविधाओं के राण साथ भोग-विचास के सभी साघन उपलब्द वे¹। राज-परिवार को जीवन-पद्धति सुख-समृद्धि की परिचायिका होती

राज-भारवार को जीवन-भड़ीत सुख-समुद्धि की परिचायिका होती थी। उसकी वेदा-भूगा, रहन सहन, सान-भान, भावास निवास सभी ते बेभव एक ऐत्वये परिचोहत होता थारे। राज परिवार की उसके गौरव एव प्रतिष्ठानुसार कुछ परस्प-

राएँ एव भर्मादाएँ भी। राज-आसास में प्रत्येक प्रम्यागत की पहले इत्यास या प्रतिहारी द्वारा राजा की राज परिवार की सुचना भेजनी पहली थी और राजा की परस्पराएँ अनुसद्धि शान्त होन पर ही जो प्रवेश

मिलता या । अन्त पुर म तो विशेष रूप से ग्रागन्तुको का प्रवेश वर्षित या । कचुकी जैसे विद्वास-पान ग्रीर वयोद्द श्रतुचर ही राजकीय श्रन्त पुर म प्रवेश कर सकते थे ।

श्रीर बयोबुद्ध श्रनुचर हो राजकाय श्रन्त पुर मं प्रवेश कर सकत थें। वन्यान्त पुर में श्रमात्य की श्रोर से विश्वस्त रक्षको का प्रवन्य रहता थार्थ। राज परिवार में पर्दा प्रया प्रचलित थी। रानियाँ कचुक

- (ल) महो, रावणभवनस्य वित्यास ।-- श्रीभवेकः, सक २, पू॰ २६
- (ग) ग्रदा क्य वीपिनावलीक । (बिलीव्य) श्रवे रावसा ।
- (ग) अस र कथ बायकावलाक । (विलाक्य) अस रावला । — अभियेक्टक, अक २ प्०३१
- जयतु जयतु देव । एते स्वतु हिमगिरेस्पत्यकारण्यनासिन कञ्चसदेशमा-दाय सस्त्रीनास्तर्रास्त्रन प्राप्ता । खुल्वा देव प्रमाण्यम् ।
- भ्राचार इरववितिन मया गृहीता या वैत्रयिन्टरवरीषगृहेषु ।
   काले गते यहतिये मम सैव जाता प्रस्थान विवलनगते प्रस्ववलम्बनार्यम् ।
   —मि० रा०, ४ ३

१ श्रपास्य भोगान् मा चैव श्रियच महतीमिमाम् । मानुषे न्यस्त हृदया नैव वस्यस्यमायता ॥—प्रतिज्ञा०, २१२

२ (न) मही, राजकुलस्य थी—मवि०, मन ३, पृ० ७४

से आदुत्त शिविका मा प्रवह्ण से बैठ कर विहारायें या देव दर्शन के लिए जाती थी। यज विवाह, विमित्त और वन मे रानियो का दर्शन निर्मेष समअग जाना थां। कच्या दर्जन सदेव निर्मेष्ट माना जाता था। बात राजकुमारियो की शिविका का कच्छ हुटा दिया जाता था। राज और उसने परिवार जन जहाँ कही जाते थे वहाँ परि- चारक गए। प्रगरस्का के रूप में उनके साथ रहते थें। राजाओं के लिए मर्यादा पालन घरयन प्रावस्क प्रावस्क का शाय विवास का उत्तरमन करने पर समाज और परिवार के विवास के प्रतिक्रमान के के स्वास की परिवार के उनकी लिन्दा होती थी। 'मालिकागिन-निन्न' से राजा धनिसान जल महलविका से प्रेम कर अपने राजगीरव के प्रतिक्रल प्रावस्ण, करता है तो राजमहिष्यों उसे धपना पति तक कहुना स्वीकार नहीं करती।'।

श्रन्त पुर से महारानी से सिलने जाते समय रिक्त हाथ जाना जनत नहीं समभ्रा जाता था। खाली हाथ जाना महारानी के प्रनादर वा प्रतीक था। भगवती कौतिकों महारानी धारिएरी है सिलने जाते समय जनकी प्रतिष्ठायं एक बिजोरिया नीबू ही भेंट करने के लिए ते जाती हैं।

राज परिवार का केन्द्र-विन्दु राजा था। परिवार मे उसका ही प्रभुत्य रहता था। समस्त पारिवारिक सदस्य यथा राजमहिपियाँ,

स्वीर हि पश्यातु कलत्रमेतद् वाष्पा तुलाक्षेत्रंदनैभेवनत
 निर्वीपदस्या हि भवित नायीं यह विवाहे व्यसने यने च ।

- —प्रतिमा १२० ए तत्रभवती बारमदक्ता गाम राजदादिका करमकादकीन निर्दोणिमिति
- ष्ट्ररवाज्यसीन के बुकाया शिविवायाम् ।—अतिज्ञा ०, अक ३, ५० १३
- (४) तत प्रविचित्त रावण त्यपरिवार ।—प्रियक् , क्षक २, पृ० ५१
   (य) तत प्रविचित्त देवी सपरिवार ।—प्रतिपा०, धर २, पृ० ५१
- ४ सन मा देव्या पृथ्टा । वि वदन्तिविनो नव्यभवन इति । तयोक्तम् । मादो य उपवार यहारिजने स्वान्त वहनभरत न जायते ।

—माल०, धन ४, पृ० ३१४

प्र सस्ति भगवरमाज्ञापवति । ब्रिट्लपाणिनाऽस्माइत्रवननन तत्रभवनी देवी इप्टब्सा । सङ्घीनपूरवेण शुत्र्वितुमिच्छामीति ।---माल०, प्रक ३,५० २६० परिवार में राजा का स्यान राज-मुत्र, राज-कन्याएँ आदि उसका अत्यन्त सम्मान करते थे। राज-महिपियाँ तक राजा के आगमन पर अभ्यर्थनायँ सङी हो जाती थी। 'आलविकाग्निमत्र'

के चतुर्याक म देवी धारिरणी पांच के अगुणीडित होने पर भी राजा के आने पर औपचारिकतावज्ञ उठना चाहती है"। परिवार में राजा की इसने पर औपचारिकतावज्ञ उठना चाहती है"। परिवार में राजा की इसना इसने में प्रकार के समझ अपने अपने में स्वार्य के लोग उसकी इस्ट्रा के समझ अपनी मानकाओं तक का दमन कर बातते हैं। 'विकरमोर्वजीय' में पुरुर्दा की रानी तथा 'मालविकान्निमंत्र' में देवी धारिणी इनके अवलन उदाहरण हैं। पुरुर्दा की रानी अपने मुख का बलिदान करके पति की प्रेयसी एवं भावी महिंगी उर्वची के साथ वहें प्रेम से रहने की प्रतिक्रा करती हैं। देवी धारिणी अपने लिए सपत्नी लावर भी मनोरख वो सफल करती हैं। 'प्रतिमा नाटक' में राम अपने पिता की प्रतिक्रा की राजार्थ चीरवारी वकररे मनपास के लिए सपत्नी लावर भी मनोरख वो सफल

राजा मी ध्रपने परिवार-जन के साथ स्नेहमय सम्बन्ध राजा या। राजा प्रपती महिपियों से झत्यन्त प्रेम करता यार और उन्ह यथीवित सम्मान प्रदान करता था। पारिवारिक समस्याक्षे न राजा रानी से परामर्श भी लिया नरता था। श्रतिज्ञा-यीग-वरायर्थों ने राजा महासेन पुनी वासवदसा के वर निर्णयार्थ थानी को परामर्श के लिए

परिवाणिका—सन् भगवाम् विविधेत्वर सम्प्राप्त ।
 पारिएी—( श्रहो भर्ता ) ( इत्युत्मातुमिन्छति ) ।

—माल०, सर ४, पृ० ३१८

 एपाइ देवतामिषुर रीहिणीमृगसादन साक्षीष्टरवावपुत्रमनुष्रसादवामि अद्य प्रशृति या दिवयमागपुत प्रार्थयत या चावपुत्रस्य समागमप्राण्यिकी तथा ग्रह प्रतिव पन वितिवयम् इति । —विक्रव, प्रक ३, पृ० २०४

३ प्रतिपदीसापि पित सबन्ते भर्तृबत्सला साघ्य्य ।

मामसस्तिमिष जन समुद्रगा आपयान्युदिविष् ।—माल॰ ५१६ ४ प्रतिमा नाटन, श्रक १, प० ३१-४६

मस्ति प्रियकतथो राजीय । न पुनहैंदय निवतियतु शक्नोमि ।

—विक्रव, अन ३, पृ० २०६

सभाभवन मे जुलवाते हैं। रानी के मन के विरुद्ध या राज मर्यादा के विपरीत कार्य करने पर उसे भय भी रहता था। प्रजाजन के समान पारिवारिक सदस्यो के प्रति भी राजा कत्तव्यनिष्ठ रहता था।पारि-वारिक उत्तरदायित्व के प्रति वह उदासीन नही था। सन्तान की समुचित शिक्षा दीक्षा और भावी उनित के प्रति उसका सदा ध्यान रहता था। राजपूतो के लिए राजीचित एव रुच्यनुकुल विषयों के शिक्षाण का प्रवस्य किया जाता था। राजकुमार विभिन्न विषयो मे पारगस्य प्राप्त करते थे?। राज कन्यामी के शिक्षरण की भी समुचित व्यवस्था राज परिवार मे थी?। प्रजा पालन के दुष्कर कर्तन्य मे रत रहने पर भी राजा को अपनी कन्यामों के सरक्षण एव विवाह की उतनी ही जिता थी जितनी एक सामा य गृहस्य को।

राजकुमार के युवराज पद पर प्रतिष्ठित होने के महोत्सव को मोबराज्याभियेक महाँ जाता था। जब राजपुत्र वम-कवन धारण करने योग्य हो जाता था तभी उसे युवराज पद पर ग्रिभिविक्त किया जाता

योवराज्याभियेक

था। युवराज यनने से पूछ वह केवल बुमार" सज्ञा से अभिहित होता था। अभिषेगीचित धार्मिय इत्यो

१ दृहितु प्रदानकाने दुखगीना हिमातर । सस्माद्देवी सावदाहयसाम । — স্বিলাণ মূল ২ ৭ ২০

R भयगास्त्रगुराग्राही ज्येष्ठी योपालक सुत ।

गा धवंद्वयी व्यायामगाली चाध्यनुपालक ॥ -प्रतिना०, २ १३ राजा-वासवदत्ता वव ?

देवी --- उत्तरामा बैतालिक्या सकाने बीला निश्तित नारदीयां गतासीत् । -- प्रतिना०, धक र पृ प्र

¥ अत सन् चित्त्वने । ब मामा गरसम्पत्ति पितु (प्राय) प्रयत्नतः ।

भाग्ययु रोषमायस हच्टपुत न घा यथा ॥ — প্রবিমাণ ২ ধ रम्भे । उपनीयतां स्वयं महे इता सभत नुमारस्यायुको धीवराज्याभिवेश ।

—वित्रक्षास्य प्र**प**०२५६ ६ मृहीतविद्या सायु साम्प्रत नवजहर सबुत । — वित्र • द्यन ५ पू० २४०

देशिय पादहिष्यशी न० १

808

तथा सस्कारो से यौवराज्य श्री कुमार को प्राप्त हो जाती थी। श्रमिपेक विधि का उदाहरए। 'विक्रमोर्वशीय' के पचम श्रक मे वर्णित पुरुरवा के पुत्र आयु के यौवराज्याभिषेक के समय मिलता है?। श्रेष्ठ श्रीर विद्वान ब्रह्माण श्रीमपेक कर्म का सम्पादन करता था। उसके आदेशानुसार कुमार को भद्रपीठ<sup>3</sup> पर बैठाया जाता था। फिर बह अभिमतित जल से परिपूर्ण कलश<sup>र</sup> से उसका श्रभिविचन करता था। सस्कार की शेप विधि दूसरे व्यक्ति सम्पादित करते थे<sup>प</sup> । इसके बाद कुमार ययाक्रम गुरुजनों का अभिवादन करता थाड । फिर नैतालिक-ह्रेय 'विजयता युवराज' कहकर उसको स्नाशीर्वाद देकर उसके पूर्वजी का काव्यमय गुँगानुवाद करते थे ।

राजकुमार को इस प्रकार युवराज-पद पर प्रतिष्ठित करने का उद्देश्य उसको राज्य-संचालन के लिए पहले से प्रशिक्षित करना होता था, जिससे वह राजा के बुद्ध होने पर, राज्य के गुरुतर भार की वहन करने से समर्थ हो सके । युवराज राजा को धनेक कार्यों से सहायता देकर उसके जासन भार की हलका करता था। उसके सह-योग से शासन प्रबन्ध में सुव्यवस्था आ जाती थी और उसे स्वय को राजा के निरीक्षण म शासन कार्य का धच्छा अनुभव ही

भावपो यौवराज्यली स्मारवस्थात्मवस्य है। 8 सभिपिक्त महासेन सनापत्ये नरुत्वता ॥

विक्र ०. झक ४, ५० २४५-२५७ R

g चपबेश्यतामायुष्मा भद्रपीठे ।--विकः , अकः ५ प् २५५

नारव-(कुमारस्य शिरसि कलश्रमावज्ये)।--विक्र० धक ४, ५० २४४ ٧ y

रम्भे । निवत्यता दोपो विधि ।--विकार अन ४, पर २४४

बरस । प्रसम भगवात पितरी च !-- बिन ०, श्रक ४ प्० २४५

बैतालिकौ--विजयता युवराज ।--विकः, श्रकः ५ प्० २५५

वैतालिक-तव पितरि पुरस्तादुप्रताना स्थितेऽस्मिन्

स्थितमति च विश्वका स्वयानकापर्यये । धविकत्तरमिदानी राजतै राजनहमी

हिमवति जतीघ च व्यस्ततीयेव गगा।

— विकार, ५२२

देखिये, भगवतसरस्य उपाध्याय नालिदास वा मारत, भाग १, प्० १५२

जाता था। इस प्रकार राजकुमार को थुवराज बनाना एक प्रकार से उसके राज्याभिषेक का ही उपकम होता था।

राजकुमार को युवराजपद पर ग्रथिष्ठित करने के लिए जिस प्रकार यौदराज्याभिषेक होता था वैसे ही राज्यारोहण के स्रवसर

पर राज्याभिषेक विद्या जाता था। राजा

राज्याभिवेक बृद्धावस्था धाने पर प्राय पुत्र की राज्या भिषिक्त कर उसकी राज्य व कृद्भव का भार सौप कर वन में तपस्या करने चले जाते थे । राज्याभिषेक के

समय राजा के मादेशानुसार भमात्य परिपद् भिभवेन सामग्री का आयोजन करती थी । राज्याभिषेक विधिपूर्वक सम्पस निया जाता था।

सर्वप्रयम राजा उपाध्याय आचार्य तथा प्रजा. सभी की उप-स्थिति मे एव छोटा सा समारोह होता था जिसमे राजा युवराज मो गोद म बैठा वर स्मेहपूबक कहता था, 'बेटा 'यह राज्यभार स्वीकार नरो '३। युवराज की मौन स्वीकृति पर राजा स्वय चामरयुक्त छत्र सँगालता था\* और अभिषेक की प्रसत्तता में चारो और पटहादि " मगलबाध गूँअने लगते थे। राजपुत्र के हाथ मे मगल-सूत्र बाँधनर उमे भद्रासन पर बैठाया जाता था<sup>र</sup>ा गुनिया द्वारा विभिन्न नदिया से

१ राज्ये श्वामभिष्यिका सन्तरपतेसीमास् प्रसाधी प्रजा ष्ट्रात्वा त्वस्तहनान् समानविभवान् कृषात्मन साततम्

इत्यादिश्य च ते, तपीवनमिती वन्तव्यमित्यतया --प्रतिमाः, ३ १६ 2 सातव्य । महचनादमास्यपरियद बृह्वि सश्चियतामायुपी राज्याभिषेक इति ।

विक. सन्ध प॰ २४२

राम - म्यूयताम् । मचास्मि महाराजेनोपाध्यायामास्यमङ्गिजनसम्धामेर \$ प्रकारमध्यातः कोगलराज्यं कृत्या बाचाव्यस्त्रमाहुगारोध्य मातृगोत्र स्निग्यमाभाष्य पुत्र राम ! प्रतिमृहाता राज्यम् । — प्रतिमा », धन १, 90 RU

पत्र स्वय पुषतिना स्दलागृहीत । -प्रतिमा० १ ७

धारस्य पटह । --- श्रीनमा० १ %

पनाह कृतमगनप्रतिसरी भदासनाराशिसा

उत्पन्ताया विविधिनद्वा नेपनिना भिनाभिषक वृत्त । -- धमिन, ६३४

## परिवार

लाये हुए तीर्थोदक से परिपूर्ण हेम-कलगों से-जिनमें दर्भ, कुसुमादि डाल दिये जाते थे - उसका अभिषेक-संस्कार होता था। अभिषेक के पश्चात् वह प्रकाशमान् मुकुट घारए। कर 'नृप' श्रभिषा से विभूषित होता था। प्रजा नवश्रशि के सहश अपने नूतन राजा का जय-जयकार कर उठती थीर । मित्र, वन्यु और अनुचरगण उसको राजा होने की बचाई देते थे 3 । इसके पश्चात् उसको स्थ पर बिठाकर नगर-परिश्रमण के लिए के जाया जाता था। श्रिभपेक-महोत्सव के ग्रवसर पर एक सामयिक श्रभितय का भी आयोजन किया जाता था, जिसमे नट अपनी कला प्रदक्षित करते थे। राज्याभिषेक का आयोजन अन्य राजकीय उत्तवों और समारोहो की तरह केवल मनीरंजन के लिए नही वरन् राजा प्रजा के दैवी सम्बन्ध को सुदृढ बनाने के लिए होता था। इसमें राजा को पद-गौरव के साय-साय प्रजा-पासन के महान् उत्तरदायित्व को भी बहुन करना पहता था। राजपद प्राप्त करने पर भी जब तक राजा प्रजा का न्यायपूर्वक पालन नहीं करता था तब तक वह यथार्थत. 'राजा' नही रामका जाता या। जिस प्रकार सुबँ सदा रथ में प्रश्वों को जोते रहता है और वायु निरन्तर प्रवाहित रहती है, उसी प्रकार धन-वरत प्रजा-रक्षण में रत राजा ही नपत्व को सार्थक करता था।

राजकुल में बहुविवाह-प्रथा प्रचलित थी। यह प्रथा राज-यैभव एवं राज्य-गौरव को सूचित करती थी। राजा की स्रमेक महि-पियाँ या परिनयाँ होती थी<sup>र</sup>। 'स्वप्न-

राजमहिषी

वासवदत्तं में तो राजा महारोन की पोडश रानियों का उल्लेख मिलता है। रानियों

- व्यस्ता हैममया, सदर्भहुसुमास्तीयिम्बुपूर्णा घटा: —प्रतिमा॰, १.६
   प्रिमयतनुष्तार्थ्द धार्यमास्तातपत्र विकसितहत्तगौति तीर्यतोयामियित्तम् ।

  गरप्राप्रातनील बन्दामान जनीय, नवस्राधानमिकार्यं प्रस्कृते से न तिनः ॥
- गुरमिणततील थन्द्यमान जनीचै. नवशशिनमित्राये पश्यतो मे न तृष्ति. ॥ —प्रतिमा०, ७.१२
- विभीपस्मी विद्वापयति । सुग्रीवनीलर्मन्दर्शास्त्रवस्त्रमुखारचानुगण्यत्यो विज्ञापयन्ति—दिष्टचा भवान् वर्षृते इति । —प्रतिमाः सक् ७, पृ० १८३
   सारसिके ! सार्यनके ! समीतवाता गव्या नाटकीयाना विज्ञापयकाल-
- संबादिना नाटकेन सज्जा मनेतिति । -- प्रतिमा; स्रक १, पृ० ३
- परिप्रहवहुत्वेऽिप क्वे प्रतिष्ठे कुलस्य मे ग्रमि० गा०, ३.१६

मे जेयण्ठ भीर राजा की प्राराचल्लमा महाराजमहियी के पद की विभूषित करती थी। महाराजमहिषी के लिए महादेवी "' श्रीर 'देवी र' शब्दों का प्रयोग होता था और अन्य राजमहिषियों को भट्टिनी3' की राजा रो ग्राभिहित किया जाता था। पाणिनि प्रधान रानी को 'महिपी' लिखते है ग्रीर ग्रन्य रानियो को प्रजावती । राजा या युवराज की माता राजमाता पद को अधिकारिणी होती थी। अन्त पुर में महाराज-महिषी का ही एकच्छत्र शासन होता था। वहाँ सम्राट तक का मधिकार नहीं था । 'मालविकाग्निमित्र में इरावती रे आदि रानियाँ महारानी घारिणी की भाजा का ही समर्थन करती है।

राज्य के सुप्रबन्ध के लिए राजा के ग्रधीनस्थ सेवको का एक विशाल वर्गहोताया जिसमे स्त्री पुरुप दोनो प्रकार के व्यक्ति समान विष्ट थे। रीवको के पृथक पृथक कार्य

निर्धारित थे जिनके अनुसार उन्हे निम्ना-राजा के सेवक

कित प्रकार से वर्गीक्स किया जा सकता है। (क) ग्रुङ्गारसहाय (स) श्रथचिन्तासहाय (ग) धर्मसहाय

(घ) दण्डसहाय (ङ) अन्त पुरसहाय (च) सवादसहाय। राजा के सेवक वग के अन्तगत शुङ्गारसहायों का महत्वपूर्ण

स्थान था। ये राजा के श्रनेक व्यक्तिगत कार्यों में सहायक होते थे शुद्धारसहाय मे विट चेट विष्यक,

मालाकार रजक, तमोली और गंधी (क) म्हङ्कारसहाय बादि होते है<sup>8</sup> ।' इनका प्रमुख कार्य राजा

का मनोरजन करना तथा उसके प्रसाय व्यापार को संकल बनाना होता था। उदाहरणार्थं श्रमिज्ञानदाकुन्तल' मे दुष्य त का मिन माढन्य, विक्रमोर्वशीय मे पुरुरवा का सहचर माणवक तथा प्रतिज्ञायीगन्ध-

जाते । भत्बहुमानसूचक महादेवीशब्द अभस्त । श्रमि० शा० अक ४, पृ० ६४

परतपातमन देवीम यते । प्रमिश्चार अके १ ए० २७२

ä नमु भट्टियवलोकयसु ।---माल० धक ३ प्० ३०२

इंडिया ऐस नीत इ पारिएनि-अप्रयाल प० ४०४ १ इरावती पुनविशापयति -सहस देव्या प्रस्तवाता । तव बचन मकल्पित न ¥

मुज्यतेऽ यमाकर्त्मिति ।—माल० श्रकः ५ प्०३५५

दयामसु दरदास एव बटच्वान दशस्पक रहस्य, पृ० १०४

रायण' म राजकुमारी कुरगी की सखी निलिनिका और धात्री राजा के प्रग्यस व्यापार की सफ्ल बनाने म सहायक सिद्ध होते हैं। कुरगी की धानी उसकी विकलता को देखनर खतिमारक के पास जाती है और उसे कन्यापुर म क्रानि का निमन्त्रस्य दे आती हैं।

राजा के दूसरे सहायक वे हैं जिन्ह 'प्रथंसहाय' कहा जा सकता है। इनम तन्त्र बर्षात् राज्य को कित्ता और प्रावाप अर्वात् राहराज्य की चिन्ता करने वाले मन्त्री समाविष्ट

(प) अर्थसहाध हैं। राज्य के विस्तार और समृद्धि के लिए तथा शासन प्रवन्य के सूराह सवालन के

लिए राजा के पास फ्रेंक प्रस्कुलन्त्रमति मन्ती होते थे। महाभारतः मुम्सून्ति धादि ने स्पटक्य से प्रियो को राज्य की सुब्धवस्था के लिए प्रतिवाद माना है। लिस प्रतिवाद का को रूप प्रस्तार नहीं ही सकता, उसी प्रकार प्रतिवाद की स्वाद प्रतिवाद स्वाद के स्वाद प्रस्तार नहीं ही सकता, उसी प्रकार प्रतिवाद के विचा शासन-कार्य नहीं चल सकता। जब साधारण, सा कार्य अपने व्यक्ति के लिए दुष्कर ही जाता है, फिर शासन-कार्य की कार्य अपने प्रकार के लिए दुष्कर ही जाता है, फिर शासन-कार्य की कार्य क्रिया के स्वाद के स्वाद के स्वाद करने करने स्वाद करने के स्वाद करने के स्वाद करने के स्वाद करने के स्वाद करने करने स्वाद करने करने स्वाद करने स्वाद करने के स्वाद करने स्वाद करने

राजा की सहायता के लिए विभिन्न शासन-विमागों के मन्त्रियाँ की एक परिपद होती थी। यह परिपद मनि-परिपद् श्रा शमास-परिपद् कहलानी थी। राजा शासन-कार्य सम्बन्ध भी राज्य हासन विपयक सियपों पर परिपद् वे परामर्श करता था । सन्-परिपद् विवय राजकीय विपयों पर परिपद् वे विषय राजकीय विपयों पर परिपद् वे विषय राजकीय विपयों पर पीति निर्यों के स्त्रियं के मिल्यों के सिप्

**\$** 

१ योगमिण्डल्याशागतः स्व । अनुगतं आर्येणः योगः इति नतु निष्ठितः काम मस्माकः राजनुन निविनते अवनाने । तथापि कोऽपि जनोऽभिकतरः योग चिन्तम नस्ति । तेन सह तत्रैवार्येणः सुष्ठ् योगविधान चिन्त्यनामिति ।

<sup>—</sup> मनि० झकर पु० ४२

महाभारत ४ ३७ ३८ मनुस्मृति ८४३

३ मनुस्मृति ८५३ ४ मार्यान्तरशचिवोऽस्मानुपस्थित ।

४ नार्यान्तरराचिनोऽस्मानुपस्थित । — मानः प्रकः १, १० २६६ १ तेन हि मनिपरिषद बृहि— — मालः, प्रकः १ १० ३५२

६ मद्रचनादमात्यपरिणद बृह्व —विकः अक ४ पूर २४२

 <sup>(</sup>न) ध्रयवानि नवामायने। — मान० धन १, पृ० २६८

<sup>(</sup>स) तदगारववर्गेश सह समाञ्य गन्तव्यम । — श्रीमेथेक, श्रक १, पु० द

राजा के पास भेजती थी<sup>9</sup> । राजा का निर्संय ही सर्वेसम्मति से स्वी-कार्य होता था<sup>9</sup> ।

राजकीय समस्याओं के अतिरिक्त राजा अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक विषयों में भी मंत्रियों की सलाह केता था । अविमारक में कुन्तिभोज अपनी पुत्री कुरंगी के विवाह के लिए यत्रियों से भी

मन्त्रणा करता है<sup>3</sup>। धर्मसहाय में राजा के वे सहायक समाविष्ट होते है जो यहा, देवार्चन, विवाह धारि धार्मिक संस्कारों में राजा की सहायता करते

ये भीर उसे घम का यथार्थ तथ्य समक्ति (ग) धर्मसहाय थे। इनमें उत्पादमार धर्माराम, वनविदः

(ग) धर्मसहाय थे। इनमें उपाध्याय, धर्माध्यक्ष, व्रतिबद्, वैतालिक और देवकुलिक ग्रादि प्रमुख है।

जगान्याम राजगुरु और कुलगुरु के पद को सलकुत करता था। राजग उसका पितृवत् प्रावर करता था। राजु के धनुसार वेसत सेकर वेस के कुछ प्रसा या वेदांगों को गढाने वामग उपाच्याम कहाताता है। धार्मिक या राजनीतिक समस्याओं में भी राजा उपाच्याम या पुरोहित से ही परामगं लेता था। 'अभिज्ञानशाकुत्तल' में राजा दुष्यस्य शकुत्तका के परिप्रहुए। प्रीर परिस्थाग की दिविषा में प्रयोग कुल-पुरोहित सोमरात से ही परामगं लेता है"। राज-सभा में बाने वाले प्राध्मवस्ती तापसों एवं महर्षियों के प्राविष्य-सकार का आर राज-पुरोहित पर होता था।

- १ समारमो विज्ञापयनि—विदर्भगतमनुष्टेयमनुष्टितमभूत् । देवस्य ताबद्यभि-प्रायं भोतुमिच्छामीति । —मातः , सकः ४, प्० ३५९
- अमारायो विज्ञापयि क्रिक्यास्थी देवस्य बुद्धि । मनिवारियदीऽप्येतदेव वर्शनम् ।
- २ सम्यपुक्तं काँगायनेन । जूलिक । सर्वराजमण्डनसपरोह्या ह्यो. स्थापितनीः क प्रति विशेष । —श्रवि०, ग्रंक १, प्र० २१
- प्रक्षेश तु वेदस्य वेदामान्यपि वा पुन. ।
   योऽस्यापयित वृत्यर्थसुपाध्यायः स उच्यते । —मनु० २.१४१
- प्र. राजा---(पुरोहितं प्रति) मनलमेशात्र गुरुवाधन पुरुद्धानि । ----मभि० छा०, प्रेश ४, पृ० ३२३
- तेन हि मञ्जनाडिज्ञाच्यतामुपाच्यायः सोमरातः—अधूनाश्रमवासिनः श्रोतेन विधिना सरकृत्य स्वयमेव प्रवेशयिकुमह्तीति । — अभि ० सा०, प्रक ॥

परिवार राज्याभिषेक के समय भी वही सर्वेसर्वा होता था । यह वेदी पर ग्रासीन होकर युवराज की श्रिभिषेकीचित कियाएँ सम्पन्न

488

करताथा।

धर्माध्यक्ष घर्म विभाग का अधिकारी होता था जिसकी नियुक्ति भाशमवासी तपस्वियों की रक्षा के लिए होती थी। तपस्वियों की तपस्चर्या निविधन जल रही है या नहीं, उपदेवी राक्षतों ने उनके तप में दाया तो नहीं डाली अथवा किसी ने तपीवन के प्राणियों को तो नही सताया है-इन सब बातो नी देखभाल धर्माधिकारी ही

करता था ै।

ब्रह्मविद् के अन्तर्गत बुलपति कण्य, महर्षि कश्यप, मारीच और भगवान् बसिष्ठ जैसे ब्रह्मजानी बाते हैं। ये समय समय पर राजा को

ससार के यथार्थ रूप का ज्ञान कराते थे, जिससे राजा पूर्णरूपेगा भोग विलास मे आसक्त न हो जाय । बहा सम्बन्धी विषयों के साथ भौकिया विषयों में भी ये राजा को सरपरामर्श देते रहते थे। महर्षि

कण्य अससारी और सन्यासी होते हुए भी अपनी पुत्री शबुन्तला? को भावी जीवन को श्रादर्श बनाने के लिए सासारिक व्यवहार की बातें समभाते हैं।

स्मरण दिलाते थे कि उन प्रहरों में राजा की निश्चित दिनचर्या क्या है ' ?

दण्ड-सहायक के अन्तर्गत राष्ट्र, नगर और राजकुल की रक्षा के लिए नियुक्त राजकर्मचारी, सेना के प्रमुख सेनापति, बलपति, सैनिक, दण्ड-(घ) दण्ड-सहाय विभाग सर्वात् न्यायालय के प्रधिकारी,

राजा के भंगरक्षक, मित्र राजा, युवराज, सामन्त ग्रादि आते है।

नागरिकः या राष्ट्रिय प्रधान बण्ड-सहाय था । वह प्रायः राजा का साला या राजा की उप-पत्नी का भाई होता था। इसीलिए इसे राजश्याल वा राष्ट्रिय-श्याल आदि नामों से अभिहित किया जाता था। यह 'शु' बहल शकारी बोली "का प्रयोग करने के कारए। शकार भी बहलाता था। यह गगर-रक्षा-विभाग और राज्य का प्रधान पुरुष होता था"। इसके अधीन अनेक रहाक होते थे"। राजा की भोर से इसकी नियुन्ति नगर से शान्ति स्थापित नरने और बुटों के दगन के कचना गिश्राप्त नगर अ शास्त्र स्थापत करन आर जुष्टा क दान के लिए होती थी। किन्तु कभी-कभी छुष्ट राष्ट्रिय की निपुनित भी हो जाती थी, जोकि दुस्वरिल होने के कारण राज्य मे अधानित और प्रशासार कैताता था और दुष्टों के स्थान पर निर्वापों को दण्ड दिस-याता था। यह राजस्यात होने के कारण सर्वत्र प्रसुद्ध रखता था और म्रपने को ही राज्य का कर्ता-धर्ता समभता था। 'मुच्छकटिक' में शकार

तुल्योद्योगस्तव व सवितुद्दवाधिकारी मती नः तिष्ठरयेकः क्षशुमधिपतिज्योतिषा व्योगमध्ये

पण्ठे काले रवमपि लमसे देव विश्वान्तिमहतः । --- विश्व०, २.१ २. (ततः प्रविधाति नागरिकः) ---श्रमिव वाव, सक ६, पृत ६७

कयं सम नयनयोशायासकर इव राजक्याल. 1 — मुच्छ०, धक ८, पृ० ३६६

 महं राष्टियक्यालः \*\*\* — मृच्छ०, शक ८ पृ० ४१८ थ. भावे भावे, बलिए वस बल्बखाले मारालाशिपविद्रा विश्व मशिगुडिग्रा

दीशन्दी ज्ञेन परादा नशन्तवेशिशाः। ---सच्छ०, श्रम १ ६. भाव भाव, मा प्रवरपुरुषं मनुष्य थासुदेधकम् ।

— मृष्यु॰, श्रंक ८, ५० ४०३

(ময়: प्रदिश्चति नागरिक.\*\*\*বিম্বাটী ঘ।) — प्रभि० খা০, য়৾য় ६, गृ० ६७

पालीकान्तप्रतिहततमोव्तिरासा प्रवान ।

वसन्तरीना को मार कर ग्रमना अपराध किसी अन्य पर आरोपित करने के लिए विट को कुछ स्वर्ण मुद्रा और कार्पापण देता है'। वह निर्दोष पादक्त पर वसन्तरीना को मारने का दोष लगा कर उसे न्यायाधीश से मृत्यु-दण्ड दिलवाता है।

सेनापति और बलपति का दण्ड-सहायको से दूसरा स्थान है। दोनो पुलिस के प्रधान अधिकारी होते थे और अपराधियो और हुटी को खोजने के लिए नियुक्त किये जाते थे। सेनापति नगर-रक्षाधिकारी और प्रधान दण्ड पारक हीता था। सेनापति और वलपति राजा के विश्वस्त कर्मचारियों में से होते थे। 'मुच्छकटिक' में बीरक और चन्दनक ऐसे ही पुलिस अधिकारी हैं?।

दण्डसहाय में न्याय विभाग भी एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें न्यायालय के सर्वोच्च न्यायाधीया, श्रेण्ठी, सहायक न्यायाधीया, कायस्य एव ब्यवहार-लेखक खादि परिगाणित होते थे<sup>3</sup>। इनका विस्तृत वर्णन प्रष्टम प्रध्याय ये किया गया है।

राजा के अन्त पुर भे भी कई सेवक होते थे। कचुकी इनमें प्रधान होता था। यह प्राय सारिवक (ड) अन्त पुर सहाय और वृद्ध ग्राह्मण होता था। कचुकी नाम

सम्भवत इशिलए पेबा कि यह कचुक पह-नता था। यह अन्त पुर की रानियों का प्रधान अवरक्षक होता था । इसके हाथ में यप्टि रहती थीं, जो बैत की बनी होती थीं ।

 मर्यान् यत दशामि सुवर्णक ते कार्यापण दवामि सबोडिकन्ते एव दोपस्थान पराक्षमो मे सामान्यकी भाषतु मनुष्यकास्थाम् ।

—मृष्द्यः, ६ ४०

—वित्र०,३१

२ मृष्यु०, शक ६, पृ० ३४३

३ यही, धक € (सम्पूर्ण) ४ सेवाकारा परिणातिरही ।

भेवाकारा परिस्तृतिरहो स्त्रीयु कप्टोऽधिकार ।
 भ्र म्नाचर इत्यवहितेन मथा गृहीता

या वेत्रयप्टिस्वरोषगृहेषु राज्ञ ।

काले गते बहुतिये मम सैव जाता प्रस्थानविक्लबक्लेरवनस्वनार्था ।

—-অণি৹ যা৹, ং ই

कचुकी के अतिरिक्त अन्त पुर के सेवको मे किरात, कुन्ज , रानी व राजकन्याओं की सिखयाँ और परिचारिकाएँ आती हैं।

सदेशसहाय में दूत भी उल्लेखनीय है। दूत किसी कार्य की सिद्धि के लिए सदेश लेकर भेजे जाते थे। उनके तीन भेद किये जा

सकते है-नि सच्टार्थ, मितार्थ श्रीर सदेशहारक । नि सृष्टार्थ उसे कहते है जी (घ) सदेशसहाय भेजने वाले और जिसके पास भेजा जाये.

दोनो के मनोभावों को समभकर स्वय हो उत्तर-प्रत्युत्तर कर कार्य की सिद्धि करता है। मिताथं मितभाषी होता है, किन्तु कार्य को अवस्य करता है। सदेशहारक उसनी ही बात कहता है जितनी उसे कही जाये। 'दूतवाक्य' मे श्रीकृष्ण नि सुष्टार्थं दूत है। वह युधिष्ठिर ना सदेश लेकर दुर्योदन की राजसभा में जाते है और उसका सदेश सुमाते है। दुर्योधन के न मानने पर वह स्वय अपने वाग्वेभव द्वारा समस्या सुलकाने की कोशिश करते है। 'दूतघटोरकच' मे घटोरकच मितायें दूत है। ये दूत अवध्य होते थे? । इन्हें निर्भय होकर अपने स्वामी का सदेश सुताने की स्राज्ञा दी जाती थी । जब घटोरकच श्रीकृष्ण का सदेश लेकर पुर्योधम के सभा-भवन में जाता है तो दुर्योघन उसे मिर्भय होकर श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाने की आज्ञा देता है । चाहे दो राजाओं मे परस्पर कितनी ही बजुता क्यो न हो उनके दूती का बडा ब्रादर-सम्माग होता था।

राजा की वेश-भूषा राजपरिवार के मन्य व्यक्तियों की म्रपेका विशेष साज-सज्जा लिये हुए होती थी। उसके वस्त्राभूपरा भन्य पुरुषो के वस्त्रा-राजा की वेश-मधा भूषणो से भिन्न और बहमूहय होते थे।

भरो, एप देव्या परिजनाम्यन्तर किमपि जनुमुद्रालाहिता मञ्जूषा गृहीस्त्रा चतु शालात कुञ्ज सारसिको निष्कामनि -- मालब, अक ४, ५० ३३६ २ (क) इत राल भवान प्राप्तो न त्व युद्धार्थमागत ।

ग्रहीत्वा गच्छ सन्देश न वय दूतपातका ॥

<sup>—</sup>दुतघदोत्कष १४५ --- अभियेक०, अक ३, गु० ५७

<sup>(</sup>प) सर्वापरावेध्यव्या खलु दूता । १ 'चप्ट श्रावय मा जनादंनवचो'''। --दत घटोलच, १३४

उसके बस्त्र ग्रधिकतर रेशिमी (क्षौम) होते थे। वह शरीर के ऊपर के भाग को हकने के लिए उत्तरीय का उपयोग करता था जो श्वेत दुकूल का बना हुम्रा होता था?। उसके सभी म्राभूपण मिराजिटत स्रीर स्वर्णमंहित होते थे। सामूपणों में हार³, केयूर४ (संगद), कंकराप श्रीर अगुलीयक मुस्य थे। राजा अगरागादि सुगन्वित द्रव्यों का भी प्रयोग करता या । " मुकुट", छत्र और चॅवर " उसके विशेष चिह्न थे। यदि राजा दरवार में सिहासन पर न बैठ कही बाहर भी मा जा रहा हो तब भी उसके साथ छन, चेंबर, मुफ़ट मबस्य रहता था। उसके ग्रतिरिक्त राजदण्ड ११ मी उसका चिह्न था।

भालोच्य नाटकों में राज-प्रासादों के साथ राज-परियार के प्रसाधनों का भी विदाद चित्र मिलता है । कालिदाम के 'मालविकारिन-मित्र' नाटक में अन्त पुर वर्ग की साज-सज्जा और प्रसाधन के लिए 'ग्रन्त:-राजपरिवार के प्रसाधन

पुरनेपध्य १२ का प्रयोग हमा है। वैसे तो नेपण्य का अर्थ-'नेपण्य स्योज्जवनिका रंगभूमि प्रसापनम्'<sup>13</sup> । इस लक्षण के धनुसार 'जबनिका' या परदा होता है, किन्तु व्यापक रूप में

···स्ट्रप्टा चैव धुधिद्विरस्य विषुल क्षीमापसम्य भूज । ٤. -- अहमग. १.४३ रयामी युवा सितद्रकुलकृतीक्तरीय '। ₹. —दश्यापय, १.३ ···वश्वस्यस्पतितं प्रहारर्राषर्दश्चितवकाची हत । - कदमग, १.४१ ٩. परवेमी ब्रामाननागदघरी पर्याप्तक्षीभी भनी । Υ. --- अहमग, १.५१ ঘদিত হাত, হ.হ ٧.

٤. भनुमुया--- \*\*\*मस्ति तेन राजपित्या संप्रस्थितेन स्वनामधेयाकितमंगुलीयकम स्मरशीयामिति स्वयं पिनद्वम - श्राधिक शाव, श्रक ४, पुरु ६०

द्वतवानय, १.३ **9.** 

प. विक. ४.६७

5 विक०, ४.१३

१०. विक्र०, ४१३

११. मिन द्यार, इ.प

₹ **२** . मम कारसाददेवी मामन्त प्रतिप्रयोग योजियव्यतीति ।

—माल०, यक ३, पू० ३००

यह पात्रों की वेश-भूषा के लिए भी प्रयुक्त होता है। प्रत्त-पुर-नैपध्य को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—एक तो अनिवार्थ निष्य और दूसरा बैकल्पिक नेपच्य। प्रथम मानव शरीर की पुरक्षा के लिए प्रत्यन्त सावस्यक है और दिसीय उपभोक्ता या प्रयोक्त की इच्छा-प्रतिच्छा पर साधारित है। १. प्रतिवार्य नैपच्य—इसके अत्यांत वात्र-सामग्री भावी है। वसन मानव हरीर की प्राथमिक सावस्यक्त लायों ये परिराखित होते हैं। इसलिए उन्हें शरीर का भ्रायम्त माना गया है।

प्रासावास्त पुर से ऋत्वानुसार सुती, कसी, रेशमी, तीमी प्रकार के परंत्री का उपयोग किया जाता या, लेकिन महीत रेशमी अस्त प्राधिक प्रकलित थे। यहाँ तक कि सुती और कसी कपके में में रेशम का अप मिला रहता था। कीशेय पत्रीग्णं इसी प्रकार का कसी रेशमी सरत है जिसे मालविका विवाह के अवसर पर थारण करती है। वस्त्र के विभिन्न प्रकारों में, औम, 'दुकूल', कीशेय-पत्रोण', पत्रीण' और प्राप्त कर के विभिन्न प्रकारों में, औम, 'दुकूल', कीशेय-पत्रोण', पत्रीण' और प्रमुक्त के विभिन्न प्रकारों में, औम, 'दुकूल', कीशेय-पत्रोण', पत्रीण' अर्थ सार प्रमुक्त के उपलेख हुमा है। क्षीम बहुत महीन मीर सुम्बर बस्त्र या। यह मलसी की छाल के रेशों से बनता था।

"क्षीम वस्त्र, जैसाफि इसके नाम से प्रकट है, कदापित सुमा या अलसी नामक पीये के रेशों से तैयार होता था। (यह सम्भवत स्थालटीन था)। भाग, सन और पाट या पटसम के रेशों से भी बरफ तैयार किये जाते थे, पर सीम अधिक कीमती, मुलायन और वारीक होते थे। चीनी भाषा में 'हु-मक' एक प्रकार की वास के रेशों से तैयार

— অংশি ৽ ঘা ৽ ४ ২

क्षीम केनिबदिग्दुपाण्डु शब्सा माग्रह्ममानिष्कृतम्

२. वित्र०, प्रक ४, पृ० ३३६, माल०, ५ ७

३ गन्द तावत् । कौश्चेयपत्रीणयुगलयुग्नम् । — मान०, शक ४, पृ० ३४६ ४. प्रेष्मणाचेन नामेय देवी सन्दक्षमा सती ।

अन्य नायम नामस्य दया स्ववस्य स्वता ।
 स्तानीयवस्त्रक्रियया पत्रोणं वीपयुज्यते ॥ —माल०, ५ १२

र विक्र∙, ३१२

६ डा॰ मोतोचन्द प्राचीन वेशभूषा, भूगिका, पृ० ५

७ बायुवेनशरण अध्रवाल हर्भवरित एक सास्कृतिक अध्ययन, पाद टिप्पणी न॰ ४, ४० ७६

वस्तों का प्राचीन नास था जो बाएा के समकालीन बाइन्तुग मे एवं उसते पूर्व प्रमुक्त होता था। यही जीनी पास मारतवर्ष के गूर्वी भागी (पासाम, बयान) में होती थी। ब्रतः क्षोग रेखों से तैयार होने वाला बस्त्र था। यह अवस्य ही आसाम में बनने याला कपड़ा था क्योंकि स्रासाम के कुमार आस्कर वर्मा ने हुएं के लिए जो उपहार भेजे थे उनमें शीम बस्त्र भी शामिल थे। यह विवाहादि मांगलिक श्रवसरों पर प्रमुक्त होता थां।

द्यीम के समान दुक्ल भी 'दुक्ल' कुल की छाल के रेशे से यना करता था? । यह मील, साल, पलत धादि अनेक वर्णों का होता था । यह मील, साल, पलत धादि अनेक वर्णों का होता था । इसके विषय में वाण ने लिखा है कि यह पुंद्रदेश (वंगाल) से बन कर प्राता था । इसके उने पान में से काट कर चादर, घोती या घन्य वहत्र बनाये जाते थे । दुक्ल से बने हुए उत्तरीय, शाड़ियाँ, मर्कागों, का आई के प्रात्य है । सामा का का प्रवाद के प्रवृत्ति स्पष्ट नहीं है । सम्मतः कुल का अर्थ देश्य या आदिम साथा में कपड़ा था जिससे कीलिक शब्द बना है । दीहरी चादर या पान के एम में किम्रामं भीतिक शब्द बना है । दीहरी चादर या पान के एम में किम्रामं भीते के कारण यह दिक्कृत या दुक्ल वहालाया । यह लोग, प्रवृत्त पाने के एक सोना महीन व वारीक वस्त्र न होकर मोटा या गावा कपड़ा होता था । इसका प्रमाण यह है कि विवाहादि मांगिकक प्रवस्ते पर स्त्रमा करी जिल्ला मालियका के विवाहादवर पर हुमा है । पत्रीएं का उल्लेख मालियका के विवाहादवर पर हुमा है ।

पत्रीएँ का उल्लेख मालियिका के विवाहावसर पर हुमा है । इससे व्यक्त होता है कि यह महीन या बारोक वस्त्र होता होगा। सीताराम सतुर्वेश को प्रकाशित टोका गं कर्ण का खर्य 'कर्न' मिसता है । और फायें कर्न' वस्त्र है । और फायें कर्र १ (१९७१३) में भेड़ को कर्णावर्ती कहा गया है।

१. बामुदेवरारण अग्रवाल : हर्पचरित : एक सास्कृतिक अध्ययन, १० ७७

२. प्रभिश्चा , ४.४

रे. टा॰ मीतीचन्द प्राचीन वेशभूषा, भूमिका, पृ॰ =

४० वही, पृ० ⊏ ।

४. बासुदेवरारसः अप्रवाल : हर्गचरित : एक सास्कृतिक भ्रव्ययन, पृ० ७० ६. वही, पृ० ७६

७. मालः, ५.१२

म. वालिदास ग्रन्यावली, द्वितीय संस्करण, पृण् ३४६

ग्रतः इसका ग्रथं ऊनी-वस्त्र भी हो सकता है। डा॰ मोतीचन्द के ग्रनुसार इसकी रचना नागवृक्ष, लकुच, बकुल ग्रौर वटवृक्ष की छाल के रेशों से होती थी। इसका रंग कमशः गेहुँखा, सफेद और मनखन का-सा होता था रे। नागवृक्ष से वना पत्रोर्ण का कपड़ा पीला, लकुच का गेहुँआ, बकुल का सफ़ेद होता था । वासुदेव जी इसे पटोर रेशम मानते है। इसे भीर स्वामी में की हों की बार से उत्पन्न कहा है। गुप्तकाल में पत्रोर्ण धुला हुआ बहुमूल्य रेशमी कपड़ा समका जाता था<sup>थ</sup>। डा॰ मोतीचन्द इसे जंगली रेशम स्थीकार करते हैं ।

कौशेय-पत्रीर्ण—यह सम्भवतः कौशेय ग्रीर पत्रीर्णवी प्रकार के वस्त्रों से मिलकर बनता था। की शेष को शकार देश का बना रेशमी घरत होता था॰ और पत्रोर्छ हमारे विचार से ऊनी वस्त्र का एक प्रकार होता था । यतः कौशेय पत्रोगं ऐसा वस्त्र होगा जिसका निर्माण जन में कुछ रेशम भिला कर होता होगा।

भंशक भरयन्त भीना और स्वच्छ वस्त्र भाना गया है<sup>५</sup>। कुछ विद्वान इसे मलमल समभते हैं। यह दो प्रकार का होता था, एक भारतीय और दूसरा चीन देश से लाया हुआ, जो चीनांशुक कहलाता था। अन्त प्रश्न उठताहै कि वह मूती वस्त्र याया रेशमी। इस विषय में जैन झागम 'अनुयोगद्वार सूत्र' की साक्षी का प्रमास उल्लेखनीय है। इसमें कीटज-बस्त्र पाँच प्रकार के बताये गये है-पट्ट,

का० मोतीचन्द : प्राचीन वेशभूपा, भूमिका, पृ० ६

२. वही, ५० ५५

٦. वामुदेवशरण अववाल . हर्पचरित : एक साम्कृतिक श्रव्ययन, पू० ८८

 <sup>&#</sup>x27;बकुलवटादिपत्रेषु' कृमिलालोणं कृत पत्रोर्ग्यम्—क्षीरस्वामी ।

बासुदेवशरण अववाल : हर्षचरित . एक सास्कृतिक भ्रष्टययन, प्र० ७७ ٧. हा॰ मोतीचन्द : प्राचीन वेशमुषा, पु॰ १४६

७. वही, प्र०१ (ममिका)

गूश्गविमतेन श्रमुकेनाच्छादितशरीरा देवी सरस्वती ।

<sup>—</sup>वामुदेवशरण बग्रवाल : हर्पंचरित : एक सास्कृतिक भ्रष्ययन, पृ० ७८

वास्येवशरण अववाल : हपँचरित : एक सास्कृतिक झध्ययन, पृ० ७८

---विका०, ४१२

ŧ २ ‡

मलय, असुय, चीनासुय ग्रीर निभिरागे। इससे स्पष्ट है कि यह रेशम के कीडी द्वारा निर्मित कीई रेशमी-वस्त्र होता या। यह देवेत, नील यादि अनेक वर्णों का या। क्वेत रण के अधुक को सिताधुक श्रीर नीलवर्ण के अधुक को नीलाधुक<sup>3</sup> कहा जाता था। अभिसारिका-वैश में नीलाशुक ही घारण किये जाते थे<sup>ड</sup>।

वस्त्रों के प्रकारों का वर्णन करने के पदचात् सबसे पहला प्रदन यही उटता है कि वस्त्र स्यूत होते ये या अनुस्यूत । नाटको मे जरन अहा कटता हु। व वरत स्थार हात था आ अनुसूता । नाहिकी में इसका प्ररवस या अप्रवस्त कोई सकेत नहीं मिलता। मुनुमान यही विया जाता है कि वरत थिना सिले ही पहने जाते थे। 'दुकूल युग्म', 'कीम युग्म', 'कीगेश पत्रीएंयुगल' जैसे शब्द-प्रयोगी से यही सिक्ष होता है कि ग्रारीर की सुरसा के लिए दो वरत प्रयुक्त होते थे—एक मिल्म भाग की प्राहुत करते के लिए, जिसे प्रयोवहरू कह सकते हैं, और द्वारा उत्पर के आग को बकते के लिए, जी स्तरीस कहताता था। स्तनाशुके भी शारीरिक सौन्वर्य-वृद्धि के लिए पहना जाता था। यह माजकल के व्लाउज की तरह सीया नही जाता या वरन मधुक जैसे रेशमी बस्त के दुकड़े को सामने से ले जा कर पीछे गाँठ बाँघ कर उसे स्तनावरक का रूप दे दिया जाता था।

राजकीय प्रसाधनों में वैकत्पिक नेपथ्य का भी उल्लेख हुन्ना है। इसके प्रस्तर्गत शरीर को घलकृत व प्रसाधित करने वाले म्युद्धा-

मनुयोगद्वार सूत्र ३७, श्री जगदीशचन्द्र जैन कृत 'लाइफ इन एन्दोन्ट इण्डिया ऐज दिविवेट इन जैन केनन' प्र. १२६

सिताधुका मगलगात्रमूषस्या पवित्रदुवाँकुरलास्त्रितालका-विक्रः, ३ १२

हता वित्रतेषे । धपि रोजते तेऽय मेऽल्यामरसमितो भीतारामपरियहो-ऽभिसारिकावेश । -विक०, यक ३, ४० १६८

Y. বিস্ণ, মৃক্ট দৃল १৪০ १८ मालं ०, सन १ प ० ३१६

यावहेंच्या विटयलन्तमुत्तरीय तरलिका, मोचयति ताव मया निर्वाष्टित द्यात्मा । —श्रीम० सा०, श्रक ६, प्र० ११६

इयं 🖹 जनमी प्राप्ता स्वदालीकमतस्वरा । स्तेह प्रस्थितिभिन्तमृदृष्ट हो स्तनागुकम ॥

124

रिक उपकरण समाविष्ट हैं। इन उप-बैकल्पिक नेपध्य करणो मे बाभूषण, पुष्प, नाना प्रकार के सुगन्धित अवलेपन एव चूर्ण प्रमुख है। नाटको में भूषणा के लिए ग्राभरणा , ग्रलकार 'तथा मण्डन व का प्रयोग हुन्ना है । रानियां बहुमूल्य रत्नाभूषणा धारण करती थीं । रत्नो मे मर्गि<sup>×</sup>, सूवर्णं ध्यौर मुक्ता का बहुल प्रयोग होता था। शरीर

के ग्रवयवानुसार निम्नाभूपए। उल्लेखनीय है-कान के प्राभूषण के रूप मे केवल कर्ण्यू लिका<sup>ण</sup> का वर्णन

हुआ है। स्वयनवासयदत्त' के द्वितीय भ्रक में कन्द्रक-क्रीडा के समय पद्मावती की कर्णा भुवसा कर्गं कूलिका कान के अपर चढ जाती है । इससे सिद्ध होता है कि यह भाजकल के भूमके जैसा कान के

नीचे तक लटकने वाला आभूपए। होता होगा । गले मे भी मोतियो और रत्नो के नाना प्रकार के हार

पहने जाते थे। हारो से मीत्तिक लब्बक, मुक्तावली कीर एका-वली वैजयन्ती अपूछ थे। मीनितक-कण्डामूचरा लम्बक, जैसाकि इसके नाम से जात

होता है लम्बाहार होताथा। उसके

सन्तिलम्बिद्कुलनिवासिनी बहुभिराभर्गौप्रतिमाति मे । ---मालo, ५ ७ राम-मैथिलि । किमर्थ विमुक्तालकारासि ।

---प्रतिमा०, सक १, पृ० २३

नावत्ते प्रियमण्डनापि भवता स्नेहेन या पल्लवम । --- धभि । शाण. ४ ६ ४. मृच्छ०, सक ४, पृ० २३९

४ सीवशिशमिय यत्कल सवत्तम । —प्रतिमाः, श्रक १ प्र०१३ ६ पाद टिप्पसी न० ४ ५,= इय भर्त्वारिका उत्कृतकणपुलिकेन व्यायामसजातस्वेदविन्दुविचित्रितेन।

—स्व० बा०, सक् २ प्र०६७

ते कुमुमिता नाम प्रवासा-तरितीरिव मीवितकसम्बक्तराचिता कसमै ।

— स्व॰ वा॰, भ्रक ४, पृ॰ ६॰ पीनस्तनोपरिनिपातिभिरानयन्ती मुक्तावलीविरवना पुनदक्तिगर्ले ।

यही नताबिटप एपीकावली वैजयन्ती में लग्ना । --- विक्रव, धक १, ५० १६४

मध्य में मोतियों के बीच-बीच में प्रवाल या मूँगे पिरो दिये जाते थे । मीतियों की एक लंडी माला (मुनतावती ) कहनाती थी । एकावती वैज्ञानक्ती में सम्भवत मुक्तावली जैंसा ही एक लंडी हार था। गोनीनाय राव बेंक्यनती को रहनों के असूहों की उत्तरीसर पित्रवारों से बता हार मानते हैं जिसके प्रत्येक रत्न-समूह में पाँच रत्न विशिष्ट कम से रसे जाते थे। वे अपने मत की पुष्टि के लिए 'विष्णुपुराए' का प्रकरण प्रस्तुत करते हैं। "वैज्ञयन्ती नामक विष्णु का हार पींच महत्तरी वाला है, क्योंकि यह प्वभूतों से बना है। वही पचाइत से पाँच प्रकार के रतने अर्थात महित्र से साम है। स्वी पचाइत से पाँच प्रकार के रतने अर्थात महित्र मालिक्य, पन्ना, नीलम और हीरा का दोष होता है।"

राजमिहिपियों के श्राभूपएा के रूप में केयल श्रगुलीयक का जस्लेल मिलता है। यह नई प्रकार की कराभूवरण होती थीं। नागदि की मुद्रा वडी रहती थीं, जिसमें से केसर के समाग पीजी

किरसें फूटती बी<sup>3</sup> श्रौर किसी में रत्न के मध्य ब्यक्ति का नाम खुदा रहता था<sup>4</sup>। अगुनीयक का उपयोग कभी-कभी श्रीधकार-सुचनार्यं भी होता था<sup>4</sup>।

य नाहातायाः । राजकीय प्रसाघनो से कृटि के श्राभूपरणी काशी सहत्व है। इस

ते बुसुमिता नाम, प्रयानान्तरिवैरिय मेनिनरलम्बर्नरिवता कुसुमै ।

—स्व वा॰, मक ४, टु॰ €०

 दि हिन्दू इक्वोनोग्राभी, भाग १, खण्ड १, पु० २६ तथा अगवतधरण उपाध्याय कालिवास का भारत, पु० ३२६
 गुमुदिनी—महो बकुलावलिका । खिला । देव्या दर मिलिसकाशादानीत

 कुमुदिनी—मही बकुलाविलका । सथि । देव्या दद शिक्षिसकाशादानीत गागमुदासनायसमुनीयक स्निग्ध निष्यायस्थी तथोषात्रस्य पतितास्मि । भनेनामुलीयकेनोद्भिन्निर्एकेषरेण ।

—माल०, ग्रक १, पृ० २६३

४ सन्ति । यदि शाम स राजा अत्यिभिज्ञानम-यरो भवेत्ततस्त्रस्वेदमारम-नामयेयाक्ति भ्रमुक्षीयक दर्शय ।

---समि० सा॰, सक ४, पृ० ७६

 ममागुलीयकमुद्रिकाम् हष्ट्वा न भोक्तव्या ,त्वया हताञ्चा मालविका बक्ताविका चेति । मात्रक, बक ४, ५० ३१७ वर्ग मे मेखला<sup>1</sup>, काची<sup>2</sup> व रशना<sup>3</sup> तीन आगूषण आते हैं। 'माल-विकाग्निमित्र' के चतुर्थ श्रक मे एक ही प्रसग में इन तीनों का एक साथ वर्णन कटि के ग्रामुखस

हुमा है, इसलिए हमारी वृष्टि मे ये एक ही प्राप्तुपर के नाना अभिधान प्रतीत होते हैं। श्रीमती गायत्री देवी वर्मा इत तीनों में भेद स्वीकार करती है। उनके विचारानुसार काची, रशना भीर मेखला सब साथ पहनी आती थी। अपने मत के समर्यन में वह डा॰ मोतीचन्द की 'प्राचीन वेदाभूषा' नामक पुस्तक कै पृ॰ न॰ ७२ पर दिये गये यक्तिएति के चित्र, जिसमे यक्तिणी भिन्न प्रकार की चार लडियो वाली करवनी पहने हुए है-को प्रमाण-स्वरूप उद्धृत करती है।

पदाभूषराों के अन्तर्गत नृषूर्य का नाम भाता है । यह सम्भवत माधुनिक पायजेव या पायल का ही दूसरा रूप था। इससे चलते समय छनन-छनन का मधुर रय जिसे शिजन कहा गया है, जल्प न होती पदामुपरा

थी। इसलिए ऐसा अनुमान होता है कि इसमे छोटे-छोटे पुषुरू लगे रहते थे जो शब्द उत्पन्त करते थे। सीताराम चतुर्वेदी ने त्रपुर का ग्रर्थ बिछुमा किया है<sup>9</sup>।

१ शठ इति मधि तायवस्त् ते परिचयनस्यवधीरसाः प्रिये ।

चरण पतितमा न पण्डि <sup>1</sup> ता विसजसि मेललगापि याचिता ।।

२ बाष्पसारा हेमकाथीगुर्णेन श्रीशीविम्बादप्युपेक्षाच्युतेन ।

(दरावती रदानासधारितवरस्था श्रजस्थेव) । —माल॰, श्रक्ष ३, पृ० ३११

कासिदास के प्रयो पर भाषारित तरकालीन भारतीय संस्कृति,

ष• २२६-२२⊏ भ यया कय देवी स्वयंधारित नूपुरयुगत परिजनस्याभ्यनुजास्यति ? ሂ

मैवदयामा दिशी हष्ट्वा मानसोरसुक्चेतसाम् ٤

कुजित राजहसाना नेद नुप्रशिक्तिम । **—**विक⊙, ४३०

भातिदास प्रधावली (दितीय सस्कर्श), दिसीय खण्ड, मृ० ३०६

रनिवास के बहुमूल्य आभूपएों को स्रक्षित रखने के लिए ब्रावृतिक लॉकर (Locker) जैसी एक पेटिका होती थी जिसे भाभरण-मजपा कहा जाता था।

श्राभूषराों के परचात् पुष्प प्रमुख ऋज्ञारिक उपकररा माने जाते थे । अन्त पुर की नारियाँ ऋत्वानुकूल<sup>२</sup> पुष्पों से अपने केश और शरीर को अलंकत करती थी। पूष्पी का

पूर्व श्रीर स्रवलेपन भाभूपएरो के रूप में भी उपयोग होता

या। पूप्पो के भवतस भीर हार<sup>3</sup> प्रिपक प्रचलित बासूपरा थे। पुण बीर पूज-माताब्रो से खुङ्गार करने की प्रया प्रस्थन्त प्राचीन है और साहित्य में भी इसका पर्याप्त उल्लेख मिलता है। जातक-प्रन्यों में पुष्प-मातामी भीर पुष्पाभरणो का उल्लेख मिलता है। (प्रसाद ने भी पुष्पाभरएरो का उल्लेख विया है) र । अवलेपनो के अन्तर्गत रक्त-चन्दर्म , अलक्तक , वालागुर चन्दन<sup>दे</sup>, भोष्ठ राग<sup>द</sup> ब्रादि भवलेपन का प्रयोग शीतलता भौर सगन्धि के लिए होता था।

भालोच्य नाटकों में राजप्रासाद का भी भव्य वर्खन मिलता है।

 (ध) पुत्रविजयनिमिल्लेन परितीयेणान्त पुराणामारणाना मजुपासिम ---माल, सक ४, ५० ३४४ सब्ता ।

प्रत ख्रानता परिजनेन सम परितीयनिमित्त बनुलसरलसर्जार्जनस्य-नीपनिष्ठभप्रमुद्योगि मेथकालवरुलमानि परममुरभीण्यानीयमानानि मामु-म्मादयन्ति । —धविक, धक ४, प्रक १२२

भनंदारिकाय समनीएक मना रोवते । ---धवि०, धरु ४, ५० ६४

मृश्लिकालक, २,१०,१५२

¥- राज्यश्री, १.११, १ १३, १.१४

६. देव <sup>।</sup> प्रवातशयने देवी निषण्णा रक्तचन्दनथारिणा<sup>...</sup> तिप्रति ।

—नास॰, सस ४, पूर ३१७ ७. चारपदपत्तिरलक्तवाका । -- विक०, ४१६

 " वालागुरुचन्द्रवाद्योः" । --- घविमारक, ५१

६ हतोध्ठरामैनंबनोदविन्द्शि '''। --- বিক্**.** ४.१৬ 'मालविकानिनिन' के चतुर्ष श्रक मे राजा धारिणी धीर इरावती के भ्रय से चौर मार्ग द्वारा वन मे जाता है। प्रमद वन मे नाना प्रकार के पुणों और फलो से लंदे हुए बुद्धा बाले कुंज होते थे'। अधि, नानी श्रीर पुणों और फलो से लंदे हुए बुद्धा बाले कुंज होते थे'। अधि, नानी श्रीर पुण से वचने के लिए इसमें लता मण्डप होते थे जिनमें विश्वामां में प्राप्त पाने पाने प्रत्य को पहियां जगाई जाती हैं। पग्न पाने पाने के कलरत से वन सदा मुजित रहता था'। भगवतशरण जी के शब्दों मे सम्भवत प्रमद-चन में चिडियापर भी होंने थे'। यहाँ मनोविनोदार्ष पग्न पिक्यों के चिन्नों से विश्वामां के चिन्नों से विश्वामां के विन्नों से विश्वामां के सिन्नों के विष्त कुनम नेशामंत्री' का भी निर्माण किया जाता था। मानाविय जलकरा से परिपूर्ण दीविकार्ण में आपिकणों को चतुर्विक फैलाने बाले बारियन्त्र वन-कश्मी की श्री मे चार बंद लगाते थे। बसल मास में तो प्रमदनन यथार्थ म अपनी अभिधा को सार्थक रद्धा पर। स्वन्त-नश्मी साला कार्यक स्टादा पर। स्वन्त-नश्मी साला कार्यक के साथ बाहर निक्लती थीं के साथ वाहर निक्लती थीं के साथ वाहर निक्लती थीं के साथ कार्य रहार के साथ बाहर निक्लती थीं के साथ कार्य के साथ बाहर निक्लती थीं के साथ कार्य के साथ बाहर निक्लती थीं के साथ के साथ बाहर निक्लती थीं के साथ कार्य के साथ बाहर निक्लती थीं के साथ कार्य के साथ बाहर निक्लती थीं के साथ कार्य के साथ बाहर निक्लती थीं थी

नित्य पुष्पक्षकाद्यपुष्पत्र देसावन हटा स्याः ।—स्रिकः २ ६ २ गपः मिर्णिनतापट्टनसनाकोऽतिमुक्तनतासण्योः । —विकः०, धवः २ पृ० १७४

कव्यकुरदुविभित्रे निपोदति तरोमूने विधी

निर्मिश्चोपकारिमुकुतान्यातीयते पद्पद । तप्त वारि विहास तीरनित्ती कारण्डव रोवते

भीडावस्मनि चैव पजरणुक बनाती जन यावते । —विक०, प भगवतगरण स्वाच्यायः कालियास का भारतः भाग २. १० ४७

भी वयस्य क्रिमेतरवननारागांचि प्रमदयनसभीपमतक्रीवापनन पर्यं ते हस्यते ।

७ निद्रशोपात् पिपासु परिसरित शियी भ्रातिमद्वारियात्रमः । —माल०, २१२

एतत्त्वतु भवात्रिमः विशोमधिनुकामधा अभदवनलश्य्या युवतिवेषानग्या प्रमृत्तेष स्थानश्या अभवत्र्यम् ।
 प्यतृत्त वसः तद्वभाननेपय्य गृहीतम् ।
 प्यतृत्त वसः तद्वभाननेपय्य गृहीतम् ।

राजकुल के बहिर्माण में बर्शनीय वस्तु राज-प्रासाद होता था। इसमें राजा के वैत्रक के अनुसार ब्रानेक मृह स्रीर अवन होते थे जिनका अपना अपना वैतिष्टम होता था। ये सभी भवन सुन्दर श्रीर सुत्तिज्ञत होते थे। इनम निक्निलिक्षित उल्लेबनीय है—

यह भवन जैसाकि इसके नाम से जात होता है, सम्भवत मिलामय होता होगा अर्थात् इसके निर्माण मे मिणमय उपकरणो का

वहुत प्रयोग होता होगा। इसकी सीढियाँ १ मिराहम्यं भवन गगा की तरगो के सहस ग्रुज स्फटि मणि की वनी हुई होती थी । यह प्रदोप-

काल म बड़ा रमणीय एक मनमोहक प्रतीत होता था? । इसकी छत से चन्द्रमा प्रत्यन्त स्पष्ट दिखाई देता था । प्रतएव व्रत के दिन रामियाँ इसी भवन से चन्द्रमा के दर्शन करती थी? । पी० के० आचार्य ने इसकी ध्यारपा इस प्रकार की है—' एक कपरी मणिल, एक स्कटिक भवन, रक्त-कटित प्रताह''

यह भी एक प्रासाद विशेष था। 'मयूरस्थित्यर्थ यट्यो यन स्थापिता स सीषविशेष" इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह सम्भवत ऐसा प्रासाद था जिसमें मयुरों के

२ समूरयध्टि प्रासाद<sup>ध</sup> विश्रामार्थं यप्टियाँ सगाई जाती थी। इसमें अनेक कस होते थे<sup>द</sup>। प्रातप रक्षरण

इसम अन्य क्या वात पर्स्या के लिए एक मणिमय कक्ष की रचना की जाती थी, जो मणिभूमिका क कहलाता था।

१ एतेन गगातरगसश्रीवेशा स्फटिकमशिसोपानेनारोहतु ।

४ पी० वे ॰ भाषाय एनसाईबनोपीडिया भाष हिन्दू भाकिन्वनर, मानसार सीरीज, भाग ६, पु० ३९४

४ मयूरयष्ट्रिमुखे। — प्रतिका० मन २ ५० ६६

६ प्रतिकार्योग घडायस भी प० कपिलदेविगरि कृत संस्कृत टीका पू० ६६ ७ म्रातपत्रतिकल्यार्थं मुख्यिममिकाया प्रवेगयेत्याजापय ।

--- प्रतिज्ञा॰ सक २, पृ० ६६

प्रमद-वन में एक दोला-गृह भी होता था। इसमें भनेक भूले पड़े रहते थे। राजकीय उत्सव या समारीह के अवसर गर प्रयवा रानी की इच्छा होने पर राजा-रानी इसमें भूला भूलने का धानन्द प्राप्त करते थे। 'मालविकानिमित्र' म रानी इरावती पूर्व निस्चय के धनुसार नियुणिका को साथ लेकर राजा के साथ भूला भूलने के लिए प्रमद-बन जाती है'। वसन्त माश में वसन्तीत्सव के प्रवसर पर प्रमद-वन से दोलोत्सव भी मनाया जाता था। प्रमद-वन की रक्षा के लिए उदान-पालक भीर उद्यान-पालकाएँ भी नियुवत होती थी।

१ समेव प्रयमावतारकुमगानि रत्तुर्यवनाध्युवायन प्रेट्य नववसतावतार स्वर्यदेतेनेरावरमा निपुणिवानुभेतन प्राचितो भवाम्—इन्ह्यस्यायंपुनेण गर्द दोनापरोहरणमनुभवितुनिति । अवनाव्यस्य प्रतिज्ञानम् तरप्रस्टवनेष गन्द्रायः । — मालक, स्वर ३, १० १६३ २ नोहर्गत विनातीरूना प्रमद्यनपाना । — अभिक, स्वर ३, १० १४

२ नादेनैव विमानीहृता अमदवनपाना । — स्विमान, अम ३, १० ४८ ३. सद्यानस्त्रमदवनपानिका मधुन रिकामा चिष्यामि ।—माल०, स्वव ३, १० ९८०

४ मधैव प्रवेष्ट्रय बन्यापुरम । — मवि०, भ्रष्ट २, ४० ४३

भमाश्य भाषभूतिक क्यापुररक्षक कार्गिराजञ्जेत सह भरमाक महा-राजन पूजित ...। ——स्विक, सक २, पृष्ठ ४३

७. उत्प्रदेशित इब भवननानेन स्वर्ग ।

मिलता है। थी गणपति बास्त्री ने सूर्याप्रुप्त प्रासाद दी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'सूर्या विवाह देवता सा ४ सूर्याप्रुख-प्रसासाद मगलार्थगजलक्ष्म्यादि देवतावत् दार-

चिनामुक्तीणां मुखे यस्य प्रासादस्य स. सूर्यामुखप्रासाद "१ । उन्होने सूर्या का बर्ष 'विवाह देवना' किया है । उनके मनानुसार यह ऐसा प्रासाद होता होगा जिसके प्राप्त भाग में परवर या काष्ठ पर चुदी हुई विवाह देवता (सूर्या) की प्रतिमा सुद्यो-भित्त होती है ।

यह भी श्रन्थ प्रासादों के समान एक विशिष्ट राज-प्रासाद होता था। प्रासादों के नाम प्रासाद स्वामियों की इच्छा के श्रनुसार

नहीं रते जाते ये वरम् उनके वैशिष्ट्य ५ मेघ प्रसिच्छल्य<sup>२</sup> के आधार पर रखे जाते थे। मानसार किंचित् भिन्न नाम 'मैघकान्स' से 'मैप-

ाकायत् । अन्त नाम 'सथकातः स 'सप-प्रतिच्छन्द' का सकेत करता है। उसके अनुसार यह दस-मजिसे प्राप्तादों के वर्ग मे आता है?।

- ६ वेषच्छात्वक<sup>४</sup>----यह भी मेचप्रतिच्छन्द जैसा ही प्रासाद होता होगा ।
- शान्ति-गृह "---राजभवन मे अभ्यागतो के विद्यामार्थ शान्ति-गह भी वनाये जाते थे।

राजभवन के बहिशींग में एक 'उपस्थान-गृह' या आस्थान-

रै साहित्याचार्य पी० पी० धार्मा कृत स्वप्नवासवदत्त की हिन्दी टीका, पु०१६३

२ अपुष्टरपण केनापि सध्येनातिकस्य भेषप्रतिबद्ध दक्ष्य प्रासादस्याप्रभूमि-मारोपित । ——प्रभि० चा०, सक ६,पू० १२४

३ भगवतरारण उपाध्याय─कालिदास का भारत, नाग २, पृ० ४६

४ तपावरस राजा धर्मासनगत इत धायाति ताबदेतिसम्बियत जनस्याते देवच्युन्दनप्रासाद धारह्य स्वास्य । विक०, सक २, पृ० १६७

प्र मार्वे । सान्तिगृहे मा प्रतीक्षस्य । प्रतिकार, एक १, पृरु ४१ ६ किस्मिन् प्रदेशे वर्नते स्वामी ? कि वर्षीपि उपस्थानगृहमेतत् ।

<sup>—</sup> अवि०, मक १, पृ० प

राज-प्रासादो के श्रन्तगंत समुद्रगृह" भी होते थे। श्राचार्य रामचन्द्र मिश्र के अनुसार यह कृतिम समुद्र या जलाशय के समीप

स्थित प्रासाद होता था<sup>3</sup>। जिस प्रकार ३. समुद्र-मृह विद्यापर्य कृत्रिम कोटी जंलादि बनाये काते ये उसी प्रकार कृतिम समुद्री का भी निर्माण होता था। 'सरस्यपुराण' में इसको पोटराभूज दुर्मखना

प्रासाद माना गया है। यह धन्त पुरीय प्रमदबन के निकट बनाया जाता था। यह धोरमकाल में विश्वाम और विहार के लिए 'मावन-भारों का लाम करता था। जिस प्रकार सावन-भारों में बैठकर मनुष्य शारीरिक एक मानसिक शास्त्र जारता है उसी प्रकार समुद्रध्य क्लान्त एक परिश्वान्त राजवनं के लिए शास्त्र-स्थल था'। 'मालविकानिनिम्न' के चतुर्थ धक में राजा मालविका के साथ इसी गृह में विहार करता हैं। भगवतवारण उपाध्याव के अनुसार यह चर्छ दिक कल्लारेदार फरनो से परा हुआ (यहार-भवन होता पार। 'भीवत्य पुराण' के भी 'समुद्र' का उल्लेख हुआ है जो इसी प्रसार

का सकेत देता है। राजहरूमों के श्रम्तर्गत सूर्यामुख श्रासाद<sup>क</sup> का भी उल्लेख

समुद्रगृहे सक्षीसिहिता भारतिका स्थापविश्वा ।
 —मांस०, सक ४, पू० ३२४

पोडसाल समताच्च विजय स समुद्रकः 1

पारवेंगोर बन्द्रशातेऽस्य उच्छाबो भूभिकाङ्यम् । —मस्स्य पुरास, २९६ १८

—मरस्य पुराण, २२६ १८ ४ एप हि महारात ः राममरथ्य गञ्जलमुपावर्तायनुमशक्तः पुत्रविरहः श्रीवानिना दम्बहृदय उन्मत्त इव बहु प्रचपन् रागुद्रशृहके रागान ।

— प्रतिगा∘, शक २, पृ० ४७ ५ माल ०, सक ४, पृ० ३२५

५ मालः , सकः ४, पृ० ३२५ ६ भगवतरारुग जपाध्याय कालिदान का भारत, भाग २, पृ० ४७

६ भगवतरार्श जपाध्याय कालिदान का भारत, भाग २, पृ० ४७ ७ समुद्रम्थगरहमदिवर्धनकुजरा ।

ग्रहराजो वृषी हता सर्वतोभवको घट । — प्रविष्य पुरास, १३ २४ । एप भर्ती सुर्योपुलप्रासादादवसरति । — स्व० वा० चक्, ६, १० १८०

मिलता है। श्री गणपति सास्त्री ने सूर्यामुख प्रासाद की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—'सूर्या विवाह देवता सा ४. सूर्यामुख-प्रसासाद मगलार्थगजलक्ष्म्यादि देवतावत् दार-

विलाघुकीणां मुखे यस्य प्रासादस्य सः सूर्यागुलप्रासादः" । उन्होन सूर्या का श्रवं 'विवाह देवता' किया है । उनके मतानुसार यह ऐसा प्रासाद होता होगा जिसके सप्र भाग में पर्यर या काष्ठ पर खुवी हुई विवाह देवता (सूर्या) की प्रतिमा सुक्षो-भित्त होती है ।

यह भी अन्य प्रासादों के समान एक विशिष्ट राज-प्रासाद होता था। प्रासादों के नाम प्रासाद स्वामियों की इच्छा के अनुसार

मही रत्ने जाते वे वरन् उनके वैधिष्टम ५. मेप प्रतिच्छाव<sup>च</sup> के चाचार पर रत्ने जाते थे। मानसार

किंचित् भिन्न नाम 'मैथकान्त' से 'मैप-प्रतिच्दन्द' का सकेत करता है। उसके अनुसार यह दस-मजिले प्रासादों के वर्ग में आता है<sup>3</sup>।

- १. देवच्छ्य्दक<sup>प</sup>—यह भी मेमप्रतिच्छन्द जैसा ही प्रासाद होता होगा ।
- शास्ति-मृह्<sup>x</sup>—राजभवन में घ्रश्यागतों के विधामार्थं शास्ति-गृह भी वनाये जाते थे।

राजभवन के वहिभाग में एक 'उपस्थान-गृह' या प्रास्थान-

साहित्याचार्य पी० पी० दार्मा कृत स्वप्नवासवदत्त की हिन्दी टीका, पृ०१८३

मद्पुन्गेण केनावि सक्वेनातिकस्य भेषप्रनिन्द्वन्यस्य प्राचादस्याप्रमूमि-मारोपितः ---धिम० शा०, धक ६,५० १२४

३ भगवतशरण स्पाध्याय—कालिदाम वा भारत, भाग २, पृ० ४६

तथावरस राजा धर्मां धनगत इत घायाति तायदेतस्मिन्यरल जनस्याते देवच्द्रन्दकप्रासाद धारुहा स्यास्ये । विक०, धक २, पृ० १६७

५. भार्ये ! साम्बर्धः मा प्रतीक्षस्य । प्रतिकार, धनः १, पृरु ४१ ६. मस्मिन् प्रदेशे वर्नते स्वामी ? कि व्रवीपि उपस्थानमृह्येतस् ।

<sup>—</sup> स्रवि०, सक १, ५० व

मण्डण भी होता था। इसको हम देवी मापा म दरवारे-धाम' भी कह सनते है। उपस्थान ग्रह भा बर्थ है— 'यन स्थित्वा राजा प्रकृति-भिस्पास्तरें अर्थात ग्रहीं अपा देवनद राजा ग्रेच उपसाना करती है। इस ग्रह में राजा का दरवार लगता था जिसम राजा की पट्टमिंहिए), जिसे 'देवी' नाम से सम्बोधित निया जाता था भी उसके साथ वैटली थी'। दरवार म राजा प्रजा की समस्याओं की मुनकर उन पर ध्यानपूर्वक विचार करता था। समा-मबन में सर्वसाधारण का निवधि प्रवेश प्रमुक्त थार।

सभा मण्डण का एक घाग मन्त्रशाला होती थी। यह स्थायी नहीं होती थी। वर आपत्रशालीन स्थिति में मुस मनणाध्यों के लिए राजा की माहा से इसकी रचना में जाती थीं?। यहाँ राजा धामने मिन राजाओं भीर प्रधान सभासदों के साथ गुढ़ निषयों पर विचार विमयों करता था?। मन्त्रशाला में समस्त राजाओं थीर सभासदों के लिए सथायोंग्य मासन होते थें। राजा के शाला में प्रवेश कर प्रपना प्रासन प्रहुए करते के उगरान्त ही सब लोग धपना प्रपना प्रासन प्रहुए करते के उगरान्त ही सब लोग धपना प्रपना प्रासन प्रहुए करते थें। राजा के यूर्व प्रसन प्रस्ता प्रहुए अपने प्रोप्त प्रसन प्रहुए करते थें। राजा के यूर्व प्रसन प्रकृत सम्मन प्रहुए करते हैं के प्रयम प्रकृत के जब दुर्योचन प्रपन प्रमन प्रदि हैं किया को प्रापत के प्रयम प्रकृत है तो वे बोग प्रापत्ति पहुंच करते हैं। शाला के स्वाप नहते हैं के भीर कहते हैं कि 'महाराज' झाप नहीं बैठंग के हिए सहता है तो वे बोग प्रापत्ति प्रहुए करते हैं। शाला के

१ प्रमे महाराजो देश्या सहारते । — विजि॰, सक् १ पृ० १५ २ कि विवीधि—-उपस्थानग्रह इति । श्रतस्थवाकनीयेष भूषि । यावद् प्रविद्यामि । श्रवि॰, प्रक १, पृ० १५

उत्पनि यातराष्ट्रास्ता विरोध पाण्डवै सह ।

म त्रज्ञाखा रनयति भूरते हुयोँघनाज्ञया ॥ — दूनवावय, १२ ४ महाराजो दुर्योषन समाज्ञापयति—अद्य सवपाधिव सह सत्रिष्टु मिण्द्रामि ॥ — दूतवावय, यक १ पृ० ३

४ मापार्य <sup>1</sup> एतत् कूर्मासनम् बास्यताम् । पितामह् <sup>1</sup> एतत् सिहासनम् म्रास्यताम् । मातुन<sup>ा</sup> एत-पम्रसिनम् बास्यताम् ।

<sup>---</sup>दूतवाक्य, श्रव १, ५० ६

बहिद्बार पर कचुकी द्वार-रक्षक का कार्य करता था। यदि दूतादि कोई व्यक्ति राजा को कोई समाचार देना चाहता तो वह पहले मजुकी द्वारा धपने धाने की सूचना राजा के पास भिजवाता था। कजुकी जब उसके प्रवेदा नी अनुमति ने आता तभी वह ज्ञाला के अन्दर प्रवेश कर सकता था।

राजकुल में घामिक कियाओं—हमनादि—के लिए एक प्रीम-गृह या धन्यागार होता था। इसे धनिकारण भी कहा जाता था। यह स्वान तपस्वियो धीर शत्वियों के धन्यवेंना के योग्य समफा जाता था । जब कभी धान्यमासी न्द्रियाण राजा के पास धाते ये तो वह इसी गृह में उनका धीमनन्यन बरता था। यह स्थान सदा सम्माजित रहते के कारण मनोहर प्रतीत होता था । यो नूष धादि के लिए यहाशाला के धीनिव से गायों की ध्वस्था थी था।

राजा के बैभव के मनुसार नानाविध बहुमूल्य उपकरणो से संजित राजगृहो, प्राप्तादो तथा धारधानमण्डप के प्रतिरिक्त धाननागार", शस्त्रधाला", संगीतधाला", नीडावेस्म",

—दूतवाक्य, श्रक १ ए० **७** 

 <sup>(</sup>प्रविच्य) नकुतीय — जयतु महाराजः । एव खुलु पाण्डवस्त पाद्याराद् वीत्येनागतः पुरुषोताम नारायसः ।

२ राजा—क्षेत्रवर्ति रं व्नधरणमार्थमदिशयः।

<sup>—</sup> মদিল য়াল, থকা ২ দুত ইতই

रे महमप्येतास्तपस्विदशनोवितप्रदेशे प्रतिपालयाम् ।

<sup>—</sup> ऋभि सार, ऋक ५ पृरु ६०६ ४ एपोऽभिनवसम्मार्जनसङ्गीक । — ऋभिरु सार, ऋक ५ पृरु ६८०

एपार्शननवसम्माजनसम्माज । — साम्र० सा०, सक् ५ पृत २८०
 ५ सिनिहित्तहोभयमुरिनित्तरस्मालिन्द । — मिन्न भाग प्रक ५ पृत २८०

६ वेत्रवति । पर्यातु लोऽस्मि । धयनभूभिमागमदेशय ।

<sup>—</sup>श्रीमः सार, सक्ष ४ ए० ६६ विस्तीर्गो सस्त्रसाला बहुविषकरणै सस्त्रीरुपविता १ —द्वतवान्य, १ ११

विस्तीर्णा सम्त्रसाना बहुविषकरण् सस्त्रैरुपनिता । —द्वायाक्य, १ ११
 प्रस्मा हस्तिशानाया पाश श्वित्वा क्षिपामि । —य्विव, ग्रक ३, ५० ७५

६ भो नयस्य । समीतदालान्तरेऽवधान देहि ।

<sup>——</sup>शीव धाव, सक ४, पृष्ठ २६३ १० श्रीडावश्मनि चीप पजरञ्जूक बनान्तो जल यावते । —विकार, २ २

सारभाण्ड-गृष्ट्री, चतु शालरे, भगल-गृह्य, प्रवातशयन आदि भी

राजकूल के ग्रन्तगैत समाविष्ट थे। विवेचय नाटको मे राज परिवारीय जीवन पद्धति के साथ-साथ राजकीय उत्सव, मनोविनोद एव कीडाग्रो का वर्णन भी उपलब्ध है।

राजाओं के व्यस्त एवं कर्मंड जीवन में धामीर-प्रमोट ग्रानन्द एवं जल्लास का स्रोत संचारित

करने के लिए श्रामोद-प्रमोद का भी विधान था। उत्सवी एव समारोही में राजा और प्रजा पारस्परिक

भेद-भाव भुलकर सम्मिलित रूप से मनोविनोद करते थे।

राजकीय उत्सवों में बसन्तोत्सव का विशिष्ट स्थान था। इसको 'ऋतरसवर' और 'वसन्तावतार' की सज्ञा से भी अभिहित

किया जाता था। वसन्त ऋतु के आगमन पर कामदेव की प्रतिष्ठा में यह उत्सव बसन्तीरसव

मनाया जाता था। इस अवसर पर नगर में कई दिनो तक हुए एव उल्लास का साम्राज्य छाया रहताथा। न नेवल पुरवासी अपित प्रकृति भी वसन्त के स्वागत के लिए तैयारियाँ

प्रारम्भ कर देती थी है। ऋतुमगल-हप लाल, पीली, हरी ग्राझ-मजरियो १ सा ललु तपस्वनी तथा पिगलाक्या सारआण्डभूगृहे गृहायामिव निशिप्ता ।

—-मालव, शक्त ४, प्रव ३१**४** 

कि भएसि, चतु शाले वर्तते इति । --- प्रसिच, ग्रम २, ५० ३६ В

मगलगृह भासनस्या भूता । --- मालo, सक ४, पo ३३६ देव ा प्रयासकायने देवी --- माल०, खक ४, पु० ३१७

ĸ मनारगरो ! देवेन प्रतिपद्धे वरान्तीत्सवे स्वमाग्रविकाभगमारमसे ।

— समि० सा०, सक ६, प्र० १०३

कि नू लुल् ऋतुत्सवेऽपि निरुत्सवारम्थभिव राजकुल इश्यते । — धगि० शा०, स्रक ६, ए० १०१

भरीव प्रथमावतारसभगानि नववसन्तावतारव्यपदेशेनेरायस्या ।

—मालक, धक ३, पूरु २६३ t रक्तदाकिञ्चा विश्वेषितगुर्गो विम्वाधरालक्तक

प्रत्याख्यातविदेशयक कुरवक दयामावदातारुएाम् । श्राकात्वा विवक्तिया च विवक्षीलंक्विटरेफाजन

> सावज्ञेव मुखप्रसाधानविधी श्रीमधिबी बोपिहाम् ॥ ---मोल०.३५

से भगवान अनंगदेव की अम्यर्चना की जाती थी। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में मधुरिका ग्रीर परमृतिका नामक चेटियाँ ग्राम्न-मंजरी से धनुर्धारी कामदेव की पूजा करना चाहती हैं । विशेष परिस्थितियों में राजा की ग्राजा से वसन्तोत्सव का ग्रायोजन स्थगित भी कर दिया जाता था ै।

यसन्तोत्सव के बन्तर्गत ब्रशोक-दोहदोत्सव भी मनाया जाता था । कालिदास के 'मालविकान्निमत्र' नाटक में इसका विशद उल्लेख किया गया है । वसन्त-मास में अशोक के पुष्पित न होने पर उसके दोहद-निमित्त इस उत्सव का झायोजन किया जाता था। प्रायः झन्त.पुर के प्रमद-वन में झहोक-दोहब का समारोह सम्पन्न होता था। 'सुन्दर रमग्री के पदाचात से ब्रजीक पुष्पित हो जाता है' इस पुरातन मान्यता के अनुसार वस्त्राभूषणों से अलंकत राजमहिपी वाम-पदाघात के उसे प्रताहित करती थी। रानी के अस्वस्य होने पर कोई सुन्दरी रानी के नूपर पहन कर अज्ञोक-दोहद के कार्य को सम्पन्त करती थी। 'मालविकाग्निमित्र' में महारानी घारिखी के अस्वस्य होने पर मालविका ही रानी के मूणुर पहनकर अशोक बृक्ष पर पदाधात करती हैं<sup>थ</sup>। खगोक-दोहद के लिए नियुक्त रमस्मी को राजसी अलंकारों से मण्डित किया जाता था । उसके पैरों में बड़े कलात्मक ढंग से महावर लगाई जाती थी स्त्रीर कानीं में अशोक-पत्र का कर्णावतंस पहलाया

६. भाद्रीतक्तकमस्यादवरण मृत्यमास्तेन घोष्यत्यम । ----माल०, ३.१३

सन्ति ! प्रवलम्बस्य मां यावदप्रपादिस्यता भूस्या चुतकलिकां गृहीत्या काम-वेबार्खनं करोसि ॥ — ग्रिभि० सा०, श्रंक ६, प० १०२ २. यद्यनेन जनेन श्रीतव्यं कथयत्वयं कि निमित्तं भर्ता वसन्तोरसवः प्रतिपद्धिः ।

<sup>---</sup>प्रभि० धा०, शंक ६, प्र० १०४ ३. युक्त नाम प्रत्रमवतः प्रियवयस्योध्यमशोको ननु वामपादेन वाडियत्म ।

<sup>—</sup>मालंब, अंक ३, पुरु ३० ६ तर्कवामि दोलापरिश्रप्रया सङ्जचरणया देव्याऽशोकदोहदाधिकारे मालविका

नियुक्तेति । भ्रम्यया कथं देवी स्वयं धारितं नुपरयुगुलं परिजनस्याम्यनज्ञान स्यति ? —माल०, अंक ३, ५० ३०२ ·५. राजा-कथमदोकदोहदनिमित्तोऽयगारम्भ ?

विदूषक —विनु खलु जानासि त्वम् । मम कारशाहैवीमामन्त.पुरनेपथ्येन योजविष्यतीति ? —मालव, श्रंक ३, पव २६६-३००

जाता था'। अद्योक के पुण्पित होने पर उनकी प्रमुत लझ्मी को देखने का भी उत्तन्य मनाया जाता थां । राजा रीजमहिषियो एव परिचा-रिकामो सहित कुनुम-समृद्धि के दर्शन करता थां । इस प्रवसर पर ब्राह्मण को वसन्तोक्ष्यनीपायन रूप दिलाणा भ्रादि औ दी जाती थीं ।

यसनोत्सव के अवसर पर नवनग्तागमन के उपताश में राजा-रानी दोलाधिरोहण से भी खानन्द आस करते में?। रानियाँ सम्मवत मस्रिगेमसा होकर भी भूला क्रूमती थी। 'मालविकामिमिमन में रानी इरावती मंदिरा पान कर राजा वे साथ भूला भूमने जाती हैं। राजाधी के मूले एवं विजय गृह में लगे रहते थे, जो बोलाग्रह" कहलाता था।

स्तरनोत्मव के मवसर पर साहित्यिक स्पकों का मिनन भी होना या। इस प्रवनर पर समिनीत स्पक (नाटक) साधारण जनता के लिए भी दर्शनोपनथ होने थे। 'मालविकानियमित्र' नाटक वमन्तो-स्वव पर ही सुर्वप्रथम जनता के समस समिनीत हुआ था"।

१ एयोऽयोक्तशाकावलम्बी पल्लवगुष्ट । श्रवनसर्वेशम्

—-मालव, सक ३, प्रव ३०६

२ देवी विज्ञापयति—तपनीयागोजस्य द्वसुमबह्दगतीन समारम्भ सफतः कियतासिति । —सात्तव, सक ४, पृट १४२

यमाईसम्मानसुखितमन्तु पुर विद्युग्य मालविकापुरोगसास्मन परिवर्तन सह वेव प्रनिपालयति । —मालव, म्रुक ४, १४२

४ वतन्त्रीरसवीपायनकोलुपेनार्यंगीतमेन नियत् स्वरता भट्टिनीति ।

नाटकमस्मिन वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमिति ।

—माल०, शक ३, पृष्ठ ३०१

प्रवयसन्तायतारव्यपदेनेनेदाव यानिपुरिएकामुखेन प्राधितो भवान्— इष्द्रान्यायैपुत्रण सह दोलाधिरोहणमनुमितित्वि।

——माल०, धक ३, १० २६३ ६ नेडि <sup>1</sup> मदेन क्लाम्यमानमात्मानमार्वेषुत्रस्य क्टोंने हृदय त्वरयति । करणी पूनर्ने मम प्रवरत । ——भात०, धक ३, ४० ३०१

प्रमासन् स्व देशे दोनागृहम् । — मालन, मक ३, पूर्व २०१ प नुतु सम्प्राप्ते स्वी दोनागृहम् । — मालन, मक ३, पूर्व २०१ स्मिहिबोर्जस्म विद्वत्यरियदा वासिदासग्रियवनस्तु मालविकानिमित्र नाम

— मातe, बक १, पू॰ २६१

राज्यों से राजमल्लों को श्रामन्थित भी घनुर्महोत्सव किया जाता था। ये मल्ल परस्पर करण. सन्य ग्रीर ग्रावन्य प्रहारी से युद्ध करते थेरा कंस के राजभवन में चाणूर ग्रौर मुस्टिक नामक दो विकट मल्ल ये<sup>3</sup>। राजा प्रासाद में वैठ कर मल्लयुद्ध का ग्रामन्द लेता था<sup>४</sup>। राजा के ग्रादेश के साथ ही भट माला फैंक कर युद्धारम्भ की घोषणा करता या । युद्ध से पूर्व संख्यपटह बजाये जाते थे: । राजनगर नववब्र की तरह सजाया जाता यो । राजपय व्यजा, पताका, पुष्प, मालाझों एवं झगरे धूपादि सुगन्धित द्रव्यों से मण्डित एवं न्यूगिन्धन किमे जाते ये ।

राजकीय समारोहों में वर्षवर्धनोत्सव भी परिगणिन था। राजा का जन्मदिवस बड़ी धूम-धाम ने मनाया जाता या। राजा ग्रायुवर्धनार्थ जन्मकालिक नक्षत्र की पूजा करता थान वर्षवर्धभीस्मव श्रीर महत्यों गायों का दान करता था।

गोदान के लिए नगरीचान के मार्ग पर मयुरामा धनुमंहो नाम गहोत्सको अविध्यति ।

—बा० घ०, बक ४, प्०६४ मिद्रयकरण्यन्यावन्यमहार्रगृहिक्शिपैः सिद्धि गण्द्रामः ।

-- वा॰ व॰, ग्रह ४, प॰ ७० गन्द ! यमानिदिष्टीनाणूरमृष्टिमी प्रवेशय --- वा॰ च०, ग्रंक ४, पू० ६०

४. यावदहमपि प्रासादमारुहाः · युद्धं प्रस्यामि ।

--- वा० व०, यक ४, ५० ६६

देशिये, बा॰ च॰, श्रक्ष ६, प॰ ७२

बादमञ, बादयन सस्यपटहान् । एप इदानीं नन्दगौषपुत्र उत्सवाधिकारीज्ञित्वज्यज्ञपनाकमवसक्तमान्यदा-

---बा० च०, ब्रह ४, पु० ७२ मालङ्कतमुरयावितागुरपूपसमाञ्चस राजपथ प्रविदय\*\*\*\*\* ।

---बा॰ च॰, घडु ४, प्॰ ६७ जमनेत ! जन्मनक्षत्रिकाश्यापुनस्य महाराजस्य कावदकालनिवेदन मन्य-मुत्पादयनि ।

---पचराथ, बादु २, व्० ४८

सवत्सा गाएँ सजा दी जाती थी । गोपवालक और गोपबालाएँ नवीन वस्त्राभूषाणों से सज-धज कर ज्ञानन्द-मगल मनाते थे और नाचते गाते थे ।

विजयोत्सव भी एक प्रकार का उत्सव था। ग्रालीच्य नाटको मे इसका विस्तृत बर्णन नहीं प्राप्त होता है । केवल 'मालविकाग्निमिष'

विजयोत्सव

नाटक के पत्रम अक मे राजकुमार वसमित के विजयोगलक्ष में इस समारोह का सकेत मात्र किया गया है। राज-विजय

के उल्लास में सम्पूर्ण राज्य और राजकुल में आनन्द मगल मनामा जाता था। राजकूल मे विजय की सुचना देने वालो को पूरस्कारी एव नारितीयिको से पुरस्कृत किया जाता या । 'सालविकानितिस्त्र' से प्रतिहारि राती से कहती है कि बापके पुत्र की विजय सुरक्तर सुक्त पर पुरस्कारों की इतती वर्षा हुई कि से अन्त पुर के प्राभूषयों की मजूषा बन गई?। जिजवीस्थर के अवसर पर कारागार के समस्त वनदी राजाज्ञा से मुक्त कर दिये जाते थें ।

विवाहोत्सम भी एक प्रमुख राजोत्सव या । राजकुल मे राज-वश परम्परा की रक्षार्थ और राजनक्ष्मी के परिपालन के लिए विवाह सस्कार ग्रनिवार्य माना जाता था । यभिज्ञानकाकुन्तल' में राजा दुव्यन्त समुद्रव्यवहारी धनमित्र के विवरण की पढ विवाहीत्सव

कर पुरवशश्री की कोचनीय दशा की कल्पना कर अपने धनपत्पत्व

<sup>8</sup> महाराजविराटस्य वर्षंवर्षनगोत्रदाननिभित्तमस्या नगरोपवनभीध्यामायातु गोधनग । ---पचरात्र, सक २, प० १३ XY ही ही सृष्ठु नतिस सृष्ठु नीतम् ।

<sup>—</sup>गवराव, सद्ग २, ५० १४

यद्वव्याज्ञापयति । भट्टिनि । पुत्रविजयनिमित्तेन, परितोषेशाःत पुरासान 3 माभरशाना मजुपास्मि सवृत्ता । —मा ४०, अब्दु ४, प० ३४४ मीद्गत्य । यज्ञतेनस्यालमुरीकृत्य मोध्यता सर्वे बन्धनस्या ।

<sup>—</sup>मालक, बन्द्र ४, प्**०**३५४

पर ग्रत्यन्त लिम्न होते हैं । ऋग्वेद , ऐत्तरेय ब्राह्मण तथा शतपय ब्राह्मणु<sup>४</sup> में भी बद्म-रक्षण के लिए विवाह परमावश्यक समभा गया है। राजा सन्तान-प्राप्ति के लिए भ्रनेक कन्याम्रो से विवाह करते थे।

'म्रभिज्ञानद्याकुन्तल' में राजा बुष्यन्त ग्रनेक परिनयी के रहते हुए मी पुत्र-प्राप्ति के लिए शकन्तला से विचाह करते हैं। राजकल में सामान्यतया सबर्ण एवं सजातीय विवाह-प्रथा ही

मान्य थी। संजातीय विवाह राज-मर्यादा एव वश-गौरव का प्रतीक समभा जाता था। राजा लोग धन्तर्जातीय

विवाह-पद्धतियाँ विवाह भी करते थे। 'मालविकाग्निमित' नाटक के प्रथम अब मे महारानी धारिखी

के भ्राता बीरसेन के लिए वर्णावर शब्द का प्रयोग इस वात का सूचक है कि राजपरिवार में अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित वा<sup>४</sup>। 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' मे राजा दुप्यन्त का क्षत्रिय पिता तथा अप्यरा माता से उत्पन शकन्तला नामा आश्रमवासिनी कन्या के साथ विवाह और 'विकमीर्वशीय' मे राजा पुरुरवा का उर्वशी नामा अप्सरा से पाणिप्रहण अन्तर्जानीय विवाह के ज्वलन्त उदाहरण हैं। राजवर्ग मे बहुविवाह की भी श्रत्यधिक मान्यता थीड । इसका कारण सम्भवतः ऐहवर्य एव समृद्धि की विपुलता थी। 'श्रिभिषेक नाटक' मे रावरा मन्दोदरी भादि भनेक रामियों के रहते हुए भी ऐश्वर्य एव वैभव के मद मे सीता से विवाह करना चाहता है । विवेच्य नाटको मे बहविवाह के ग्रनेक

१ कप्ट लल् प्रनपत्यता । ममाध्यन्ते पुरुवशक्षिय एप एव बुलात ।

--- मि॰ सा॰, मह्द ६, ५० १२२ ŧ

महत्त्वेद, १०, ८४, ३६, ४, ३, २, ४, २८, ३ ।

ऐसरेय ब्राह्मण, ३३, १, १ का २ ४ ŧ शतपथ बाह्यस्, १, २, १, १०

ग्रस्ति देव्या वर्णावरो भाता वीरसेनो नाम । ×

---माल॰, बद्ध १, पू॰ २६६

६. (क) बहुवल्लमा राजान श्रूयन्ते । --- भ्रमि० सा०, सन्दु ३, प० ५१ (स) किमन्त-पुरविरह्नपर्य-स्युकस्य राज्य-हनरोषेन ।

— समि० शा॰, सञ्ज ३, ए० ४१ सीते ! भाव परित्यज्य मानुषेऽस्मिन् गतायुपि ।

मधैव रव विद्यालांकि । महत्ती थियमान्त्रहि ।

---मभि०, ५६

हष्टान्त देखे जा सकते हैं। 'प्रतिमा नाटक' में राजा दशरण के कौसत्यादि तीन रानियों का वर्णन मिलता हैं। 'मालविकाम्निमित्र' में राजां ग्रिमिमित्र की इरायती और पारिग्रो दो रानियों थीं। 'स्वप्नवासवदत' में पार्प महासेन की पोडश पत्तियों थीं।'—इसका स्पप्ट. संकेत मिलता है।

राजपरिवार में भी विवाह एक समस्या थी। राजाओं को राजकच्या के विवाह की सतत चिन्ता रहती थीरे। निश्चित समय पर

विधाह-विधि एव जिल्ला के उपहास का पात्र करते पर उसे समाज एव प्रजा के उपहास का पात्र करता हो विधाह-विधि एव प्रजा को । यचिय स्ता पात्र । यचिय स्ता के विधाह-हार्य भिन्न-भिन्न शाककुलों से प्रतिदिन दूत घाते रहते के किन्तु उन को प्रखुतर देना प्रति दुष्पर कार्य या। विवाह में प्रकेष करों में ति एक र कार्य या। विवाह में प्रकेष करों में ते एक वर को निवाद-विधान विधान के प्रकार के विधान के विधान के प्रकार करते समय गुए, गौरज, तास्कालिक स्थित तथा भिष्प कार्य कार्य कार्य के विधान के विधान के विधान के विधान के विधान करता स्वापनी पूर्वी के लिए सर्वी कुणिता, दायाल्या, गौरज, सौन्यर्स, उद्यावीय, विधान के विधान के विधान करता स्वापन स्वापन स्वापन करता स्वापन करता स्वापन करता करता स्वपन करता स्वापन करता स्वपन करता स्वापन करता स्वापन

प्रजावत्सलता स्नादि गुए। स्नावस्यक थेड ।

१. पोडलास्त पुरच्येष्ठा पुण्या नगर देवता । —स्व० वा०, ६.६ २. कन्यापितुर्हि सतत बहु चिस्तनीयम् । —म्बि०, १.२ ३. प्रदर्श्व स्थानतालञ्जा दर्गति व्यवित सर । — प्रतिवा० २.७

४. एवं नामाहत्यहिन गोत्रानुकूलेच्यो राजकुलेच्य कत्याप्रदान प्रति दूरतस्प्रे-पणा वर्तते । — प्रतिज्ञान, पद्ध २, पूर्व ४३

४. बहुमुखा विवाहा बधेस्ट साध्यन्ते । —-धवि०, धङ्क १, पृ० २४ ६. विवाहा नाम बहुश वरीदव कर्तंभ्या भवन्ति । —-धवि०, धङ्क १, पृ० ६

पुरावाहुत्य तदात्मामति वावेध्य त्वरता दीर्थमूत्रता व परिस्वज्य देश-कार्यावरोपेन सापायत्व्यं अर्थाभृत्ययं । — प्राविक, सन्द्र १, पू० २०
 कन्याया वरतायक्ति चितु (प्राय) प्रयत्ततः । — प्राविका, २ ४

६. प्रतिज्ञा॰, २.४ (स) प्रतिज्ञा॰, श्रन्तु २, प० ६४

ग्रालोच्य नाटको मे विवाह के बष्ट भेदो-न्नाहा, प्राजापत्य, श्रापं, दैव, गान्ववं, श्रासुर, राक्षस ग्रौरपैशाच<sup>9</sup> मे से केवल ब्राह्म ग्रौर

विवाह-मेद

गान्चर्च विवाहो का प्रत्यक्ष एवं स्प्रप्रत्यक्ष सकेत मिलता है। बाह्य विवाह में वस्त्रा-मुपणो से सुमज्जित कन्या विद्याप्रवीरा

एव ग्राचारशील व्यक्ति को प्रदान की जाती है। 'स्वप्नवासवदत' मे पद्मावती तया उदयन का विवाह इसी कोटि में आता है। प्राह्म विवाह समाज में ब्रादर की दृष्टि से देखा जाता था। बन्या ग्रीर पर के पारस्परिक प्रेम के बाधार पर होने वाला विवाह गान्धर्व बिवाह कहलाता है । इसमे दोनो पक्षा के गुरुजनो की स्वीष्टति आपन्यक नहीं है। गाम्धर्व विवाह तरकालीन समाज में अभिनन्दित या"।

फा सावन होने के साथ साथ उनके स्वास्थ्य के लिए की अत्यन्त लाभकारों था। इससे शारीरिक विकृति और अनावस्थक रक्षुलता दूर हो
जाती थी सथा शरीर कर्मेंठ और स्कृतिवांत वनता था। 'अभिजान
जानु तल के दितीय अक म सेनापित मृग्या की प्रश्ता करते हुए
कहता है कि इससे मेर का छेदन हो जाता है उदर पतला हो जाता है
शारीर हलका और स्कृतिशोल बनता है भय और क्षेप को अनस्या
मे प्राणियों के चित्र में उत्पन्न होने वाले विकार का परिजान है।
जाता है । बतायमान लक्ष्यों के वेषम य मेगुण्य प्राप्त हो जाता है।
जाता है। इसको मिम्या हो व्यक्त कहते हैं नहो तो उसके जैसा विकोद कहां '?
मृग्या के समय निरन्तर प्रथम के प्रास्कालन से खरीर का पूर्वभाग
कोर होकर सूर्य के तेज तक को सहन करने ये समर्य हो जाता था
और शरीर के पुष्ट होने के कारण कुसता लिखित नहीं होती थीं ।
कीटिट सी वस्ताधिकरण प्रकरण में प्रयान अपनी के सात मृग्या
को भी राजामी का एक व्यसन मानते हैं। खूत, सगीत, नृत्य और
मुस्ताम की मरीका रही अच्छा सम्भन्ने हैं। इसी प्रसम ये उन्होने मृग्या
की भी राजामी का एक व्यसन मानते हैं। इसी प्रसम ये उन्होने मृग्या

राजा मृगयायेश धारण कर रथ पर बैठ कर झांबेट के लिए जाताथा। उस समय वन पुष्प की मानाएँ पहने हुए और हाय मे धनुष आण सिये हुए थवनी परिवारिकाएँ राजा के शरीर की रक्षा

१ मेदरक्षेत्रकृतीदरलम् सनत्युत्यानयोग्य सप्

सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमन्त्रित भगक्रोषमी ।

उत्कप स च विका सदिपन सिच्यन्ति लक्ष्ये चले मिथ्यैम व्यसन नदति मृगयामीहम विनोद कृत ।

— सभि० भा०, २५

२ अनवरत्तवनुज्यांस्फालनकूरपुर्वं रविकिरग्रासहिष्णु स्वेदलेन्दरियनम् । ग्रपचितमपि मात्र व्यायतत्वादलस्य गिरिचर ६व नाग प्राग्रासार विभति ।

— स्रभि० सा० २४

३ स्रयनास्त्र, ६३५०

४ सप्तयन्तुं मृगयावेगम्। —ऋभि० शा० प्रक २ पृ० ३२ नाटक मे मृगयावेश का उत्सेख माथ मिलता है। बालट की वेगभूमां कैसी होनी चाडिए इसका कहीं सकेत नहीं है।

१४४

करती थी' । यवनियो के श्रतिरिक्त राज-सैनिक और वम-ग्राही मृगया करते समय राजा की सहायता करते थे। वन-प्राही राजा से पहले ही वन मे पहुँच जाते थे और वन को चारो ओर से घेरकर शिकार की सूचना राजा की देते थेर। लक्ष्य पशुक्रो में मृग3, वराह\*, शार्द्ल\*, महिप र प्रमुख ये। 'ग्रभिज्ञानशाकुन्तल' मे शकुनिलुव्यक' के प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि उस समय पिक्षमों का भी शिकार किया जाता था । धरण्य हस्तियो का शिकार भी किया जाता थाप किन्तु बहुत कम । गजलक्षणशास्त्र के ज्ञाता और गजवशीकरण विद्या में पारगत राजा ही बन्यगणो का आखेट कर सकते थे। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायएा' मे राजा हस्ति शिक्षा के माधार पर नील कुवलय को चनवर्ती हस्ती वताता है ग्रीर केवल बीग्गा की सहायता से उसे पकडने के लिए जाता है

म्रालेट में ममोरजन के साय-साय कप्ट भी प्राप्त होते ये। राजा के बालेट सहाया के दारीर की सिषयी शिकार के लिए दौडते-दौड़ते शिविल पड जाती थी " । वन में पहाडी मदियों का कड़वा और कसैला जल पीना पडता था। अनियत समय पर लोहे की शलाखाओ

पर भना हम्रामास लाना पडता था 11 ।

 एय वाणासनहस्ताभिर्यवनीभिर्वनपुष्पमासाधारिएोभि परिवृत इत एवा-गच्छति प्रियवयस्य । — सभि० सा०, सक २, प० २७ तेन हि निवर्तम पूजमता बनवाहिला । — मभि । चा ।, भक २, पृ० ३१ १४५ अय मृगीऽय वराहोऽय शार्दल इति मध्याल्लेऽपि ग्रीव्मविरलपादपच्छा-यास वनराजीप्वाहिष्क्यवेऽटबीतोटबी । —मर्मि० शा०, श्रक २, पृ० २६

सभिश्चा०. २६ शबु नितुत्यकैर्वनग्रहराको ताहलेन । -- अभि । भाव । पक २, पृ २७

छत्रमात्रपरिकदरेन गजयुष्यविषदयोग्येन वलेन सार्गमद या श्रीव्या । — प्रतिज्ञा॰, सक १, प॰ १**४** 

धस्त्रय चक्रमतीं हस्ती नीलनु वलयतनुर्नाम हस्तिविद्याधा पठित । तद् अप्रमत्ता भवत यूयमस्मिन यूथे। गज तमह शीलादितीय आनवामीति ।

—प्रतिज्ञा∘, अक १. प० १७ १⊏ त्रगानुधायनकण्डितसधे । —श्रमि॰ चा॰, श्रक २, पृ॰ २७ १०

पत्रसररायाणा कट्टीन गिरिनदीजलानि पीयाते । धनियतवेल गूल्य-११

मासभूविष्ठमाहारी भूज्यते । — श्रमि० शा॰, श्रक २, प्र० २६ यूतकीडा भी राजमनोविनोदो मे परिगणित थी। राजा ग्रक्ष-क्रीडा के व्यसनी होते थे<sup>९</sup>। जुए के ग्रनर्थों को जानते हुए भी वे जुग्ना सेलते थे ग्रौर राज्य, मान, स्त्री, सभी से

वित्त हो जाते थे । उनके सत्य, धर्म, द्यतकीडा दया आदि गुएो का लोप हो जाताथा,

जनकी चेतना विश्रव्ट हो जाती थी और उन्हें लोक में प्रपमानित होना पडता था<sup>3</sup>। 'पचरात्र' मे पाण्डव धर्मपरायण श्रीर सत्यप्रतिज

होते हुए भी धतकीड़ा में राज्य और स्त्री को हार जाते हैं।

सगीत एव नृत्य भी राजाको के मनोविनोद के साधन थे। सगीत मे जिल को मोहित करने वाली शक्ति का श्रधिष्ठान माना

जाता था<sup>४</sup>। सगीतशाला<sup>थ</sup>, प्रेक्षागृह<sup>8</sup>, नाट्याचार्यं अपि शब्द-प्रयोग राजास्रो संगीत एव नत्व की सगीताभियचि के परिचायक हैं। राजा

स्वय सगीन-मर्गंत होता था और उसके राज्य मे भी प्रतेक विद्वाद नाट्याचार्य सगीत शिक्षण के लिए नियुक्त रहते थे । राजसभा मे सगीत प्रतियोगिताएँ होती थी जिनमे निर्णायक राजा को बनाया

१ अनेदानी धर्मच्छलेन बिचतो खताश्रयवित्तर्यविद्या -पचरात्र, संग १, पृ० ३१

यत् पुरा ते समामध्ये राज्ये माने व' धरिता ।

হ बलारकारसमर्थेस्तै कि दोयो धारितस्तदा । -पचरात्र, १३७

सस्यघर्मंषुगायुक्तो बृतविभ्रष्टचेतन ।

करोत्यपागविक्षेपै ज्ञान्तामपै वृकोदरम् ॥ —वतवामम, १ प

 भ महो रामनिविष्टचित्तवृत्तिराविसित इव सर्वेतो रग । — अभि० शा०, श्रवा १, प्र**०** ४

भी वयस्य ! समीतकाला तरेऽन्यान देहि ।

— सभि० साक, सक ४, पृ० ७६

६ तेन हि द्वाविष वर्गी प्रेक्षाग्रहे । ---माल०, अक १, पू० २७८ ७. कथय, तावदन्यो यसववितयोनीटचाचार्ययो

—माल॰ श्रक ३, प० २६१ भवति, पश्याम सदरभरिसवादम् । कि मुवा वेतनदानेनैतेपाम् ।

---माल॰, शक १, पृ॰ २७४

जाता था । 'मालविकान्निमित्र' मे नाट्याचार्यं हरदत्त ग्रीर गणदास श्रपनी नाट्यशास्त्र-योग्यता के निर्णयार्थ राजा ग्राप्तिमित की सभा में जाते हैं । राजधुल में सगीत विद्या राजाओं को वशपरम्परा से भी प्राप्त होती थीं। 'प्रतिज्ञायीगन्धरायण' में राजा उदयन को गाम्धर्व विद्या स्नानदानी वपौती के रूप मे प्राप्त हुई थी ।

विनोद के साधनों में सगीत एव नृत्य के समान चित्रकला भी समाहत थी। मानसिक अस्वस्थता या चहिग्नावस्था में चित्रकला मनस्थिरीकरस का भाष्यम थी। राजा

दुप्यन्त शकुन्तला के विरह मे व्याकुल होकर उसके चित्रालेखन द्वारा प्रपना चित्रकला

मनोविनोद करते हैं । उर्दशों के प्रेम में भ्रासक्त राजा पुरूरवा की चिन्तित देलकर विदूषक उसे उर्वशी का चित्र बनाकर उससे दिल बहलाने के लिए कहता है ।

कया ग्राख्यायकाओ द्वारा भी मनोविमोद किया जाता था। राजसेवक या राजपरिजन विविध मनोरजक कथाएँ सुनाकर राजा का चित्तानुरजन करते थे । 'स्वप्न-कथा-मास्यापिका वासवदत्त' नाटक भे राजा निद्रापीडित

होने पर विद्रयक से कथा सनाने की

कहता है<sup>प</sup> ।

१ जभावभिनयाचारौ परस्परजर्शिधारौ ।

रवा द्रप्यमुख्या साक्षादभावादिव शरीरिखी । —माल०, १ १०

दरपत्येन दायाद्यागतो गान्धवों वेद । --प्रतिज्ञा० धक २ प० ६३ सन्यास नपरिचारिका चनुरिका भवता सदिष्टा-आध्यीमण्डप इमा वेला

मतिबाहियिच्ये । तत्र मे चित्रफलकगता स्वहस्तलिखिता तत्रभवत्या धनु तलाया प्रतिकृतिमानयेति । - प्रिम चा०, प्रक ६, पृ० १० = प्रयंगा सम्भवत्या उवस्या प्रतिकृति विश्वफलक आलिख्यावलीक

यस्तिष्ठत् । —विक∘ सक २ प्र०१७⊄ १. वयस्य <sup>|</sup> निद्राभा बाधतः । क्च्यता काचितः कथा ।

<sup>&</sup>lt;del>--र</del>न० ना०, सक ४, ५० १४४

संस्कृत\_नाटको में समाज चित्रसा

राजात पुरीय मनोविनोदो में कन्दुक कीढा जल कीडा व

१४५ 🆠

बाटिका विहार<sup>3</sup>, कथाख्यायिकाथवर्ण आदि प्रमुख थे। इसके अति रिक्त बात पूर मे मनोरजनाय मयूर शुक सारिका आदि कीडा पश्नी भी पान जाते ग्रन्त परीय क्रीडाएँ

थे<sup>४</sup> । ये पक्षी अपने व्यारयान और विविध कथाओं द्वारा रानियो एव राजकुमारियो को भान दित करते थे।

राज परिवार के बिस्तृत विवेचन के पश्चात् इतर परिवार का वर्णन भी धनिवार्य है। इतर इसर परिवार परिवार के अन्तगत जन सामा य के

परिवार समाविष्ट है। तत्कालीन जन समाज मे सयुक्त परिवार प्रथा प्रचलित घी।

सपुनत परिवार की आधारिकाना पारस्परिक प्रम एव सहयोग की भावना थी। परिवार के समस्त सदस्य

संयुक्त परिवार प्रथा माता पिता चाचा-ताऊ मादि सम्मिलित रूप से रहते थे और

प्रम एव सहयोग से जीवन यापन करते थे। उनमे भ्रहभाव या स्वाध लेशमात्र भी नही होता था। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व त्यागमय एव तपोमय होता था। एक सदस्य दूसरे सदस्य की रक्षा

१ (क) क्रमारी यसुलक्ष्मी क दुक्षमनुधावाती ।

——मालव झक ४ पृ० **३**३५ (ख) एवा भत्वारिका माथबीलतामण्डपस्य पाइवत क इनेन कीडतीति ।

—स्व० वा० अक २ पू० ६७

२ क कालीऽह भतुवारिकाया बासबदत्ताया उदके क्रीडित्कामाया । 

ततो गत्नोचान यथामुलगाकीक्य निवतमानाया राजसुतायाम् — श्रावि० सकर प्र≏ €

प्रवादशयने देवी निवण्ला भगवत्या कथाभिविनोश्चमाना तिष्ठति ।

——माल**० ग्रक** ४ पृ० ३१७ ५ अय चेने मयूरा धस्माक राजकुलमानसे मतिपीठमदभाव कुवित ।

गुकसारिकापि व्यास्थानमेव कथियतुमारव्या । यम निवेदभायमजानती भृतिकसारिकापि सवलोकवृता त । —- स्रवि० सक्त ४ १२१ २२

के लिए अपने प्राणो तक का बिल्दान करने को उदात रहता था। 
'मध्यमन्वयायोग' में केशवदास नामक ब्राह्मण के परिवार में स्थाग 
की ऐसी ही उदारा भूमिका परिलिक्त होती है। ब्राह्मण परिवार 
का प्रत्मेक सदस्य अपने परिवार की रक्षा के लिए प्राण-स्याग करने 
को उदात है। बुद्ध पिता अपने सारेप हारा पुन के जीवन नी रक्षा 
करना चाहता है'। पत्नी अपने सीमास्य की रक्षाय अपनी बाल 
देने को तत्पर है'। पुन गुरुवानों के प्राणी को बनाने के लिए अपने 
प्राणो का विनिमय करने की अभिलापा रखता है'। परिवार का 
प्रत्मेक व्यक्ति अपने कक्तंत्र्य एव उत्तरदामित्व को पूर्णरपेण 
समक्ताया।

क्रांचेद म सबुक परिवार के मर्स को इस प्रकार समकाया है—

'सगन्छान संवदध्व स त्री यनासिजानतम् ।' प्रधात पानापान् । स प्रधान स्वाप्य चलना पाहिये, एक साथ योलना चाहिये और एक दूसरे के मन की प्रच्छी सहस्त सम्प्रका चाहिये। याजकल संयुक्त-परिवार-प्रधा के विभेदन का कारण स्थायं एव हरें की सावना है। साज परिवार के प्रदेश सदस्य भ शह की भावना ने प्रवेश कर सिया है जो पारिवारिक सुद्धक संदर्स भ शह की भावना ने प्रवेश कर सिया है जो पारिवारिक सुद्धकता के लिए श्रयन्त पातक है।

सदुक्त परिवार मे वयोदृढ व्यक्ति गृहपति सज्ञासे विभूपित होताथा। वह परिवार का गृखिया एव सर्वसर्वी होताथा। उसका प्रभुत्व सम्पूर्ण परिवार जन पर रहता

प्रश्नुत्व सम्पूर्णे परिवार जन पर रहता गृह्पति था। उसकी माज्ञा ही सर्वेमान्य होती भी। प्रायु अनुभव एव ज्ञान की श्रेप्टता

भी। श्रामु अनुभव एव ज्ञान की श्रेप्टता के कारण उसके अधिकार सुरक्षित रहते थे। गृहपति की ब्राज्ञा से

१ इतहस्य दारीर म परिशामिन जर्जरम् । राक्षसामी सुतापेमी होध्यामि विविसस्त्रतम् ।

—सध्यमश्यायाम्, ११) २ पतिमात्रवर्षिम्मी पतिवतेति नाम । यहीतक्षेत्रैतन नर्गरमार्थं कृत

र पातमावधामणा पातवतात नामा वृहातपन्ततत नागामा कृत चरन्तितुमच्यामा — मध्यमध्यायाम, प्रद्र १, मृ० १४ विनिमाय मुख्याणान् स्वै प्राणिमुख्यसन ।

मनातमाय गुरुप्रस्तान् स्थ प्राणगुरुवस्तन् । प्रकृतात्मद्वरादाय बहालोकमवाष्ट्रहि । — व

र ऋग्वेद,१०१६१,१६२

ाप बहालोकमवाप्युहि । —*मध्यमन्*यायोग, **१**२१

पुत्र मृत्यु के मुख मे जाने को भी उद्यत रहता था। मध्यमध्यायीग में मध्यम पुत्र को राक्षची का आहार कनना इसी बात का प्रमाए हैं। । गृहपति का समस्त पारिवारिक सदस्यो पर नियन्त्रका रहता था।

परिवार में भृहपति के परवात् मृहिग्गी का महत्त्वपूर्ण पद था। माता परिवार की स्वामिनी होती थी। परिवार की बाह्य व्यवस्था

गृहिसी

गृहपति सँगालता था और प्राप्तरिक व्यवस्था का भार गृहिशों के कन्धो पर रहता था। गृहिशों ही गृह की प्राप्तरिक

मीति वा परिचालन करती थी। वही परिवार के व्यक्तियों के जाहार विहार आवास निवास और रहन सहन की क्यवस्था करती थी। परिवारिक स्योजन की प्रायपरिवारा गृहस्वामिनी ही थी। वह गृहमिन को वामिक, आर्थिक, सामाजिक सभी कार्यों में सहयोग देती थी। धार्मिक कर्तव्य तो उसके बिना अपूर्ण समक्षे जाते थे। अभिज्ञान शाकुत्ताल के स्वतुष्ट अक से शकुत्तता की विवा के अवसर पर कण्य लिक व्यवहार के काता स होने पर भी गृहिस्पी के कत्तव्यों की बहुत सुरुर क्रपरेका प्रस्तुत करते हैं ।

गृहपति एव गृहिगों के भ्रतिरिक्त पारिवारिक सयोजन एवं सघठन में परिवार के भ्रत्य सदस्य भी सहयोग प्रदान करते थे।

प्राचीन पारिवारिक जीवन में शिष्टाचार एवं सदाचार का पूर्णे ध्यान रखा जाता था। परिवार में प्रत्येक सदस्य भ्रमने गुरुजनो गा श्रमुखों को बड़े शिष्ट एवं सम्य रूप से

पारिवारिक शिष्टाचार सम्बोधित करता था। बालक या अरुपाय शुरुवानी को अभिवादन करते समय

—यभि० गा०, ४१५

१ डितीम — पायोऽस्मि यद् गुरुप्रास्मा स्वै थाणै परिरक्षिता । वाषुस्तेहाडि गहत कायस्तेहस्तु दुत्तभ ॥ — मध्यसस्यायोग १२०

२ तुष्पस्य मुस्कुः भिष्मसरवीवृत्तिं रायल्तीवने भत् विभ्रकृताभि रोपण्यतया मा स्म प्रतीप गम । भूगिष्ठ भव दक्षिणा परिचने भाग्येव्वनुत्सेकिनी याल्येव मृहिशीषद युवतयो वासा कुलस्याध्य ।

	परिवार		१५१
'तात'', 'श्रायं' <sup>२</sup> , 'श्रास', प्रयोग करते थे, श्रीर गुरुजन 'पुत्रक', 'स्वस्ति' <sup>८</sup> श्रादि 'ग्रायं' <sup>9</sup> , या शायंपुत कहकर 'श्रिये", 'श्रेयसि' <sup>8</sup> श्रादि सश	भाशीर्वाद य का उच्चारर सम्बोधित व	। प्रत्युत्तर देते सम एकरते थे। पर हरतीथी और पी	य 'वत्स' <sup>४</sup> , नीपतिको

—मध्यमच्यायोग, भक १, पृ० १७

—वही, भक्ष १, पृ० १**५** 

—विकः , धकः ४ ५० २४७

--- विक्र० यक ४, पृ० २४६

—विक०, सक ४, पृ० २४७

--- मध्यभव्यायोग, धक १, पृ० १४

-- मृच्छ्व, सक १०, प्र० ५६०

भोस्तान ! स्रश्निवादये ।

Y. मध्यमस्यायीग, शक १, प्र० १७

धार्यं । मा सैवम् ।

स्वस्ति मवतो ।

७ धार्यं <sup>1</sup> भासेवस् ।

मृष्यु , १० ५७

म हाप्रिये<sup>‡</sup>

8

2

१ तातव दे।

¥ एहिं यत्स्र ¹

Ę

3

## सामाजिक वर्ण एवं वर्ग-व्यवस्था

मादको में चित्रित समाज के विविध रूपों को जिन शीपैकों के अन्तांत वर्गों कुछ किया गया है, उनके परिवार के पश्चाद 'सामाजिक वर्ण एवं वर्ग ज्वनक्या' परिवारात के उपलाद के असाम ही वर्ण एवं वर्ग ज्वनक्या' परिवारात के असाम ही वर्ण एवं वर्ग-व्यवस्था भी कम महत्वपूण नहीं है। उसमें भी समाज का एक एप-विशेष, समाज की एक भोजी हिन्दगीचर होती है। प्रस्तुत मध्याय में कामी जी विवेचना को जायातो।

देशकाल के वातावरण में मनुष्य की समस्टि ही समाण है। प्रत समाज में व्यप्टिमत उन्नित एवं दिकास की प्रापारियला समान्यात उन्नित एवं विकास है। वर्ण-व्यवस्था का महस्था संस्कृति एवं सम्मता के क्षेत्र में मानव की प्रमति सामृहित प्रयत्न एवं उपकृष्णि में परिर्णाम है। व्यप्टि, समस्टि से विरहित कुछ भी उन्नित नहीं कर सकता है। उसके विकास के लिए सामाजिक उन्नित प्रतिवार्ष है।

भारतीय मनीपियों ने सामाजिक विकास की दृष्टि से हैं। 'वर्णव्यवस्था' को बरुवन की थी। यह व्यवस्था समाजजारियेंद्र तरुवों के आधार पर विकासित हुई थी। इसके बसुनार समाज की ब्राह्मण, क्षत्रिय, बैरय और सूद्र इन चार वर्णों में विभाजित विया गया था। यह विभाजन सम्मत्त सर्थनार के रिद्यान पर मधन चित्र था। चारों वर्णों के वर्ण-क्षत्रेण एव वर्ण-धर्म निश्चित से। म्ह ग्वेद के पुरुष्यूक्त ने समाज की एक जीवित-जाग्रत-शरीर के रूप में करना तो गई है और साहमण, सित्रम, वैदय और सूद्र को तमस जस रारीर का मुख, भुवा, जया और करण माना गया है। यह रूपम समाज में पर्सों की आवस्यकता और महत्त्व का परिचायक है। गरीर में जिस प्रकार मुख, हाथ, जया और पैर का अपना प्रपत्त स्वित्तत्व और महत्त्व है, उसी प्रकार चतुर्वेसों भी समाज में आवस्यक-सान्त्रसर सहस्व सूर्य है।

भ्रालोच्य नाटक युग में वर्ण-स्यवस्या का रूप सुस्थिर एव हठ या। वर्ण-चतुष्ट्य की श्रृङ्खना भारतीय ममाज वो धपने शक्ति-शाली वन्धन में भ्रावद किये हुए थी।

वर्ण-विभाजन

नाटको में भ्राये हुए 'चतुर्णा वर्णानाय्' , 'वर्णे स्यो' 3, 'वर्णाश्रमार्णाम्' श्रादि

वार प्रयोग तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था ने स्थिर एव नित्तत स्वरूप के हिं
परिचायन हैं। वर्ण परस्परा और वर्ण विभाजन के कारण समाज
मयीवित एव सुगरित था। समाज ने म्राह्मणादि चारो वर्णों के
धर्मनास्त्रो हारा प्रतिपादित पृथ्य-पृथ्य आवार धर्म एय नर्तव्य मे।
वर्णीय प्राचार धर्म एव कर्तत्य का पालन प्रत्येष सामाजिन के
तिए प्रतिगार्थ था। इन श्रावर्ध की प्रति ने लिए राजा ध्यनी प्रजा के
साथ प्रमत्तरील रहना था। इनीलिये राजा को वर्ण-व्यवस्था पा
स्तार कीर चारो वर्णों को अस्य प्रदान करने वर्णा पर्मा गया है।
राजा थे समुख्ति प्रदेशण में प्रजा-जन अपने-प्रयने वर्ण पर्म वा
पानन करते ये और निवृद्यतम वर्णों भी प्रयय या ध्यम से वच्नों वे
लिए सनत प्रयत्मतील रहना था। राजा और प्रजा के सहयोग एव
सम्मित्तत प्रयारा से वर्ण-धर्म-व्यवस्था सुरक्षित थी।

१ ऋगोद. १०६०१२

२ चतुर्भी यर्णानामस्यमिव ।

<sup>—-</sup> प्रतिगा०, ४ छ —- स्रभि० ६०० र १३

३ यदुत्तिष्ठति वर्णोक्यो । ४ समिकसाक, सन् ४, प्रकट

४ भागकशाक, श्रदः ४, पृत्यः ४ बही ।

६ प्रतिमा०, ४७

७ न मिस्यद्वार्शामामप्रमापन् स्टोऽपि भवते ।

<sup>—-</sup> ঘমি৹ ঘা৹, ২ १০

वर्ग-क्रम की हप्टि से तत्कालीन समाज मे ब्राह्मण का प्रथम स्थान था। ब्राह्मण केवल वर्णो मे ही नही, सम्पूर्ण पृथ्वी पर पूज्यतम

माना जाता था । क्षत्रिय, वैश्य और श्रद्र-ये तीनो वर्ण ब्राह्मण की सर्वात्मना प्रजा ब्राह्मस एव अभ्यर्चना करते थे। राजा विशिष्ट

बाह्मणों के सरकारार्थ आसन से उठ जाया करता था । यही कारण है कि 'म्रभिज्ञानशाकुन्तल' मे राजा दुप्यन्त ग्रासन छोड कर ग्रग्निगृह मे कण्य शिष्यों के आगमग की प्रतीक्षा करता है । 'मालविकाग्निमित्र' मे राजा ग्रग्निमिन ग्राचार्य गणुदास ग्रीर हरदोस को देख कर ग्रावरपूर्वक उन्हे स्थान देता है<sup>?</sup>। ब्राह्मण् के समस्त ग्रपराथ क्षम्य थे<sup>\*</sup>। ब्राह्मण्-वर्ष सबसे बडा पाप था। हत्या का अपराध करने पर भी ब्राह्मण प्रवध्य समका जाता था। उसके लिए प्रक्षत विभय सहित राष्ट्र निष्कासन का वण्ड विहित था। मुख्यक्रिक से पाएवस के अपराभी सिद्ध होने गा दण्ड विशित था। मुख्यक्रिक से पाएवस के अपराभी सिद्ध होने गर भी न्यायाधीश उसे राष्ट्रीनिष्कासन का दण्ड ही देता हैं। क्षत्रिय लोग ब्राह्मण के त्रास्तों की रक्षा के लिए प्रपने प्रास्तों के उत्सर्ग को भी धर्म समझते थेड ।

श्रध्ययन, श्रध्यापन, यजन, याजन, वान और प्रतिप्रह-श्राह्मण के मैं पदकर्म थे, जो उत्तकी जीवन चया के झम थे। विद्या श्राह्मण का भूपणः और निवाध्ययन उसका परम कर्सच्या वा। वेद बेदागों के समुद्रोतिन और वेदमात्रों के पठन-पाठन का प्रमुख अधिकारी श्राह्मण ही था। वह श्रुतियों का शांता और वेदगाठ में निगुण होता था"। मध्ययन

द्विजीत्तमा पुरुषतमा पृथिव्याम् । --- सध्यमध्यायोग, १६

श्रमिक शाब, सक ६ पूर ५४

स्वागत भवद्भयाम् । श्रासने तावदत्रभवती ।

<sup>---</sup> माल॰, यक १, पृ॰ २७१

<sup>---</sup> नष्यमञ्जायोग, १३४ सर्वापराधेऽबध्यत्वा मुज्यता द्विजसत्तम । मध्यक, ६३६

क्षत्रियकुसीटा नोऽहम् । पूज्यसमा सनु बाह्यसा। तस्माच्यरीरेस श्राक्षराश्ररीर विनिपात्रिषच्छामि । --- मध्यमध्यायोग सक १, पूर ३४

विद्याविश्रेपालकृत कि कोऽपि ब्राह्मसूय्या काम्यते ? उचरात्र, १५

<sup>---</sup> मुच्छ०, सक २ पू० ६७

के साय-साथ प्रध्यापन भी ब्राह्मएए का धर्म था। महर्षि कण्य शौर प्राचाय द्रोग् इसके ज्वलन्त ज्वाहरए हैं। ब्राह्मए धर्म में यजन-याजन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। ब्राह्मण निर्म देनिक हवन, यसादि का अनुष्ठान करता था। राजादि के यसो में ब्राह्मण ही अनुष्ठाता होता था। राजा यजो में विहान ब्राह्मणों को झामतित परता था और यजावसान पर उन्हें प्रभुत दक्षिणा देता था?। हाह्मण को हिला के नार्यों शाह्मण को हिला देता पा?। सामाजिक उत्यवीं, समारोही एव ब्राह्मण स्थान के सामाजिक उत्यवीं, समारोही एव ब्राह्मण-यासादि" धार्मिक क्रियाओं में ब्राह्मण-यक्षिणा का बड़ा माह्मरूप्य माना जीता था। कुछ ब्राह्मण ऐसे भी होते थे जो प्रतिप्रह, विहाणा आदि स्वीकार नहीं करते थे। 'गुण्डक्षिटक' में द्यांविक ऐसे ही चतुर्वेक्त भीर अप्रतिकाहक ब्राह्मण का पुत्र हैं"।

यक्रोपथीत द्विजल्ब का महत्तुपकरण् था<sup>द</sup>। यक्कोपथीत के विना ब्राह्मण्य ब्राह्मणुर्त्व का दाया नहीं कर सकता था। विशेष वेदा भूषा के साथ शिला भी ब्राह्मणुर्त्य का चिह्न थी<sup>त</sup>। यप्टि भी ब्राह्मणु वेदा का पुन प्राह्मस्यक उपकरण्

सदीन परिस्थित म ब्राह्मण जीविकोपार्जन के व्यापारादि इतर साधना को भी स्वीकार कर सकता था। प्रारादमें में ब्राह्मण को क्विंप, गो-मालन तथा वाि्ग्य हुत्ति स्वीकार करने की अनुगति महुत्तिकार ने भी दी हैं। 'पुच्छकटिय' में वाघ्वत इसका निदयन है। बहु ब्राह्मण

- १ मो नैत्यनायसाने प्राशियममनुतिष्ठति मिय प्रतिमामृह प्रविष्ट ।
  - प्रतिमा**ं शक ३ पु**० ७७
- २ पवरात्र १४
- २ वस तोरसवोपायन नो नुपेनायगीनमेन । —माल०, सक १ पूर १०१ ४ साय । सम्पन्त भोजन नि सपरन च । सपि च वशिस्सा सापि हो भविष्यति ।
- मृज्यः भक्ष १ पृ० १६
- ५ मुच्छ० झक ३ पृ० १६६ ६ (क) यनोपवीत हि नाम साहागास्य महदूपकरणाद्रव्यम् ।
- (स) मन्द्रक १० ११ --मुन्द्रक प्रकार वाल्यान वाल्यान विद्युप्तकरणस्थल ।
- ও যদি৹শা৹ য়ক হুতুত ব৹
- विप्रामाति नय प्रकपशिथिला यध्टित्रिपादक्षमा । ---पचरात्र १
  - सनुसम्ति १०६२

होते हुए भी वारिएज्य एवं ज्यापार को जीविका-रूप में ग्रहण करने के कारए। सार्थवाह कहलाता है ।

रामाज मे ब्राह्मरा के पश्चात् क्षत्रिय का महत्त्वपूर्ण स्थान था। 'ब्रह्मचै ब्राह्मणः क्षत्रं राजन्यः' इसी बात का प्रमासा है। शुकाचार्य के शब्दों में क्षत्रिय की परिभाषा इस

स्रविध प्रकार है-"जो प्रजा का रक्षण करने

में निपुण हो, घूर और पराक्रमी हो और जो बुट्टों का दमन करने में समर्थ हो, बही शत्रिय कहलाता हैं" । नाटकों में राजा इन्ही अजियोचित बादशों के पालक दिलायी देते हैं।

तरकालीन समाज में क्षत्रिय ही राजपद का ग्रधिकारी होता था। प्रजापालन एवं लोकानुरंजन राजा का परम धर्म था । मनुस्मृति से भी इस तथ्य का समर्थन होता है । राजा प्रपनी प्रजा का सन्तान के सहश पालन करता थार। 'ग्रभिज्ञानशाकुन्तल' में राजा दुर्यन्त प्रजा के कल्याए। के लिए यहाँ तक घोषणा कर देता है कि "प्रजा में जो-जो व्यक्ति अपने जिस-जिस बन्धु से वियुक्त होता है, पाप को छोड़कर, उसका बह-वह बन्धु दुष्यन्त समक्ता जाय।" वेज क्षत्रिय व्यक्तित्व का अनिवार्य गुरा था । अत्रिय अनीव पराक्रमी और बलशाली होता था। उसके शौर्य का उपयोग आर्त्त एवं पीड़ितो की रक्षा के लिए होता था । 'प्रतिमा नाटक' में जब राज्या सीता को हरण कर ले जाता है तो सीता कहती है कि यदि राम को शात्र-धर्म में झास्था है तो मेरी

१. मुच्छ०, सक ६, पू० ४७१

२. तीलरीय ब्राह्मण ३.६.१४

 लोकसंरक्षणे दक्ष शूरो दातः परामगी । बुष्टिनिम्रह्गोलेम ग वै शक्तिय उच्यते । -श् क्रनीति, १.४१

४. स्वस्वतिरभिलायः खिद्यसे लोकहेत्रो...

प्रतिदित्तमञ्जा ते वस्तिरेज विश्वेव ।

— प्राधिक शाक, ५.७

५. मनुस्मृति, १.८६

६. मधि० सा०, ५.४

অসি০ য়া০, ६.२३

<. থাৰি o, ই.৬

६. धार्तवासाय वः वस्त्रं न प्रहर्त्तमनागसि । —सभि० शा०, १.११ रक्षा करें 1 क्षित्रय की सम्पत्ति उसके शस्त्र होर्त ये । अतिय केवल प्रजा के पालन के लिए सम्पत्ति का प्रजंन करता था, यहाँ तक कि यपना सर्वस्त्र तक आद्राणों को दान में दे देता था । वह अपने प्राणों हारा नी आहाए की रक्षा करने को तरार रहता था । वह अपने प्राणों हारा नी आहाए की रक्षा करने को तरार रहता था । अतिय । वनन-पालन के लिए वह अणोरसर्ग तक कर देता था । श्रात्रम-कुमार के लिए शस्त्र विद्या एव धनुवँद का ज्ञान परमावस्त्रक था । 'वित्रमोवेद्यीय' में राजा पुरुष्वा का पुत्र आयु ज्यान करि के सार्यम में अपने विद्यामों के साथ माथ स्वित्रयोचित धनुवँद का ज्ञान भी आह करता है ।

क्षतिय भी ब्राह्मण के समान ही उच्च थे। यत द्विज राष्ट्र का प्रयोग क्षतियों के लिए भी होता या । ब्राह्मणों की तरह उनके भी जात-कर्मादि सस्कार सम्पन्न होते थे ।

चतुर्वणों में वैदय तृतीय वर्ण है । नाटको में इस वर्ण के लिए 'विग्रज' , 'नेगम' ॰ , 'श्रेट्टो' ॰ , 'सार्यवाह' ॰ , 'विद्या' ॰ आदि सब्दो का प्रयोग किया गया है । साह्मण और क्षत्रिय

वैश्व के समान वैश्वो का भी समाज म उच्च स्थान था। व्यापार एव वाणिज्य उनका १ दानभ्रम यदि निनद कथीं राम परानगम । — प्रतिमा०, ५ २१

२ बालाधीना क्षत्रिवाला समृद्धि । —पपरात्र, १२४ ३ पवरात्र, १२४

४ मध्यमव्यायोग, श्रक्त १, पृ० ३४

प्रतस्मात् प्रतिज्ञा कुरु वीर<sup>ा</sup> सस्या सस्या प्रतिज्ञा हि सदा कुरुगाम् ॥

—पचरान, १४६

६ गृहीतिविद्यो यनुर्वेदऽभिविनीत । —िवक्र०, अरू ५, पृ० २४६ । द्विजमुद्दवम् कविवसव प्रविद्यः —मुद्द० १३

मनुष्टिनम् । — वित्रः , स्रतः ४, पृ० २४६ ६ विग्रिजपुवा या वास्यतः । — मृष्ट्यः , स्रतः २, पृ० १७

१० विकार, ४१३ ११ श्रास्त्रिकारके । — साम्यूच सक् ४ ए० ११३

११ श्रष्टिबत्वरे। —चास्त्रत, सक ४, पृ० १११

१२ ग्रमि० सा०, अव ६, पृ० १२१

१३ मुच्छ०, १३२

प्रमुख व्यवसाय था। वैश्य देश को समृद्ध करने के लिए व्यापार मे सलग्न रहते थे। वे भ्रनेक नगरों में व्यापार करने जाते थे भीर भ्रपने वैभव का विस्तार करते थे<sup>9</sup> । व्यापारियों के पृथक पृथक समुदाय होते थे जो साथ, कहनाते थे। साथ का प्रधान साथवाह होता था। धन प्रधान व्यवसाय के एव कम के कारए। वैश्यों का स्वभाव भी कटु भीर ककश हो जाता था। वे लोभी समृद्ध, शिष्टजनद्वेपी और निज व्यवसाय में कठोर धन जाते थे<sup>3</sup>। स्थलीय व्यापार के साथ साथ सामुद्रिक व्यापार भी प्रचलित था। अभिज्ञानशाकुन्तल में समुद्र व्यवहारी धनमित इसका ज्वलन्त प्रमाण है<sup>४</sup>।

वर्षो परम्परा मे झूद का चतुष स्थान है। समाज ने यह वर्ण चारो वर्षों मे झधम माना जाता था । सूद्र के विषय गे मनुस्मृति

जनका वास्तविक धम था। बाह्मणादि के सहश जनके जातकर्मादि जनमा नास्तावक घम था। ब्राह्मणादिक सहस्य जनक जातव्यनाव पोडवा सस्तात नहीं होते थे। जनवा वेवस्पत्रो के पठन पाठन का ब्रिप्त कार भी नहीं था। देवाचन के समय भी वे वेदमयों का उच्चारण किये बिता ही देवताओं को प्रशास करते थें। मनु के समुसार उनके समस्त पासिक काय बिना मन्त्रों के होन चाहिएँ। उनके लिए गुझे भी पाप नहीं है थम से उनका कुछ भी श्रयिकार नहीं है न किसी भी

१ किगनेकनगराभिगमनजनित्विभवविस्तारी विश्वज्रम्या । — मच्छ० सक २ पृ०६७

पर्विकताथ विदिशासामिमम् । --- भारत व यक ४ द्व ३४व ₹ चारुटल ३ ७

×

यमि० सा० सकद् पृ०१२१ वाप्या स्नाति विषक्षस्यो दिखवरी मस्रोऽपि वर्त्वाधम ሂ

—मच्द° १३२

मनुस्मति ८४१३

Ę बायमस्त्र प्रशाम स्थादम त्राचितदैयत । ----धितसा० ३६

मनुस्मृति १०१२७

कार्यं करने का प्रतिपेध हैं । द्विज शूद्र को ग्रस्पृश्य-सा समभते थे। शूद्रों का साजिष्य वे कभी स्वीकार नहीं कर सकते थे? । सूद्र कुलीन व्यक्तियों को समादरपूर्वक श्रमिभाषित करते थे3।

तत्कालीन भारत में चतुर्वंगों के ग्रतिरिक्त कुछ ऐसे भी लोग थे जो सन्त्यज कहलाते थे। वे सस्पृश्य होने के कारण नगर से बाहर प्रच्छन्न रूप मे रहते थे<sup>४</sup>। वे कुलविकल

मौर कुलभ्रश होते थे अर्थात् उनका कोई श्चन्त्यज कुल नही होता था<sup>ड</sup> । रूप, जान, दल,

सम्पत्ति-सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी उनका चरित विश्व नहीं होना था<sup>®</sup> ।

ग्रन्त्यजो के ग्रन्तर्गत चाण्डाल भी परिवर्शित थे। समाज मे उनका स्थान ग्रस्यन्त निम्न था । उनकी सबसे नीच वृत्ति या आजीविका थी। वे वध, शीर्षच्छेदन और गुलारीपण में दक्ष होते थे "। नगर में प्रवेश करते समय वे खोर बीर से श्राणां वेते हुए चलते में जिससे मनुष्य उनके स्पर्श भय से मार्ग से हट जाएँ । गुप्त-कालीन यानी फाह्यान ने अपने याना विवरण में चाण्डाली की स्थिति के विषय में लिखा है कि 'जब वे नगर में प्रवेश करते हैं तो सूचना देने में लिए लकडी का ढोल बजाते हुए चलते हैं, जिससे लोग उनके मार्ग से हट जाएँ तथा उनका स्पर्श वचा कर चलें। केवल चाण्डाल मछली मारते, मृगया करते और मास बेचते है।"

मनुस्मृति, १० १२६ 8

द्विज इच वृपल पास्ते न सहते । २ —पचरात्र, १६ मीर्भरप्यभिमाप्यन्ते नामभि क्षत्रिया वया । —पचरात २४७

<sup>3</sup> युतमस्माभिरन्त्यन इति । -- धवि०, धक १, ५० १७ ٧

ग्रविक, ६ म ×

ऋषिशापेन बुनपरिअशमन्त्यजनुलप्रवासमात्मनो । £

<sup>—-</sup> द्यवि०, इपक २, पृ० २६

भवि०, २ %

मुच्छ०, १० १

भपसरत धार्या , अपसरत । कि प्रेक्षच्ये । -- मृष्यु०, अक १०, पृ० ५२५

सम्यता एव सस्कृति के विकास के साथ-साथ चातुर्वर्ण्य मे ग्रन्तर्जातीय विवाह-पद्धति के प्रचलन से वर्ण-सकरता का जन्म ही गया था जिससे जाति-भेद का प्रादुर्भीय भी हो गया था। 'मालविकान्तिमत्र' मे जाति-ब्यवस्या

महारानी धारिली का वर्णावर आता

बीरसेन श्रमभवत वर्णसकर सन्तान ही है। इसके प्रतिरिक्त अनेक व्यवसायो तथा उद्योगो के कारण भी जाति-भेद को प्रोत्साहन मिला था। पृथक् पृथक् व्यवसाय और आजीयिका ग्रहण करने वालो के प्रथक प्रथक समुदाय एव वर्ग बनने लग गये थे जो ब्रागे चलकर व्याव-सायिक जातियों मे परिवर्तित हो गये। उदाहरण के लिए शिल्पकार, धीवर, कृष्यक, नापित, चर्मकार, श्रावक, कृम्भकार स्नादि इसी प्रकार की व्यावसायिक जातियाँ है। ये जातियाँ अपने पैतृक व्यवनाय को ही स्थीकार करती थी। परम्पदागत पैतृक कर्म निन्वित

एव प्रशास होने पर भी, परिहरशीय नही था?। सभ्य जातियों के श्रतिरिक्त यवनी, 1° खस खर्ति, खडा, सहह, विलय कर्याट, कर्या, प्रावरसा, द्ववित चोल, चीन, वर्वर, खेर खान, मुल, मधुषात । सावि म्लेच्छ एव

श्रनाय जातियाँ भी विद्यमान थी। वे स्रवार्थ-जातियाँ देशभाषाका समुचित ज्ञानन होने के

श्रक्ति देव्या वर्णावरो भाता बीरतेनो नाम । ---मालव, सक्र १, पृव २६६

बही बकुलायलिका । सथि <sup>।</sup> देव्या इद शिल्पसकाकादानीतम । 3 ---माल०, श्रद्ध १, ५० २६३

মানিত লাত সকাই বৃত হঙ

श्रीभि॰ शा॰ सक २ पु॰ ५७

ग्-ब॰ ६२२ भद्व चादनकश्चमकार ।

Ę ---- मृच्छ०, स्रक ६ पृ० ३५२ मुच्छ०, सक स, पू० ३७८

यही । 5

٧

ĸ

सहज किल यदिनिदित न सलु तत्कर्म विवर्जनीयम । —अभि० शा० ६ १ 3

एव बार्णासनहस्तामिर्यवनीभिः। — सभि० द्या०, प्रक र पृ० २७ 90

११ मृच्छ० सक ६, ५० ३४६ कारए। उसका श्रशुद्ध एव इच्छानुसार उच्चारए। करती थी '।

महाँ यह विचारिणीय तथ्य है कि विवेच्य नाटककारों में से कालिदास और झूद्रक के नाटकों में तो विविच जातियों का वर्णन हुमा है, किन्तु भास के नाटको में जाति-सकेत नहीं मिलता।

इसके आधार पर हम कुछ निष्कर्ष निकाल सकते हैं —

१ भास ने जाति-भेद की उपेका की है।

२ प्रयवा भास-यूर्ग में जाति-भेद का उदय विशेष ध्यान देने योग्य या ही नही।

३ भाम-युग में कालिदास-युग की अपेक्षा वर्एं-ध्यवस्था अधिक कठोर थी।

४ कालिदास-युग में नाटकों में जाति-वर्णन मिलता है ग्रौर भास के नाटकों में नहीं मिलता। यदि इसका कारण भाग की उपेक्षा नहीं है, तो कालिदाय-युग में जास्यम्युदय भास युग को कालिदास-मुग से पूर्ववर्ती प्रमाणित करता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि आयों की वर्ण-व्यवस्था ने अपने विकास-क्रम मे अनेक जातियों के लिए भूमिका तैयार कर दी थी जिसको व्यावसायिक

वर्ग-भेद

एव श्रौद्योगिक विकास ने श्रौर भी श्रविक विक्सित कर दिया। इससे वर्ग-भेद के

प्रजनन म अर्थ-व्यवस्था को भी अवसर मिल गया । धनी और निर्धन, सेठ और दोन तथा मन्यासी और गृहस्य के बीच अर्थ-व्यवस्था की उपेक्षा नहीं वी जा सकती। राजा श्रीर रक के बीच भी श्रथं-भेद स्पप्टत होप्टगोचर हो रहा है।

वर्ग-भेद पैदा करने में घर्म का भी बहुत कुछ हाथ रहा है। गृहस्थ ग्रोर परिवाजक के वर्ग मुनत आश्रम-वर्म से प्रेरित हुए जिनके वीच घीरे-धीरे अर्थ-भेद भी अपना रम दिलाने लग गया। जो हो, मर्णाश्रम व्यवस्था ने वर्ग मृष्टि में जी नुख योग दिया वह तो दिया ही, बाद म विवसित आर्थिय ढाँचे ने भी उसके विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया ।

१ मृच्य०, सक ६, प्र० ३४८

ब्रालोच्य यूग में राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, गृहस्थ-संन्यासी, स्वामी-सेवक भीर गुरू-शिष्य आदि अनेक सामाजिक वर्ग-भेद दिखायी देते हैं।

उक्त भेदों में राजा-प्रजाका वर्ग-भेद प्रमुख था। राजा प्रजाका शासकीय और प्राकृतिक दोनों प्रकार का सम्बन्ध था। प्राचीन साहित्य

से जात होता है कि समाज ने प्रराजकता की दूर करने के लिए तथा शास्ति-स्थापन के राजा-प्रजा

लिए राजा का नियन्त्रसा स्वीकार किया था। प्रजा का रक्षण एवं पालन राजा का प्रमुख कर्त्तव्य था। जिस प्रकार सुर्वे मन्यकार का विनाश करता है उसी प्रकार राजा प्रजा **का र**क्षण भीर जसका कष्ट-निवारण करता था । वह ग्रपने सुखीं का परिस्याग कर अजा-रंजन में दत्तवित रहता था । राजा-प्रजा का सम्बन्ध पिता-पुनवत् था। जिस प्रकार पिता पुत्र के कच्टों की दूर करने के लिए सदैव तत्पर रहता है, उसी प्रकार राजा-प्रजा की समस्याघी ालप चवन तत्पर रहता हुं, उक्षा प्रकार राजा-प्रजा का समस्याधा स्मीर कच्छों के निवारणार्थ सदैव उचल रहता था । प्रजा के ताय वन्युवद् सम्बन्ध का यह यथं नहीं था कि राजा दुर्ज्य, दुर्विनीतों और कुनार्य-गामियों को दण्डित नहीं करता था। वह राजवण्ड हाथ में केकर कुमार्य-गामियों को नियन्तित करता था। वह राजवण्ड हाथ में केकर कुमार्य-गामियों को नियन्तित करता था और प्रस्परिक विवादों का शमन करता था<sup>४</sup>। राजा स्वयं मर्यादा-पालक होता था भौर प्रजा को भी मर्यादा-पालन की शिक्षा देता था। पाज्य मे राज-भय से निक्टप्टवर्णीय व्यक्ति तक कृपच का अनुसरण नहीं करते थे। फिर ब्राह्मणादि उच्चवर्णों का तो कहना ही क्या १ प्रभा के लिए राजा

१. भ्रालोकान्तात्प्रतिहततमोवृत्तिरासां प्रजाना

तुल्योद्योगस्तव च सवितुरुवाधिकारो मतो व । --- विकार, २.१ २. स्रभि० सा०, ४,७

सर्वस्य त्याग करने की उद्यत रहता था। 'मभिज्ञानकाकृत्तल' में राजा

অভি০ বাত, খ খ

Y. नियमयसि कृमागैप्रस्थितानास्तवण्डः प्रशासमधि विवादं कल्पसे रक्षस्थाय । महाभागः कामं नरपतिरियन्नस्थितिरसी ।

न कदिवद वर्णानामप्रथमप्रकृष्टोऽपि अजते ।

— समित्र सात, प्र-१०

युष्पन्त की घोषमा कितनी मर्मस्पर्वी हैं। उसके हृदय में प्रजा के प्रति कितना स्नेह और सद्भाव है। जनता के लिए उसका हृदय ट्रक-ट्रक हो जाता है।

राज्याभिषेक के पश्चात् राजा सर्वप्रथम यही कहता था कि 'मैं ग्रम पृथ्वी पर पुष्पभार को वहन करने थाला राजा वन गया हूँ ! मैंने न्यायपूर्वक प्रजापालन का उत्तरदायित्व उठा लिया है'।' राजा ग्याय का प्रतीक होता था। प्रजा के निष्पक्ष न्याय के लिए वह स्वयं घर्मामन पर बैठकर पौरकार्यों का श्रवेक्षणु-निरीक्षणु करता था<sup>3</sup>। वह प्रजा के कल्याणार्यं चारों वर्षों से श्राय का पष्ठभागकर रूप में प्रहणु

करता था । राजा-प्रजा के पश्चात् दूसरा भेद धनी-निर्धन का था। जिस प्रकार श्राष्ट्रिक समाज में बोपक-दोष्य या गूजीपति-मञ्जूर वर्ग का

साम्राज्य है उसी प्रकार तत्कालीन धनी-निर्धन भेद समाज में धनिक-निर्धन वर्ग विद्यमान

था। समाज मे जहाँ एक घोर बसत्ततेमा धीर घमित्र जैसे घितक एवं समुद्ध ब्यक्ति थे, बहाँ दूसरी घोर घोरर सीर चारदत्त जैमे दरिदों का भी प्रसिद्धत्य था। धितक-जन 'सर्वेगुणाः कांचनमात्रयन्ते' इम उत्तिक की चरितार्ष करते थे प्रधीत ऐक्वयंसानियों में समस्त गुणों का समावेण स्वीकार किया जाता था। इसके विपरीत निर्वेग व्यक्ति में समस्त दुर्गुलों का खायय था। वरिद्र को जीवन की पठौर प्राप्तां आई तक कि उत्ते चारदित प्रस्तां की समस्त विपरीत किया परता यहाँ तक कि उत्ते चारदित प्रस्तां की समस्त विपरीत किया परता यहाँ तक कि उत्ते चारदित प्रस्ता प्रस्ता की सो सत्ता विपरीत यहाँ होती परित प्रस्ता की जो तन पर चायदत्त की सबसे बड़ी चिनता यही होती

येन येन वियुज्यन्ते प्रजा. स्निग्धेन बन्धुना ।
 स स पापाइते तासा बुज्यन्त इति धुज्यताम् ॥ ----अभि० शा०, ६.२३

२. राजा विलास्मि भुवि सःकृतभारवाही,

यमें छोन परिरक्षणमस्युक्तम् । — प्रतिमा•, ७.११ वे वेववित, महननादमास्यिपपुन मृद्धि । चिरम्रवोधनान्न समाहिनसस्याप्रस्य पर्मागनमध्याशिक्षम् । यस्त्रस्यवेकितः योरनार्यभार्येण तरणवारोध्यदीयता-मिनि । — स्वितः सान्, यकः ६, ५० १०७

प्रवृत्तिच्छित वर्णोग्योः नृपाणां क्षयि शरक्लम् ।
 तपः पद्भागमद्यय ददरयारण्यका हि नः ॥ — श्रांभक द्या०, २ १३

है कि सब लोग दुरिद्र होने के कारण मेरे चरित पर ही सन्देह करेंगे, वास्तविक्ता पर कौन विद्वास करेगा ° ?

१ क श्रद्धास्पति भूतार्थ सर्वो मा तूत्रियण्यति । श्रकनीया हि लोकेऽस्यिन् निष्प्रतापा दरिद्रता ॥ — मुक्यु ०, ३२४ २ सारिद्रपा मरणाडा गरण गम रोचते न सारिद्रपम ।

भारपन्तेश मरण दारिह्यमनन्तक बुखम ॥ — मृच्छ्, १११ इ. मच्छ०, ११२

३ मृच्छ०, ११२

४ मृच्छ० ११५

प्र सङ्ग नैव हि कश्चिदस्य कुक्ते सम्भागते नादरात् । सम्प्राप्ते गृहमुत्सवेषु धनिना सावज्ञमालोक्यते ।।

सम्प्राप्ते ग्रहमुत्सवेषु धनिना सावज्ञमास्रोक्यते ॥ —मृच्यः, १३७ ६ दरिद्रपुरुषमज्ञान्तमना खलुं गणिका लोके स्रवचनीया सवति ।

मृच्छ०, सक २, पृ० ६६

स्यानो के निर्माण में व्यय कर। ग्रीर याचको को प्रमुख दान देकरी दिख बन जाता है।

समाज मे एक वर्गभेद गृहस्य-सन्यामी का भी था। गृहस्य लोक-मर्यादा म रहकर परिवार और समाज के प्रति अपने उत्तर-दायित्व ना निर्वाह करता था। परिवार-

गृहन्य सन्यासी

रक्षण एव पालन गृहस्य का प्रधान कर्तव्य

या। इसके लिए वह अपना पैतक कम या याजीविका ही ग्रहुए। करता था<sup>३</sup> । परिवार के साय-साय समाज का भी उम पर नहुना रहताथा। समाज के नियमी एव परम्पराक्षी का पालन उनके लिए अनिवार्य था। यह लोक-मर्यादा एव लोक समय का उल्लयन कर लाकापबाद एव मामाजिक निन्दा का मागी बनना नहीं चाहताथा। श्रभिपेक नाटकम राम लका विजय के पश्चात गरु रावण के प्राताद में रही हुई सीना को उनकी शुविना जानते हुए भी लाकापनाद ने भय से पत्नी रूप म ग्रहण नहां न रते हैं । 'प्रिमेशान'नाबुन्तल' मे राजा दुप्यत्न लाग मर्यादा का चनन्य प्रतीर हैं । प्रतिहारी दुप्यन्त की प्रशंसाकरत हुए कहना है कि 'महाराज धर्म एव मर्यादा मा निजना व्यान रखते हैं। श्रीयथा एसे अजीनिक रप मा प्राप्त कर कीन साच विचार करता ? गृहस्य की नैतिक एव प्राच्यात्मिक सुद्धि के लिए दैनिक एव धार्मिक प्रमुख्यान भी विहित थे। दन धनुष्ठाना मञ्जन, उपयाम, धर्माचरण, तन, मन बचन तया सम से देताचेन भ्रादि समाधिष्ट थे। मुच्छर टिन' म मैतेय द्वारा देवपूजन

यन सायन पुरस्यापनविहारारामदेवयुन्तवदायकूपयूर्वरलञ्चा नगरी ।

-- मुच्द्रव, धर ६ प्रव १०४

-- मच्द्र० सक् १ प्र० २७ ş भगापिजनमञ्जामिनियभवस्य । सहय कित महिनि दित । सनु तत्वम विजयनीयम् । -- प्राप्ति । "ा०, ६ १

जानतापि च वैदेह्या पुषिता घूमनेतन ।।

प्रत्ययाच हि लोगानामेवमेत्र मया प्रतम II -- प्रिष्ट ६ २६ यमि० गा०, ५१॥

मही धमारितना भनु । इटण नाम सुनोपनत रूप हप्त्या काऽयी विचारयति । — मिनि गार्थिक प्रमुख्य

को निन्दा करने पर चारुदत्त कहता है—'हे मित्र । ऐसा मत कही । सन, मन, यचन तथा बलिकमं द्वारा मृह देवताम्रो का पूजन गृहस्य का नित्य नियम है' ।

गृहस्य-जन ही वार्षवयावस्था आने पर अपने पुत्रादि पर कुटुम्य का भार सीप कर वानप्रस्थी या सन्यासी वन जाते थे। 'प्रतिमा नाटक' मै महाराज दशरण अपने पुत्र राम को राज्यािश्विक्त कर वन जाते का विचार करते हैं । कुछ ऐसे भी सम्यासी थे जिन्होंने सासारिक कच्टो और प्रापदाओं से उद्देशन होकर परिलाजकत्व ग्रहण कर तिया था। सवाहक खूलकर हारा किये गए अपनान ते बिल होकर शाब्य श्रमणुक बन जाता है'। सन्यासियों के लिए सिर मुँडाना ही पर्याप्त न या चरन डिड्य-समा भी उनके लिए सावस्यक थारें।

प्तरस्वी एव ऋषि लोग भी प्राय सन्यासि-बोटि के ही होते थे। भर्मानुव्वान भीर सवरणराय ही इनका जीवन-वर्ष था। 'अभिकान-साकुत्तला' से शकुत्तला की विद्या के समय भी महर्षि कर को भरते तपोपरोध की जिन्हा भी पीडित करती हैं । सपस्वी जन नगर के अपमारो और दोपों से चनने के लिए शान्त आश्रम मे निवास करते वर्ष । उनका जीवन शम्मप्रशान और तेजोमय होता या"। आश्रमवाधी ऋषि नगर के गुलाशक व्यक्तियों को उत्ती प्रकार सममते थे जित प्रवार स्नात तैजालित्त को, पवित्र अपवित्र को सौर जायत सुप्त को समस्तत हैं । आश्रमवाधियों की सुरक्षा का उत्तर-वासिन्द राजा पर होता था। तनस्वियों के पर्माएटोचों और विक्तो के परिवान के लिए

१ मृच्छ०, सक १, प्र०३३

<sup>—</sup> प्रातमा ०, अक १, ३० १० ३ मर्यंव कदाधिनिवर्वेदेन प्रव्रजेयम । — नाह्दत्त, मक २, १० ६६

४. मृच्छु०, ह ३

प्र. बरसे । उपरुष्यते तपोऽनुष्ठानम् । —अभि । ज्ञार, अक् ४, पृ० ७७

६ स्व० वा०, १५ ७ शमप्रधानेषु तपोधनेषु मुक्र हि दाहात्मकमस्ति सेन । — स्रीम० धा०, २७

द मिन गान, प्रश

राजा नी ब्रोर से एक धर्माधिकारी नियुक्त होता था' । राजा ऋपियो की तपस्था मे बाघक विघ्नो का निवारण करता था श्रौर तपोवन के प्राणियो के साथ असत् व्यवहार करने-वाले नो ६ण्ड देता था<sup>र</sup> ।

तरकालीन समाज में स्वामी-सेवक भेद भी विद्यमान था जो धाज भी मिटा नहीं है। किन्तु उस समय स्वामी और सेवक में घरवन्त सद्भावपूर्ण सम्बन्ध था। स्वामी सेवको

सद्भावपूरा सम्बन्ध था। स्वामी सबका स्वामी-सेवक भेव के साथ पुत्रवत् व्यवहार करता था और सेवको की भी स्वामी के प्रति धनन्य

सेवको को भी स्तामी के प्रति धनन्य
भक्ति होती थी। रिवको के साय दया और स्तेह का व्यवहार फरना
ही उचित माना जाता था। कण्य अकुत्तवा को परिग्रह-गमन के समय
पपने परिजनो के प्रति उदार रहने की शिक्षा देते हैं । तिवक का
सावशं प्रपत्ते स्तामी के प्रति अन्यत्त निष्ठा और प्रम था। तिवक स्वामी
का प्रपत्त सा कर उसके प्रति करान्य निष्ठा और प्रम था। तेवक स्वामी
के स्वामें के लिए वह अपने प्राण तक बलिदान करने को तत्तर रहता
था। 'प्रतिज्ञायोगत्वरायरा' ने यौगन्यरायरा ऐमा ही स्वामि-भक्त प्रमाय
था। 'प्रतिज्ञायोगत्वरायरा' ने यौगन्यरायरा ऐमा ही स्वामि परि प्रमाय
पात कर प्रपत्ते स्वामी को महासेन के वन्यन से पुक्त कराता है '।
'स्वम्नामवद्वत' में हमण्यान् वारावरता के मरस्य से विपण राजा के
द्वास करने स्वामी के सुक्त से सुक्त श्री स्वाम कर प्रपत्ते स्वामी के सुक्त से सुक्त से सुक्त से सुक्त से हुक्त से सुक्त से सुक्त से सुक्त से हुक्त से स्वामी स

१. समि० शा०, अन १, पृ० १०

र प्रमिक्शाक, अस १, टूट १० र प्रमिक्शाक, अस

र मृतिष्ठ भव दिनिगा। परिजने भाग्येष्यनु सेविनी । ।

<sup>—</sup>श्रीभ शाव, ४१६ ४ तेन हि धनहॅंशनिकियमनिविष्टमर्तृपिण्डमनुषकृतराजसत्वार यदि ससु

भा १६ अनक्ष्मानक्षयमानाबण्डमतुष्यक्रत्यत्रस्यार याद असु
मा इष्टब्स मन्यते स्वामी । —प्रतिज्ञा०, क्रक १, ए० ३४
५ प्रतिज्ञा०, १.४

रिपुगतमपनीय बरसराज ग्रहसामुपेत्य रसो स्वशस्त्रदीयात् ।

भयमहमपनीतमर्तृदु स्रो जितमिति राजकुले सुख विश्वामि ॥

प्रयत्न करता है। वह स्वामी के भूखे रहने पर स्वयं भी कुछ नहीं साता । उसके साथ-साथ धश्रविमोचन करता है श्रीर राजा के समान ही दु भी रहता है। स्वामियों का सेवको पर प्रमुख रहता था। भन सेवक अपने स्वामी की बालोचना करने में भवभीत रहते थे। 'प्रवि-मारक' में राजा बुन्तिभोज जब अपनी नन्या के वर-निर्एयार्थ मगत्य भूतिय से परामर्श भरते हैं तो श्रमात्य अपना मन्तव्य प्रवट गरने में हिचिवचाता है? । सेवयो की स्वामी के प्रति ग्रनन्य निष्ठा वा वारण सम्भवत स्थामी वा भृत्य के प्रति उदार एव सद्भावमय व्यमहार ही या । 'प्रतिज्ञायौगन्यरायस्य' मे राजा उदयन विपत्ति के समय प्रपने स्वामि-भक्त भमात्य वा ही समरण वारता है?।

तरनालीन समाज में दास-प्रया भी प्रचलित थी। घनियों में गृहो में विभवानुनार दास रहते थे। दासों का कय-विकस होता या। दास स्वामी की म्राजन्म सेवा करते थे। दासस्य से मुक्ति प्राप्त करने में लिए मृत्य देना पड़नाथा। 'चान्दत्त नाटन' में सँज्जलन' धपनी प्रेमिना भदिनिका को वसन्तरोना के दागत्व से मुक्ति दिलाने के लिए भोरी करने झाभूपए। लाना है .। दासों की समाज मे गोर्द प्रतिष्ठा मही थी। दागरव ना नारण पूर्वत्रन्महत पाप गाना जाना था। मतएय दाग जन्मान्तर में दागल्य में मुक्ति पाने वे लिए दूपामी मीर पापों से दूर रहने वा प्रयत्न करते में ।

यह भेर ही नहीं एवं विशेष सामाजिक घीर धार्मिक सम्बन्ध भी या । गुर भीर शिष्य भाषी समाज-निर्माण के भाषार-स्तम्भ थे ।

समाज में विशास में उनका महात्र मोग था। विवेच्य नाटको वे धनुकीनंग से गुद-शिष्य भेद

ज्ञान होता है कि तस्कालीन युग में ग्रन-व्यव याव, ११४

म भूरवदूराणीया साजातः । स्वामित्री हि स्वाम्ययमान्याताम् ।

-- चरिन, धर र. प्र- २१ मा नावकु । सर्वमन्त्रियमञ्जयमनिकार्यको भौतनधरायमने द्वाद्यय दृश्यात ।

—प्रिटिंग चर १, ७० १४

इप्परिकाती का की प्राप्त 70 100 सदद कृष्य ।

देशिय गर्दशमी विशिविती ।
 देशिय च म मेर्डिया दिस्ति ।

e, 3 x

निष्य का पिता-पुत्रवत् घनिष्ठ सम्बन्ध या। गुरु ग्रपने शिष्यों के साथ पुत्रवत् व्यवहार करता या और शिष्य मी पिता के सदृश गुरु का श्रादर करने थे । 'ग्रसिजानशाकुन्तल' में महर्षि कण्य श्रपने शिप्यों को शकुन्तला को पतिगृह तक पहुँचाने के लिए पिता के समान ग्रादेश देते हैं—'जाग्रो, ज्ञपनी भीतिनी को पहुँचा क्रामी '।' माता-पिता वाट्यावस्था में ही धपने पुत्र को विद्याध्ययन के लिए गुरु के हाथों ने सींप देते थे। गुरु की दिल्ला ही गिष्य के चरित्र एव भिष्य का निर्माण करती थी। सिष्य-दीन का कारण गुरु को झयोग्यता माना जाता या । उसमे माता-पिता को घ्रपराधी नही स्वीकार किया जा सकता था<sup>र</sup> । दिाप्य की सुपात्रता का परीक्षण ही गुरु की योग्यता का प्रमाण था। शिष्य के क्यन में ही गुरु की साथकता थी। यदि गुरु कुपात्र शिष्य की शिक्षा देता था तो इससे उसके बुद्धि-लाघव का प्रकाशन होता था?। कुपात्र को शिक्षा देना गुरु के शोरु का कारए। बन जाना था, किन्सु सुपाप को भ्रपना शान प्रदान कर वह निश्चिन्त हो जाता घा<sup>प</sup>। महर्षि कण्य जैसे गुरु नि.स्यार्थ एवं निलीभ भाव से अपने शिष्यों को घामिक एव शास्त्रीय विषयों की शिक्षा देते थे । माजीविका की दृष्टि से प्रध्यापन विद्यादान न होकर ज्ञान का व्यापार माना जाता थार । तयापि साचार हरदास भीर गणदास जैसे वैतनिक सध्यापक भी ये जो साजीविका के सर्थ मध्यापन का कार्य करते थे<sup>द</sup>।

उपर्युक्त बिबरए। के प्राधार पर मक्षेप में यही कहा जा सकता है कि प्रालोक्य नाटकों के युग में वर्ण, जाति एवं वर्ग त्रिविच व्यवस्था का साम्राज्य था। हाँ, देशकालानुसार इन व्यवस्थायों के स्वरूप में

१. भगिग्यास्ते भागंमादेशय । — मभि ः सा०, सक ४, पु० ६६

२. मतीरव बग्यूनवनध्य निशाण्याचार्यमायच्यति शिष्यदोषः । बान ह्यारव गुरत्रेप्रदातुर्नेवापराधोऽस्ति षितुनं मातुः ॥ —पवराध, १.१६

वान ह्यास्य गुरनप्रदानुनवापराधाऽस्तापनुन मातुः ॥ —-पंचराध, १.१६ रे- विनेन्दद्रश्यपरिग्रहोऽपि बृद्धिलाघव प्रमावायतीति ।

<sup>—</sup>मात॰, धक १, पृ॰ २७५ ४. सुधिध्यपरिक्ता विजैवासोचनीया सबुता।—सभि॰ सा॰, धक ४, पृ॰ ६३

६. मान०, १.१७ ६. मत्रति । प्रयाम अवस्थरिमवाद्यम् । कि मया बेतन्यानेनैनेपाम् ।

<sup>---</sup>माल०, मंक १, पृ० २७४

सचर्यभी प्रारम्भ हो गया था।

भस्तापित धन्तर भा गया था। भान-पुन में प्राचीन वर्ण-व्यवस्था है। प्रयो-चतुष्टप ने बन्धन धन्यन्त हर एवं मुस्यिर में। प्रयो-चतुष्टप ने बन्धन धन्यन्त हर एवं मुस्यिर में। वर्ण-मनरना वा भभाव था। इमके विवरीत कानिश्चान-मुग में यर्ण-परन्य भी प्रशुन्ता दियित परिनिधित होती है। इस वाल में पर्य-वर्ण-व्यवस्था भी नियमना के पत्रकरूप जाति-व्यवस्था पर प्राइपित हो पुना था। सूदन के समय में वर्ण-परन्य था हाम भीर जाति-व्यवस्था पर अस्पत्र है हम है। इस समय वर एसम भीर जाति-

जातियाँ भीर यग्ने प्रादुर्भूत हो चुक्ते थे और जातिगत एवं वर्णगत

## विवेच्य नाटको मे नारी का स्थान

भारतीय नारी का इतिहास हमारी सस्कृति के इतिहास का प्रभिन्न धग है। नारी की स्थिति-परिस्थितियों ने ग्रनेक सामाजिक मीडों में सास्कृतिक इतिहास के घनेक घट्यायों का निर्माण किया है। विवेच्य नाटकों में नारी निस्पण एक ऐसे ही बध्याय को प्रस्तुत करता है।

मानब-सृष्टि म नर और नारी का स्थान एक दूसरे के पूरक का है। एक के बिना इसरा अपूर्ण है। बोनो की प्रकृति और इति भिन हो सकती है, किन्तु दोनों का सक्य भिन समाज का अभिन्न अप नहीं है। एक मी एक हो है। उनके जिस

परिपाश्चें में पार्षक्य इंप्टिगोचर होता है यह एकता का साथक है, आधक नहीं । न दो नर अपने निर्मित्त है और न मारो । जिस प्रकार गाडी अपने दोनों पहियों से ही गन्दस्य पर पहुँच सपनों है उसी प्रकार मानव मृष्टि की तक्द सिंद्ध सी नर सौर नारो दोनों से ही सम्भव है । सुष्टि की यद्ति दोनों से हैं, एक से नहीं ।

प्राचीन भारतीय समाज मे नारी-विषयक हॉट्क्लीण उदारें एव विशाल था। बंदिक घायों की दृष्टि मे नारी धर्म एव घर्ष की प्रदानो, वंभव और सीरय की जननी, मुहलक्ष्मीरूप और सर्वपूर्या समभी जाती थीं। भरत मुनि ने भी अपने 'नाट्यशाक्ष' में इसी घात का समर्थेन किया है। उनके घनुसार ससार मे मानवमात्र का चरम जहत सुल है और सुल का मुलाधार नारी हैं। यनु भी दसी सिद्धान्त मे

देखिये, रत्नमयी देवी दीक्षित नीमेन इन सस्कृत द्वामाच पृ०१५

सव प्राप्तेण लोकोध्य सुर्यामन्द्रति सवदा ।
 मुलस्य च खिलो मूल नानाशीलधरादचता ॥ —नाटमदास्त्र, २० ६३

विश्वास करते हैं कि 'जहां नारियों का घादर एवं सम्मान होता है, वहीं देवता निवास करते हैं और जहां जनको अपमान एवं अनादर की टिप्ट से देवता जाता है नहीं राभी निभाएं निप्पन सिक्त होते हैं ।' 'जो पुरुष है वहीं की है' क्युत्मृति के इस वाक्याध में नारी को पुरुष के समान होत समाज का अविभाज्य एवं प्रमुख अग माना गया है। 'वातप्य बाह्मएं' में कहा बचा है कि 'पत्नी पुरुष की आता का आधा भाग है। इसिलए जब तक पुरुष पत्नी को प्राप्त नहीं कर तेता तब तक प्रजोदादन न होने से वह अपूर्ण रहता है'।' 'महाभारत' में भी नारी के माहास्य के विपय में लिखा है कि 'आर्यों पुरुष का प्राधा भाग है। वह उसका सबसे उत्तम नित्र है। आर्यों निवर्ग का मूल है धीर सहार-सार्य से तरने के इच्छुक पुरुष के लिए आर्यों हि अपूर्ण साम हैं।

प्राचीन संस्कृति एव सम्यता के विवेचक डा॰ वासुवैवाररण प्रयचाल के मतानुसार 'स्त्री इत का ज्यास है और पुरंप उत्तकी परिधि है। जिस प्रकार हुत्त के ज्यास को तिगुना करके परिधि वनती है जसी प्रकार स्त्री के जीवन से गुरियत होकर पुरंप का जीवन वनता है। यही पति-पत्नी या गृहस्य के जीवन का साज-सगीत है"।' देश के महात् समाज सुवारक लाला लाअपतराय ने एक बार ठीक ही कहा या कि 'स्त्रियो का प्रवन पुरंपी का प्रवन है। चाहे सुतकला हो, चाहे भविष्य, पुरंपी की उन्तति बहुत कुछ स्थियों की उन्तति पर निर्भेर है।'

कहने की आवश्यकता गही कि जीमल सवेदनशील नारी समाज और सामाजिक किया-कलाय का खुट अब है। सम्मता और सम्झित के विकास में उसने सबैव सिक्रय योग दिया है वे रही है और देती रहेगी। एक श्रीर नारी के लोती गाने वाले मधुर कण्ड में राष्ट्रनाथकों को कर्सव्य की प्रेरणा देने की यदि क्षमता विध्यान है सी दूसरी ब्रोर उसके पतना फुलाने वाले करों में विद्व पर सामग करने की शनित निहित है। सुधीलता, विधिक्षा, समर्गण, उसम्

१ मनुसमृति, ३ ५६

२ यही. ६४४

३ रातपय-त्राह्मरा, १२११०

४ महाभारत, ग्रादि पव, ७४४१ ५ हिन्दु परिवार-मीमासा की भूमिना, पृ० २५

व्यवस्था, लज्जा और प्रेम की साक्षात प्रतिमा नारी, कन्या, गृहिणी, सहचरी ग्रीर माता के कर्मठ रूपो में परिवार, समाज श्रीर राष्ट्र की की मगलविधानी है।

मालोच्य-नाटक-पुग मे नारी की अवस्था ह्वासोन्म्ख टव्टि-गोचर होती है। उसकी सामाजिक स्थिति प्रशसनीय नहीं थी।

नारी कापव

नारी-विषयक उदार एव विशाल हप्टी-कोण समाप्तप्राय था। उसका वैदिक-युगीन देवी-पद लुप्त हो चुका था।

गार्हेस्टम एव दाम्परम जीवन के उच्चादर्श केवल वर्शन की वस्तु रह गये थे। नारी-स्वातन्त्र्य नाम मात्र के लिए या। नारी सामाजिक नियमी एय यश्यनी की श्रद्धला में बावद हो गई थी। गुरुजनों, के साय पति का नियम्त्रण तो उस पर पहले से ही या और यह जोक-सम्मत्थाः।

समाज मे गारी की प्राथमिक एव अनिवार्य कर्मभूमि गृह एव

गृहपव

परिवार ही था। गाटकों में प्रयुक्त 'कुद्म्विनी' एव 'गृहिएगी' शब्दों से भी यही व्यक्तित होता है कि नारी का कार्यक्षेत्र विस्तृत होने की

श्रपेक्षा प्रायः गृह एव परिवार तक ही सीमित था। यह घर की स्वामिनी और प्रवर्तिका होती थी। वह गृह भी ब्रान्तरिक व्यवस्था का सुचारु निरीक्षण एवं ब्रवेकस करती थी। गाहँस्थ्य एवं पारिवारिक विषयो एव समस्यायो में गृहपति गृह-रवामिनी ने ही परामर्श करता था। 'प्रतिज्ञायीगन्धरायरा' में राजा महासेन ग्रपनी पत्री वासवदत्ता के विवाह-सम्बन्ध के विषय में भ्रपनी

रानी के विचार भी जानना चाहता है।

श्रावं! धर्मभरगीऽपि गरवशोऽप जन । गुरो पुनरस्या अनुस्पनरप्रदाने -- श्रीभि० शा०, सन १, ५० २१ २. उपयक्षा हिवारेषु प्रमुता सर्वतीमुर्वा । —-म्रॉभि० शा०, ४.२६

२. श्रम धर्षरात्रेज्नमाक बुद्धिन्या यशोदया"ा - वा॰ च॰, श्रन १, १० ११

४. ग्रमिल गाल, ४१६

**प्रस्मान्यद्धी मागध काक्षिराजी बाग भौराष्ट्री मैथिल गूरनेक** ) एने नानार्थें सेमयन्ते गर्धमाँ बस्ते बैतेचा पात्रता मानि राजा ।।

गृह स्वामिनी होते हुए भी नारी की 'श्रय च इति' नहीं थी। उसे स्वामिनी बनकर गृहिणी-पद के महान भार को भी वहन करना पडता था'। गृहिणी-पद श्रर्थन्त उत्तरवाधित्वपूर्ण था। इसकी प्राप्ति सहज और सुपम नहीं थी जैसाकि प्राय समक्षा जाता है। इसके विष्ट रखान तरह आप से सुप्त के स्वाप्त प्राप्त के साम जो थी के कि त्यागमंगी नारों हो गृहिणीत्व को अधिकारिणी थी और वही इस पद के कर्तन्थी आप प्राप्त की समस्य एक विष्कृत कर सकती थी। इसी पद पर नारी पार्तिवारिक कर्तन्थ्य एक विष्

पृष्टिणी कुल के लिए वरदान-स्वरूप होती थी। वह धपने क्लंब्य-पालन एव गुढ़ावरण से पितृकुल एव पतिकुल मोनी वयों को उज्जवल करती थी। दुरवर्षित घोर दुरवर्षात्र होता वयों को उज्जवल करती थी। दुरवर्षित घोर दुरवर्षात्र होता क्लंब्य-पितृकुल एव पतिकुल ने कलिक साधिस्वरूप होती थी थीर पपने दुरावरण से कुलहय-पितृकुल एव पतिकुल पन कर पति एव परिवार के विभवानुल हल्यों में हो प्रति कण ज्यस्त रहती थीं। गुड़वन की सेवा-गुकूला, मारतीजन के साथ संखीसम व्यवहार, पति हारा निरावर होने पर भी कोच से विपर्वत स्वावरण न करना, गीभाग्य पर गर्व न करना, परिजन के प्रति अनुप्रह—में गृहिणी के प्रमुख कत्त्र व्ये । यही जुलबधुनों की विशा थी। नारी की गृहिणीत्व की विधा ग्रवसे पितृकुल में ही ये जाती थी। 'अभिजानघाकुत्तल' में शकुत्त्वा के पतिगृह-गमन के प्रवाद पर महर्षि कब्ब आध्यमवासी होते हुए भी उत्ते लेकिक प्राचर व्यवत्व देते हैं।

कुलवधु के लिए पति ही आभरण और मण्डन था"। वहीं

मिननवती भर्तु इलाव्ये स्थिता प्रतिणीपदे । — प्रमि० शा०, ४१६
 शुश्र्यस्य गुरूरकुर प्रियससीवृत्ति सपत्नीवने

पत्पुविष्रकृताऽपि रोषण्तया मा स्म प्रतीप गम ।

भरताय स्वायम्बर्धाः परिजने भाग्येथ्वनुत्मेकिनी

यार्यय सहिस्साप परिजने भाग्येथ्वनुत्मेकिनी

यार्यय सहिस्सापय सुकारयो वामा कूलस्यायय स्वाप्य का०, ४१६

३ वही, ४१६

३ वहा,४१६ ४ वही,४१८

५ मार्यपुत्र एव मम माभरणविदेश इति जानातु भवति ।

उसना गर्वन्य ग्रीर जीवनाधार था। उते तदा प्रपने स्वामी के कच्छो एव दु सो नी ही जिन्ना रहती थी। 'श्रीभेषन नाटक' में पतित्रता मीना प्रपते दु सो नी निन्ता न कर राम के निषय में श्रामित होनी हुई नहती है—'हे हनुमान ! तुम राम से मेरी धवस्या का इस प्रकार वर्णन नरना जिनमें ने भोशाकुल न हो उठें ।' पति की प्रसत्ता एव सत्तीप के लिए पत्ती वर्ड-भे-वडा त्याग करते से लिए—यहाँ तक कि सप्तील स्वीपार करते के लिए भी उच्चत रहती भी । प्रारमधुषो का विच्यान कर प्रिय जिने व्यार करते के प्रस्तुत रहना उसके स्थाप करते के प्रस्तुत रहना उसके स्थाप करते को प्रस्तुत रहना उसके स्थाप एव तप को पर्यक्रास में 'विक्र भोवंधीय' में रानी श्रीमिती श्रीर 'मालविकाप्तिनिन' में महाराजी वासिव्या प्रस्तुत रहना उत्तर खीर 'मालविकाप्तिनिन' में महाराजी वासव्यत्ता प्रपने पति के उत्कर्ष के लिए ममल राजभीग का त्याग कर प्रचटन वेष में रहती है भीर प्रपादती के साथ प्रपने पति का विवाह कराने से सहायक सिढ होती है'। इसके अधिक त्याग को चरम सीमा ब्या होगी '

पति का सम्मान एव स्नेह-प्राप्ति ही पतिवता नारी का चरम ध्येय था। भर्तुस्नेह की प्रधिकारिएती नारी मर जाने पर भी प्रजर- प्रमुद्ध नहीं की धीकारिएती नारी मर जाने पर भी प्रजर- प्रमुद्ध नानी जाती धी । इनीतिए विवाहादि के प्रवस्त एर नारी को धीमायवती होने के साथ-साथ 'भर्तुबंहमता भव' , अर्तुबंहमानसूक्क महावेवी जन्द कासव्त' , 'भर्तुर्दिभमता भव' , धादि प्रादीवाद भी परिवार-जन को धीर से दिये जाते थे। पति हारा निराहन तारी का जीवन निरुक्त-सा होता था। कुतब्ध धपने चरिक एव धावरए एर

४ घरमा सा स्त्री या तथा वेत्ति अनी । भर्तृस्तेहात् सा हि दम्बाप्यदम्या ॥ ६ वत्से अर्तवहमसा अन ॥

ण यही। म जाते<sup>)</sup> भर्तरभियताभव।

<sup>—</sup> লমিত লাত, লক ত, দৃত (১২১

मृहपद के पस्चात् नारी का परिवार-पद विवेचनीय है। परिवार में मारी का स्थान उनके सातृत्व पर ग्राधारित था । परिवार मे माता का विशिष्ट एवं सम्माननीय स्थान या । पुत्रवती नारी वशपरम्परा की

परिचार-पट

श्रीधिष्ठित करता है ।

यविच्छित विधात्री होने के कारण कल मी प्रतिष्ठा होनी थी । वह पुत्र रूप में अपने पतिकुल के वशसूत्र को भारण करती थी रे। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में विरह पीडित दूप्यन्त के शोक का कारता उसका शकुन्तला के प्रति श्रवण्ड प्रेम तो है ही, साथ ही उसके सेद काहेतु यह भी है कि उसने गर्भवती शकुन्तला का परित्याग कर ध्रपने बश को ही समाप्त कर दिया। सन्तानवती स्प्री वशप्रवर्तिका होने के कारण पति के हदय की भी श्रविष्ठाती होती थी। ख्ते पति का ब्रावर एव सम्मान प्राप्त होना था<sup>3</sup>। विकमीर्वदीय मे राजा पुरुरवा अपने पुत्र आयु को देलकर उसकी माता उबेशी को 'पुत्रवती का स्वागत है' ऐसा कह कर सम्मानपूर्वक ग्रद्धांसन पर

मातृत्व नारी की चरम परिलति थी। 'माना' की मुधार्वायणी भूमिया की प्राप्त कर नारी अपन जीवन को सार्यक समभनी थी। भागवा ना आहं कर नार अपने जायन का नायक नानका था। मीर पुत्र में माता बनने में बहु गौरव का ब्रानुमव करनी थी। 'मान-विकाबिमन' में बमुमित की दिजय पर परिवाजिका द्वारा बयाई देने पर घारिसी यही कहती हैं कि मुझे यही सुख है कि मेरा पुत्र दिता के माना पनात्माली बना । यही कारण था कि नारी को मेवा 'के माना पनात्माली बना'। यही कारण था कि नारी को मेवा 'के महार्थ की की स्वार की की की बात की की स्वार्थ की की

म रोपिनेप्रत्यात्मिन धमपत्नी त्वक्ता मया नाम क्रमप्रतिष्ठा । ₹ --- श्रमि० शा०, ६२४ Þ

वहा । ययानेरिव श्रमिष्टा भनवहमना भव । 5

मृत स्वमित सञ्चाज सब पुरुमवाप्तृहि ॥ ---प्रमि० ग्रा०, ४७ स्वागत प्रथवत्यै । इत कास्यनाम । —वित्र०, भ्रश ४, पूरु २४८ भगवति । परितृष्टास्मि यस्तितरमञ्जानी म बत्यकः ।

<sup>—</sup>माल**० धन ४, पृ० ३**५३ बत्त । बीरप्रगविनी भव । — समि॰ शा॰, सक् ४, ए० ६४

कोई ग्राक्षेप सहन नहीं कर सकती थी। वह ग्रपनी चारित्र्य-गुढि के प्रत्ययार्थ कठोर-से-कठोर परीक्षाएँ देने को तत्पर रहती थी। 'ग्रीम-पेक नाटक' मे सीता राम के विक्वास के लिए ग्रप्ति से प्रविप्ट हो जाती है । पति के ग्रसानिष्य या प्रवासकाल मे नारी सासारिक सुखो से निलिप्त होकर तपस्थिनीवत् शुद्ध एव सास्थिक जीवन यापन करती थीं । पति का प्रेम प्राप्त करने के लिए बत-उपनास मादि भी करती थी<sup>3</sup>।

भार्यो पति के सुख-दुख की सहयरी थी। जीवन की सभी प्रवस्थाओं में यह पति की अनुगामिनी थी<sup>४</sup>। वह वस्तुत अपनी 'श्रद्धांगिनी' अभिधा को सार्यक करती थी। सकट-काल में तो वह प्रपत्ते स्वामी की सच्ची सहचरी थी। विपत्ति से बहु तन, मन श्रीर धन सब कुछ पति पर न्योछावर कर देती थी। 'त्रतिमा नाटक' में सीता वनवास-गमन मे राम का ही अनुवर्तन करती है । 'मृच्छकटिक' मे चारदत्त की स्त्री धूता पति को चोरी के कलक से बचाने के लिए अपनी बहमूल्य रत्नावली तक दे देती है।

गृहिणी एव पत्नी के प्रतिरिक्त नारी का प्रेयसी रूप भी हर्ष्टि-गोचर होता है। प्रेयसियों दो प्रकार की थी—एक दो वे जो विनाह के पश्चात पति को घाराध्य समर्फ कर प्रेयसी उसी से एकतिष्ठ प्रेम करती थी और इसरी

बाकुन्तला, कुरमी, बासबबता मादि इसरे प्रकार की प्रेयसियाँ है।

૧ શમિલ, દરય

২ মনিংলাং, ৬২৪

यथानिर्दिश्ट संपादित गया प्रियानुप्रसादन नाग वृतम् । दारिका एत —विक०, सब ३, पृ० २०६ गण्छाम ।

यावदिवानीमीहशाभीकविनोदनार्थमवस्था कूटुम्बनी पैथिली पश्यामि ।

<sup>—</sup> प्रतिया०, धक ४, ५० १२६ ५ मा स्वय मन्युभूत्पादा परिहासे विशेषत ।

शरीरार्चेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥ --- प्रतिमा ०. ११०

प्रतिमा॰, १२५

मृहपद के पदचात् नारी का परिवार-पद विवेचनीय है। परिवार में नारी का स्थान उसके सातृत्व पर ग्राघारित था । परिवार मे माता का विशिष्ट एव सम्माननीय स्थान परिवार-पद था । पुत्रवती नारी वशपरम्परा की

अविन्छित विधाती होने के कारण कुल की प्रतिष्ठा होती थी । यह पुत रुप में ग्रपने पतिकुल के वशसूत की धारण करती थी । 'म्रिभज्ञानशाकुन्तल' मे विरह पीडित दुप्यन्त के बोक का कारण उसका अकृत्तला के प्रति झलण्ड प्रेम तो है ही, साय ही उसके खेद का हेलु यह भी है कि उसने गर्भवती शकुराला का परित्याग कर अपने यश को ही समाप्त कर दिया। सन्तानवदी स्त्री वराप्रवर्तिका होने के कारण पति के हृदय की भी प्रविधानी होनी थी। जसे पति का आदर एव सम्मान जास होना था<sup>3</sup>। 'विकमोर्बरोय' मे

भविष्ठित करता है<sup>४</sup>। मानुत्व नारी की चरम परिएाति थी। 'माना' की मुधार्वापणी घर्मिघा यो प्राप्त कर नारी अपने जीवन को सार्थक समझती थी। ने पिता ने निता निर्माण के से बहु गीरव का ध्रतुभव करणी थी। 'माल विकासिमन' में बसुमिन को विजय पर परिव्राज्ञिक हारा वधाई देने पर घारिणी यही वहनी है कि मुक्ते बहो सुल है कि मेरा पुत्र पिता के समान पराकमाली बना' । यही कारण था कि नारों को नवा भक्षवर्ती और बीर पुत्र की माता बनने का श्रामीबाद दिया जाता था ।

राजा पुररवा अपने पुत्र आयु को देखकर उसकी माता जर्येगी को 'प्रत्यती का स्वागत है' ऐसा कह कर सम्मानपूर्वक अर्जासन पर

न रोपिनेऽञ्चारमनि धर्मपरनी स्वक्ता मधा नाम क्लप्रसिद्धा । --- श्रमि० भा०, ६ २४ ç यहा ।

गगानरिव "मिण्डा भनुबहुमना भव । \$ सुत त्वमपि गन्नाज सब पुरमवाध्युहि ॥

<sup>—</sup>ঘদি৹ ঘা৹, ৮৬ स्वागत पुत्रवरये । इत बाह्यनाम । —विक∘, अव १ पू० २४⊏ भगवित । परित्रप्रास्मि यत्वितरमनुजानो स बन्यकः ।

<sup>—</sup>माल० धर ४, पू० ३५३ — श्रीमञ्जाल, सक ४, पुरु ६४

६ वत्स्र । वीरप्रमविनी नव ।

पुत्र-दर्शन से माता का रोम-रोम पुलकित हो जाता था'। यही उसके नारीत्व की सार्थकता थी।

नारी के मातृरूप का समाज में यथेष्ट सम्मान था। माता मनुष्यों के लिए देवताओं की भी देवता मानी जाती थी?। उसकी माजा सर्वावस्थाओं में शिरोघार्य होती थी। पुत्र माता के आदेश से सकार्य तक करने को बाध्य हो जाता था । 'मध्यमध्यायोग' में घटोत्कच अपनी माता के व्रतपारणार्थं उसके घादेश से बह्महत्या तक के लिए उचत

हो जाता है<sup>3</sup>। पारिवारिक क्षेत्र के साथ-साथ नारी का सामाजिक कार्य-क्षेत्र भी था। गृह एवं परिवार से बाहर भी उसकी कर्मभूमि थी। सामा-

जिक उत्सवीं, समारोही भीर विविध आमोद-प्रगोदों में नारी पति की सनिय सामाजिक क्षेत्र सहयोगिनी थी। वह उत्साह एवं उमंग

के साथ उत्सवों में भाग लेती थी और उनके बायोजन का सम्पूर्ण कार्य-भार सम्भालती थी। 'मालविकाग्निमित्र' में धारिएी अशोश-बोहदोत्सव का सम्पूर्ण प्रायोजन करती है और पति एवं परिवार-जनी के साथ उत्सव को सफल बनाती है । राजकुत एवं राजारत.पुर में स्थियाँ विभिन्न कर्मचारियों के पदो पर नियुक्त हुन्ना करती थीं। स्त्री-परिचारिकाओं, यबनी , उद्यानपालिका , बन्दीगृहरक्षिका मादिका उल्लेख इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

१. इय ते जननी प्राप्ता स्वदालोकनतस्परा । स्तेहप्रस्वतिभिन्नमुद्धहस्ती स्तनाशुकम् ॥ -- विकo, **४.**१२ २. भाता किल मनुष्याचा देवतावा च देवतम । - मध्यमञ्जायोग, १.३७

9. वही. १ ह

 जयतु जयतु भर्ता । देवी विज्ञापयति—सपनीयाज्ञीनस्य कुसुमसहदर्शनेन मगारमभः सफल, त्रियतानिति । —माल०, शक ४, प्र० ३४२ एप बाणसनहस्ताभियंवनीभिवंतपुष्पमालाधारिखीमिः .....

— श्रमित सात, श्रंक २, पृत २७

—मालण, अंक ३, पृ० २६० तसः प्रविदात्यद्यानपालिका यद् सारभाड गृहन्यापारिता माधनिका देव्या संदिष्टा ।

—माल o. प्रंक ४. प्रo ३१६

तस्कालीन युग में नारी सामाजिक एवं द्यार्थिक हप्टि से परतन्त्र थी। समाज में गुहिणी, परती, प्रेयमी और माता के विविध रूपों में ग्राहत होने पर भी वह शपने व्यक्तिगत

नारी को परतन्त्रता ग्राचरसा में स्वतन्त्र नहीं थी। स्वेण्टा-चारिता असके लिए ग्रच्छी नहीं समभी

जाती थी। 'श्रीभज्ञानशाकुन्तल' में बुत्यन्त द्वारा निराहत शकुन्तला जब रोती हुई रुष्य शिष्यों का श्रतुगमन करती है तो वे उसके इस स्वैच्डावरण पर श्रत्यन्त कृद्ध होत हैं। ही नौनायंवस्था में पुरुष्ण के सरक्षण में रहतों थीं और विवाहीगरान्त पति को नियन्त्रण उस पर रहता था। मनुन्मृति में भी हिनी स्वांतान्त्र विज्ञात थीं"। पित की इच्छा प्रतिचला हों। पित की इच्छा प्रतिचला हों। पित की इच्छा प्रतिचला थीं। पित की इच्छा प्रतिचला थीं। पित अपनी हती की पहें चोह वैसे रल सकता था। उस पर समाज या क्या में पितृकुल का कीई नियन्त्रण मही था। विवाहीगरान्त नारी पितिकृत को हो तोना एव लक्ष्मी मानी' बाती थी। पति की विश्वा हों या श्रीया, उसका पितृत्व में निवस ही लोकमन्मत था'। आतिकृत में रहने वाली नारी, मती एवं युद्धचरिता हान पर भी, समाज म निन्दा एवं वचनोत्रता कार्या पति करने तथा थीं। महुप्य समें विवाह पति हों। साथ प्रतिकृत के स्वत एवं वचनोत्रता कार्या कार्या के पति वे विवाह पति हों। साथ पति स्वत पति वा साथ समल्य एवं अत्याया शकाएँ करन वन्न जाते थे"। इसीविष्ट पितृत्रता नारी को लोकापत्यत्व के भय वे पतिनृह से दासी हर पत्त न भी बाध्य होना पत्त था। 'श्रीभज्ञनतान्तल' में पण कृष्टी विष्ट या प्राई व बुत्यन्त बारा श्रनीकृत के वो नार पर भी सण्य प्रति विवाह से वी नार पर भी सण्य होते विष्ट वा नार स्वत विवाह से विवाह से वी नार पत्त वा या। 'श्रीभज्ञनतान्तल' में पण क्राई विष्ट या प्रति होते वो नार पर भी

धाङ्गरब—(ग्ररीप निवृत्य) कि पुराश्चामे स्वान श्वमवनस्वते ?

<sup>—</sup> सनि० शा०, सक ४, पृ० ६४ ९ पिता रक्षति नौमारे चता रक्षति योवन १

रणित स्थविरे पुत्रा न स्तो स्थात प्र्यमहति ॥ — मदुस्पृति, १ ३ व प्रनिक गाव, ५ २६

पत समीपे परिसोनरियात प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वयं स्त्रि ।

<sup>--</sup> प्राप्त वार्व्याप्त । प्रवाद स्वयं क्षात्र । -- प्राप्ति वार, ५ १७

चनीमित ब्रातिबुलैक्सअयां जनोप्रयदा अर्तुंगती विभवत ।
 स्पित सा०, ११७

शक्तला का पतिगृह में दासी रूप में रहना ही उचित समभता है। । इसमें शार्ज़रव दोषी नहीं है। यह तत्कालीन समाज श्रीर सामाजिक ध्यवस्था का दोष है जो उसे ऐसा सोचने को बाध्य करती है। लोक-निन्दिता नारी, शुद्धशीला होने पर भी पति द्वारा त्याज्य थी। 'अभिषेक नाटक' मे भगवान राम, सीता की पवित्रता को जानते हए भी, केवल लोकनिन्दा के कारण उसका परित्याग करने की तत्पर हो जाते हैं ।

पुरुषों के लिए बहु विवाह की स्वीकृति भी नारी की परतन्त्रता भे सहायक थी। स्त्री पति का तिरस्कार एव प्रपमान सहती हुई भी पतिकृत में रहने को पिवटा थी, किन्तु पुरुष राष्ट्रवरिया एव बीलवती पत्नी के रहते हुए भी बहु-विवाह के लिए स्वतन्त्र था। पुरुष अपनी कामक वृत्ति की शान्ति के लिए विवाह पर विवाह करता था और स्त्री अपनी परवकाता पर स्नामुबहा कर शान्त हो जाती थी। स्त्री पति पर जीक कर, कुछ हो कर घन्त में अपने को भाग्य के हाथ में समिपत कर देती थी। मालविकाग्तिमित्र' मे रानी धारिएो। मग्तिमित्र और मालविका की प्रश्यामीला को देख कर पहले तो ग्रत्यन्त कुद्ध होती है श्रीर घोभ-नश मालविका को बन्दीगृह में उलवा देती है । किन्तु इसका पति पर कोई प्रभाव न देख अन्त मे दोनो का विवाह कराने को तैयार हो जाती है ।

नारी ब्राधिक हेष्टि से भी पराधीन थी। ब्राधिक विषयी में बह भपने पति पर भवलम्बित शी<sup>ध</sup>। उसके भरण-पोषण का उत्तरदाशिल पति पर था। ग्राधिक परतन्त्रता का यह तात्पर्य नही है कि स्ती की निजी सम्पत्ति होती ही नहीं थी। स्त्री की व्यक्तिगते सम्पत्ति स्त्री

मण तु वेरिस द्याचित्रतमारमन । 8 पतिकले तव दास्यमपि क्षमम ।।

-- মমিত লাত, ধ ২ড जानतापि च यदोहा। शक्तिता धमकेतन 1। ₹

प्रत्यवार्थं हि लोकामामेवमेव मया कराम ।। ----व्यक्षित्, ६२६

मालविका बयुलायलिका च पातालवाम निगरापद्यावटप्रमूथपाद नागप यके इवानुभवत । — माल० धक ४, पुरु ३१६

भगवती । त्वयानुमतेच्छाम्यायंसुमतिना प्रथम सन्तिसता मानविदासार्य

पुत्राय प्रतिपादयिन्छ । ——माल∘, सक् ५ प्र∘३४४ मर्थत पुरुषो नारी या नारी सार्थत पुषानु । — मृत्छ०, ३ १७ षनं व्हनादी थी", दिस पर उनके पनि का काई अधिकार नहीं होता था। 'क्वीट्रम का उपनी व क्ये में उसे सूर्य स्वेदन्यता प्राच भी। यह इन्द्रानुसार उन घन का उपभा कर गक्ती थी। 'क्व्य व्हिट' में धूना मुदर्गमास्ट के चोरी चसे जाने पर उसके स्थान पर निर्दी सम्पत्ति स्वस्य मातृपुर से उपल घ रत्नावसी देती है'। मनु' तथा वाजवन्त्रमें ने 'स्वीवन' को छ प्रकार का बतामा है—१ विवाह वेदा में द्यान के समीप पिता सार्विद्वारा दिया हुआ घन, २ पित या समुराक बाला द्वारा प्रदक्त मानूपपादि क्रव्य, ३ भीन के कारण पनि का दिया हुसा घन बोर ४, ४, ६ माता पिना एव आना से प्रान्त सन।

द्मालोच्य नाटका म गृहिसी एव पत्नी का ही प्रधिपः वर्णन है। विज्ञवा ग्रीर उसकी स्थिति पर वहुत कम प्रकाश डाला पया है। इसका कारए। यही हो सकता है कि

विधवामों की स्थिति सहचर एव जीवनस्था के विनास से विधवामों की स्थिति सहचर एव जीवनस्था के विनास से विधवा का समाज में कोई विशेष स्थान

नहीं रह जाता था। 'मालविकानिमिन' स प्रमुक्त 'पुनर्नवी रूतवैषव्य दुन्वया' पब्द से विषया की दमनीयावस्था का सम्पूर्ण पिन्न मैनपटल के समक उपस्थित हो जाता है। यिषया स्त्री पिन्न मैनपटल के समक उपस्थित हो जाता है। यिषया स्त्री पति की मृत्यु के परवान तपित्वनी-सम्भावन व्यवीत करती थी। 'मागितक वार्यों में विषया की उपस्थित मगलमय नहीं मानी जाती थी। विवाहादि प्रवसरों पर सीनायवती दिनया ही समस्त मगलकृत्य सस्मन्त करती थी। विवाह के लिए दायाविकार का नियम भी नहीं था। यह पति की सम्पत्ति की सम्पत्ति की उपस्थित वार्यों का नियम भी नहीं था। यह पति की सम्पत्ति की उस्पत्ति की सम्पत्ति की सम्पत्ति की सम्पत्ति की स्तर्याक्षित्र पत्ति पत्ति थी। 'स्त्रिमनावाक्षकृत्तल' के सेठ धनमित्र की मृत्यु के परवात् उसमी समस्त

१ भारमाभाग्यक्षतद्वश्य स्वीद्वव्येखानुकन्पित । — मृष्ट्वः, ३ २७ २ इय च मे एका मानुग्रहत्वःचा रत्नावती तिष्ठति ।—मृष्ट्वः, भक ३ ५० १०३

रै मनुस्मृति ६ १६४

४ याज्ञवस्क्य स्मृति २१४३

१ माल०, भक्ष ५ पृ०३५० ६ ततो भाग धरीरमधिसात

त्ति काक्षे क्रारीरमधिसारकृत्वा पुननवीकृतवैशब्यदु समा स्या त्यदीर्थ वेदानयतीर्थं दोने काषाये सहीतः। —माक्षक प्रक ५ पृक ६५० रुप्ततान् त्वरताम् प्रोंमां। एव जामाक्षा प्रविधवामि धन्म तरचतृत्तास

प्रवेदयते। —स्व∘ वा∘,धक ३, पृ० ६२

सम्पत्ति राज्याधिकार में होने वाली थी, किन्तु गर्भस्थ बालक के कारए वह राजकीय होने से बच गई।

समाज मे सती-प्रथा भी प्रचलित थी किन्तू इस प्रधा का कठोरता से पालन नहीं किया जाता था। विद्यवा सती होने के लिए

बाध्य नहीं थी, श्रपित स्वतन्त्र थी। 'मृच्छकटिक' मे पतिवता धूता अपनी

सती-प्रया

इंच्छा से पति का मरख रूप धमगल

मुनने से पूर्व अग्नि में प्रविष्ट होना चाहती है । 'ऊरुभग' मे दुर्योधन की महियों पति के साथ ही अग्ति-प्रवेश का निश्चय कर लेती हैं।

म्रालोच्य नाटको के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पर्दा-प्रथा का भी समाज मे अस्तित्व था। कुल-नारियां घर से वाहर प्राम. धूँघट निकाल कर जाती थी। 'प्रतिमा नाटक'

वर्ग-प्रथा

में वनगमन के ध्वासर पर सीता माग

में प्रंपट निकाल कर पलती है। 'स्रभिज्ञानशाकुन्तल' मे शकुन्तला दुष्यन्त के समक्ष स्रवगुण्डनवती बनकर स्नाती है । राजान्त पुर की नारिया स्नीर धनाउचे स्नियाँ सम्भवत कचुकायृत शिविका में बैठ कर बाहर निकलती थी । यह, विवाह, व्यसन और वन मे स्त्रियो का दर्शन निर्देश माना जाता था। पर्दीया अत्रगुण्डन नारी की विनयशीलता ग्रीर लज्जा का भी प्रतीक था । 'मभिज्ञानशाकुरतल' मे दुप्यन्त को जब यिवाह का स्मरए। नही रहता है तब गीतमी शकुम्तला की लज्जा का परिस्थाग कर अन-गुण्डन हटाने को शहती है ।

१. मभि शा , जक ६, पृ १२१

मृब्द्ध०, श्रम १०, प्र० ४८६

एकक्रतप्रवैदानिश्चया न रोदिमि । €.

—करमग, **ध**क १, पृ० ३८ मैथिनि । भपनीयतामवगण्डनम । ---प्रतिगा०, धक १, पृ० ४४ ¥ ¥ का स्विदवगुण्ठनवत्ती नातिपरिस्फुटशरीरसावण्या । ---श्रीभ । सा , १ १३

सत्रभवती वासवदत्ता नाम राजदारिका धात्रीद्वितीया कन्यकादराँन निर्धोप-

मिति कृत्वाऽपनीतकचुकाया शिविकामाम : ---प्रतिज्ञा०, धक ३, ५० ६३ निर्दोपहृष्या हि भवन्ति नार्यो यहै विवाहे व्यसने बने च ।

—प्रतिमा०, १.२६

श्रमि० सा**०, धक** ५, पृ∞ ⊏⊏

तत्कालीन समाज म कुल-नारियो के अतिरिक्त एक प्रकार की सावंजनिक स्त्रियाँ भी थी जो गरिएका नाम से पुकारी जाती थी। ये शिक्षित और विभिन्न कलाओं '— विशेषत नृत्य धीर सगीत में कुशल होती थी। सामान्यतया लोग इन्हें सर्व-गरिएका

साधारण के उपभोग की वस्तु समभते थे। पण्यस्तिया बाजारू वस्तु के सहश थी, जिन्हे जो चाहे धन देकर खरीद सकता था3 । सागर की लहर वे समान चचल और सायकालीन मेघ के सहश श्रस्थिर धनुराग करने वाली वैदयाएँ केवल घनापहरए। जानती यी भौर भनुरक्त मनुष्य को निर्धन एव धनहीन बनाकर छोड देती थी । ये धन प्राप्ति के

का गिर्धन पूर्व भन्ना जनार है। अपने प्राचन कि निहास में हिस्स के निहास हिलाई है। ब्रोडी कि निहास हिलाई है। ब्रोडी कि होती की और स्वय कुत पर किरवास है। है। होती की है। समाज में इनको पूणा की इंटिस देखा जाता था। वेस्साएँ और उनमें सम्बद कर्नु वृत्तकृद्ध के पर में प्रवेश रही के सकती थीं?। वे प्रयुत्त प्रवास कर्निक सकती थीं?। होती थी 🕆 ।

किनपय गिर्णाकाएँ 'वेष्या' अभिधा का अपवाद भी होनी थीं। ये अर्थ भी अपेक्षा गुणो का सम्मान करती थीं। वसन्तमेना द्वजी ना उदाहरण है। वह गणिना होने पर भी वर्षिद विस्सु कुनवान् एव

सदाचारी चाध्दस से सच्चा प्रेम करती है और राजस्वालक से मृद्या करती है'। गरिएका अपने इच्छित पुरुष से विवाह कर फुलबह के वस्तीन पर को प्राप्त कर सकती थों?। कभी-कभी राजा भी पणि के सदृत्यों से प्रमावित होकर उसे 'बच्च' अभिचा से सम्भावित करता था। 'बच्च' विदेषक्ष हो विविद्या सिंग से सम्भावित करता था। 'बच्च' विदेषक्ष हो विविद्य सिंग के सम्भिक्त व्यवित की पत्नी वन सकती थी। 'मृच्छकटिक' में वसन्तसेना राजा द्वारा 'बच्च' पद से सम्मानित होकर वाहदत्त की पत्नी वन लाती है।

जाता ह । दिक्षा के क्षेत्र में नारी प्रगत्ति के पथ पर यी । नारी-शिक्षा पुरुष-शिक्षा के समान हो बायदयक थी । स्त्री को ब्रादर्श पत्नी एव

विदुषी बनाने के लिए उसे शिक्षा देग शिक्षा कौर नारी धनिवाय या। स्त्री-शिक्षा की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। प्रत्येक नारी विविध

कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकती थी। नाटकों में चनेक शिक्तिय नारियों का वर्णन मिलता है। शक्तत्वा का सित्तरवसंयुत्त प्रेमपर्रे उत्तके शिक्तित होने का प्रमाण तो है ही, साथ ही उत्तकी साहित्यक प्रमिक्षिक ना परिचायक भी है। विक्रमोविक्षीय में उनेवी राजा पुरूरत को मुख्य अर्थ एक भाव से परिपूर्ण प्रत्यस-पत्र लिखती हैं। गाहित्य एव विद्या के गाथ गारी को लिलत-कलाओं की शिक्षा भी दी जाती थी। तूस-स्तीत-विवारवा मालविकाः, विश्वकात की आता प्रदूसी

१ यत्नेन सेवितस्य पुरुष कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि । -मृष्यः, -.३१

२ सुदृष्ट किमतागेष शिरसा बन्धता जन ।

यत ते दुर्नेभ प्राप्त वधूमाब्दावमुण्डनम् ॥ —मृत्र्छ०, ४.२४

मार्गे वसन्तरीते । परितृष्टो राजा भवती बधूबब्देगागुश्रक्ताति । — मुख्द्रः, मक्त १०, पृ० ४६८

<sup>—</sup>मृष्ट्र०, अक १०, १० ००-तेन ह्यारमन उपन्यासपूर्व विकास सायल्लालनस्ट्यन्यसम् ।

<sup>—</sup> ऋषि० सा०, अक ३, पृ० ४८ ४. तुल्यानुरामिष्युन नसितार्थेबन्ध पपे निवेशितमदाहरणं विषायाः ।

उत्परम्या मृम सने मदिरेक्षाखायाः तस्या समागनगिवाननमाननेन ॥ विकानः २-१३

विकार, २-१३

६. भो वयस्य न केवलं रूपे जिल्लेऽप्यद्वितीया मालविका ——माल०, घेंक २, ५० २००

एव प्रियवदा`,विविध-कलायों में दक्ष वसन्तसेना³, वीर्णावादन की स्नाचार्यो उत्तरा नामक वैतालिका³ श्रादि का वर्णन इसके पुष्ट प्रमाण हैं ।

रामाज में नारी का धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान था। धार्मिक क्षेत्र में स्त्री पति की सहयोगिनी एवं सहधर्मचारिस्टी<sup>४</sup> थी। धर्मानुष्ठान एवं धार्मिक क्रियार्टे विना

धर्म ध्रौर नारी

पत्नी के सम्पन्न नहीं हो सकती थी। प्रत्येक चामिक सस्कार पत्नी के साथ

प्रत्यक सामक सरकार पता के साय कराया कराया कराया कराया कराया कराया कराया विवाह के समय पुष्प सहयमाँचरण के लिए नारी का पाया ग्रहुए कराता था। शिवाना कराया कराया हुन्सान प्रदान कराये हुए नारी का पाया कराया कर

भूरवा चिराय चतुर नमहीसपरनी
 दौष्यित्तमश्रतिरथ तनय निवेश्य ।
 भर्ना तदिपतन्दस्यमरेण साधम

गा ते नरिष्यसि पद पूनराधमेऽस्मिन् ॥

— समि० शा० ४ २०

१ यमि० शा०, श्रक ४, पृ० ६७

२ चाददत्त, १२४

<sup>¥</sup> ननु तह्यमसारिणी सत्बहम्। —प्रतिमा० थर १, पृ० ३६

५ तिहदानीमापप्रसत्त्वेय प्रतिष्रकृताम् सहधर्माचरणायेति ।

<sup>—</sup> मभि० सा०, धक ४, पृ० ८६

'सहधर्मेचारिएरि'े. 'धर्मपत्नी'े आदि शब्द नारी के धार्मिक महत्त्व को ही चोतित करते हैं।

सामाजिक, ग्राचिक ग्रीर धार्मिक क्षेत्र के सहश राजनीतिक क्षेत्र में भी नारी का योग या। राजनीति में नारों का सकिय एव प्रत्यक्ष सहयोग तो नही रहा, किन्तु उसने

अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक संघर्ष एव राजमीति और नारी उथल प्रथल को जन्म झवरय दिया। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायरा' मे वासवदत्ता का अपहररा उदयन धौर राजा महासेन के मध्य संघर्ष की स्थित उत्पन्न कर देता है । 'अभिपैक नाटक' मे राम रावण के भीषण एव विनाशकारी युद्ध मे सीता का

हरण ही कारण बनता है<sup>४</sup>। उपर्युक्त विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि नारी के प्रति

भालोच्य नाढककारो भौर साहित्यिको का हव्टिकोस भ्रतीय उदार एव विशव रहा है। नारी उनके लिए

का हव्टिकोस

नारी के प्रति साहित्यिको पवित्र प्रतीत होती है। उसके प्रति उनके हदय मे सम्मान और आदर की भावना है। समाज मे नारीकी हासोन्मूल श्रवस्था

देखकर जनका अन्तर चीत्कार कर उठा, रोम-रोम हाहाकार करने लगा। उसके उत्कर्ष एव उत्थान को उन्होंने प्रपने नाटको का लक्ष्य बनाया। नारी के प्राचीन 'देवी' पद को सुरक्षित रखने के लिए उन्होने भपनी कृतियों में उसे उन्च एव विशिष्ट स्थान प्रदान किया। समाज में नारी के विषय में अचलित अर्द्धसत्यो और मिध्या-घारणामी के निवारण के लिए उन्होंने उसके गौरवमय रूप का वित्रण किया। उन्होने समाज को अधोगति की भोर ले जाने वाली, कुल के लिए आधिस्वरूपा, दुश्शीला नारी को अपने ग्रन्थो का आदर्श नही बनाया, अपित पति की सहधमंचारिणी, पति के सन्तोष एव प्रसन्नता के लिए

ŧ प्रतिमार, शक १. पर ३६

श्रमिव शाब, ६ २४ ₹

प्रतिज्ञा॰, धक ४ (सम्पूर्णे) 3

मम दारापहारेख स्वयङ्ग्राहितविग्रह । मागतोऽह न पश्यामि इष्टकामो रागातिथि ॥

म्रात्म सुख को तिलाजिल देने वाली, गुरूजन की सर्वातमना गुश्रूपा करने वाली म्रोर सपत्नी के साथ राखीसम व्यवहार करने वाली त्यागमयी देथी-रूपा नारी का चित्र खीचा है।

गाटककारा की हिष्ट म समाज रचना के लिए नर और नारी स्तम्भ स्वरूप हैं। ग्रत दोना को पारस्परिक सामजस्य एव सहयोग

से कार्य करना चाहिए श्रीर एक दूसरे के प्रति उदार एव सहानुभूति-पूर्णं हिष्टिकोरण रखना चाहिए। नारी पर पुरुष की प्रभुता मनिवकार चेप्टा है। दुरुष द्वारा नारी का अनावर एव अपमान उसके विए सुखद् न होकर दु खद ही होता है। इससे दाम्यस्य एव गृहस्य जीवन श्रदान्ति एवं कलह का श्रालय बन जाता है जो श्रन्त में समाज के लिए भी घातक तत्त्व सिद्ध होता है। नारी या पतन समाज का पतन

है और नारी का उत्कर्ष समाज का उत्कप। यत नारी को समाज नी प्रगति का मूल मानकर उसका सर्वया आदर करना चाहिए। यही नाटककारों का समाज य उसके कणधारों के लिए सन्देश है।

## जीवन-पद्धति

जीवन-पदाति भी समाज-चित्रस्य के विविध रूपों में री एक है। देश-विदेश भी सध्यता और संस्कृति के द्योतन में इससे यथेष्ट सहायता मिलती है। प्रस्तुत कप्याय में विवेच्य नाटक-युगीन समाज की जीवन-पद्धित का विवेचन किया थया है। द्यान-पात, आवास, वेशभूपा, उत्सव एय आमीद-प्रमोद, जन-मायताएँ या जन-विश्वास, सामाजिक रीति-रियाज तथा चिकिरसा-विधि, इसी पद्धित के मार है।

सान-पान स्पानिकान्य है। यह पद्धति सामाजिक जीवन ग्रीर रहन-सहन का प्रमुख ग्रग है। यह पद्धति देशकालानुसार परिवर्तित एवं परि-

वान-पान

विधित होती रहती है। प्रादिम मानप की प्राप्य एवं प्रसम्य भोजन-प्रशाली ने सम्यता के उत्तरोत्तर विकास के साथ

संस्कृत एव परिनिष्ठित रूप धारण किया।

विवेच्य नाटक-पुग में खान-पान प्रत्यात सुसस्कृत और सुर्ध्य-पूर्ण था। छन का प्रापुर्य था और सुस्वादु भोजन-सामप्रियों का अभाव न था। प्रत्येक खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था। मनुत्यों की दिन के युसार विविध बात पदार्थ बनाये जाते थे। मृद्धिगियों और गकशास्त्री भिग्न-धिन्न प्रकार के योजन बनाने में निपुर्ण होते थे। 'बाहरूस नाटक' ये नदी प्रपने तत के धनवार पर प्राह्माए-भोजन के लिए स्वादिस्ट व्यजनों का निर्माण करती हैं। 'मुख्यकटिक' में विदूषक वसन्तरीना के प्राधाद के पंत्रम प्रकोष्ठ में प्रवेग

चारदत्त, ग्रक १, प्र• २-=

कर पाकशास्त्रियो द्वारा बनाये गये नानाविध-श्राहार की स्गन्ध से जन्मत्त साहो जाता है<sup>9</sup>।

तत्कालीन समाज में निरामिय और सामिय दोनो प्रकार के भोजन प्रचलित थे । सामिप आहार का प्रचलन सामान्यतया प्रत्येक युग मे रहा है, किन्तु विवेच्य युग मे सामिय ब्राहार का कुछ विशेष उल्लेख मिलता है। निरामिप भोजन मे बन, दाल, शान, दुण म्रादि का समावेश किया गया है तथा साथिव भोजन में मास के साथ मदिरा-पान का निरूपरा भी हुआ है।

शाकाहार सास्थिक एव सरक्ष भोजन होता है। इसमें झत मा धनाज प्रमुख खाद्य हैं। वर्ण्य नाटको मे यव<sup>2</sup>, तण्डुल<sup>3</sup>, तिल<sup>6</sup>, नीवार' ग्रौर श्यामाक<sup>8</sup>, इन पांच

निरामिष भोजन

खाद्यान्नो का उल्लेख हुआ है। यब प्रमुख श्रत नहीं था। नाटकों म केवल एक-दौ स्थली पर ही इसका प्रयोग किया गया है। देवताओं के पूजीपायन के रूप में इसका उपयोग होता था<sup>®</sup>।

तण्डल या चावल जनता का लोकप्रिय आहार था। शालिप भीर कलमं उसके ही प्रकार विशेष थे। वासुदेवशरण मग्रवाल के मतानुसार शालि सर्दियों में पैदा होने वाला चावल है जिसे जहहन भी कहते हैं "। कलम को मल्लिनाय ज्ञालि का ही एक रूप स्वीकार

१ प्रधिकमृत्सकायते मा साध्यमानवहविधमध्यमोजनगण ।

—मृन्छ०, बक् ४, पृ० २३७ ₹ सास्वेय पूर्वयनिस्क्वयबाङकुरास् । —चाददत्त, १२

ą चारदत्त, शक १ पू० ४

भन्यपाउनस्य सिचत मे तिलोदकम् । —श्रमि० शा० भक ३ पृ० ४६ ¥ ¥ भ्रमि० शा०, ११४

Ę वही ४१४

6 देखिए, चाददत्त, १ २

मुक्त मयारमनी गेहे नालीयक्रेण गृहीदनन । 5 ---मक्द्र०, १० २६ सदम्ना कलमोदनेन प्रलोभिना न मक्षयति वायसा वर्लि सुधासवणस्या । ŧ

— गच्छ० सक ४ ४० २३२

इण्डिया एक मौन द्वपाशिनि, पृ० १०२ ३

करते हैं। चावल के ग्रनेक प्रकार के व्यजन बनाये जाते थे'। चावल को उवाल कर उसका मक्त या भात के रूप मे प्रयोग किया जाता था । गुड के साथ मिला हुआ चावल 'गुडौदन'<sup>3</sup> कहलाता था । चावल दही में मिला कर भी खाया जाता था । पायस दूध मे चीनी और चावल डाल कर बनाया जाता था।

तिल अव्यवहत खाद्याञ्च था । मृत्यूपरान्त या श्राद्वादि के ग्रवसर पर मृतक एव पितृ तृष्ति के लिए तिलोदक अपित करने की प्रथा थीर।

नीवार और इयामाक बन्य धान्य थे। ये वनो में प्रचर मात्रा में पैदा होते थे। इसीलिए 'ग्रभिज्ञानशाकुन्तल में तपीवन वर्णन में ही इनका उल्लेख साया है?।

निरामिष लाखोपकरणो मे अन्त के पश्चात् दाल एव शाकका विशिष्ट स्थान होता है। नाटको मे माष ग्रीर कुलुत्थ<sup>8</sup> (कुलथी) जैसी दालो का बाल एव शाक उल्लेख हमा है। डा॰ शान्तिकुमार

नानुराम व्यास " कलित्थ को वाल का ही भेद मानते हैं। शाक के बन्तर्गत रक्तमूलक ११ (मूली), पनस १२ (कटहल) भीर

ş कलमा वासिपिरोप--(मल्लिनाथ की टीका)। —रघु०, ४३७ ₹ चारदस ११

मुच्छ० १०२६ Ŗ

देखिए पावटिप्पाणी तक है ٧

म यहिमन् मेहे गरवा पायस भूडक्ते । ĸ

---वा० च० चल १ पृ० २२ Ę मभि॰ शा॰ सक ३,५० ४६

(क) भागि । शा । सक २ प ० ३५ Ų

(स) वही ४१४

बलीयसि सत्व धकारे मापराशिप्रविष्टेव । - मृच्छ०, सक १, पृ० ५४ तस्या स्व पुरुकरिण्या पुराराकुनुत्यगूषभवतानि चन्नगं पीनिवनीवराणि

3 —मुच्छ०, श्रक द पृ० ३७६ प्रधालयकि । रामायण्कालीन संस्कृति पु॰ ७३

\$ \$ भाषानकमध्यप्रविष्टस्येव रक्तभूलकस्य शीर्यं ते भडक्यामि ।

—- मृच्छ०, सक ८ पृ०३७६

कलाय के नाम आये हैं। साग सुखे बौर रसेदार दोनों प्रकार के बनाये जाते थे ।

भोजन को सुस्वादु और जायकेदार बनाने के लिए मसालों श्रीर सुवासित चूर्णी का प्रयोग किया जाता था। मसाले के लिए नाटकों में 'वर्शक' शब्द व्यवहत हमा

मसाले है। मसालों में नमक<sup>४</sup>, मिचं<sup>४</sup>, हीग<sup>६</sup>, जीरा<sup>®</sup>, अबमुस्ता<sup>च</sup> या नागरमोया, बच<sup>2</sup> भौर सींठ' प्रमुख थे। मोजन में भम्लांश लाने के लिए भम्ल रस या खटाई भी डाली जाती थी ११। भोजनोपरान्त कपरादि से सुवासित ताम्बल १ का भी प्रयोग होता था।

> मसालीं के समान तेल \*3 भी भोजन को स्वादिप्ट बनाता था । यह माहार्य पदार्थी में चिक्कण तस्व का संचार करता था। यह दीपकादि तेल जलाने में भी अयुन्त होता था १४।

१. कलायंद्यानेषु। ---प्रतिमा०, शंक ४, पृ० १३४-६

२. मृच्छ०, १.५१

३- एका वर्णक पिनष्टि । --- मृण्ड०, धक १, ५० १२

Y, १. युतमरिवलवस्यरुपिती । —प्रतिशा॰, सक ४, पृ॰ १०४

६, मृच्युक, इ.१४ ७. वही, प.१३

म,६,१०. वही, =.१३

११. मासेन तिक्ताम्लेन अक्तं शाकेन सपेन समरस्यकेन।

--मुच्छ०, १०.२६

१२. दीयते गणिकाकामुक्यो. सक्पूरं धाम्बूलम् ।

–मूच्ड०, धंक ४, पृ० २४०

👯 विक्षोभ्यमासुजनिततारंगतैलपूर्णभाजनम् । —चास्दत्त, संक १, ५० ३८

१४. वही।

ग्राहार मे स्वाद-परिवर्तन के लिए मसालेदार वस्तुम्रो के समान ही मिष्टपदार्थी का भी उल्लेख मिलता है। इसमे मध्, गुड, खण्ड (खाड) और मिष्ट द्वव्य

मत्स्यण्डिका<sup>४</sup> जल्लेखनीय है । मत्स्यण्डिका विना साफ की हुई शक्कर होती थी । मद सवर्धनार्थ इसका विशेष जपयोग किया जाना थाह ।

मिष्ठान्त में मोदक का विशेष स्थान था। यह केवल लाध पदार्थ ही नहीं था अपितु देवोपायन के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता था। 'विकमोर्वशोय मे रानी श्रीशीनरी निपुणिका से देवप्रसाद रूप मोदको को माणवक को देने के लिए कहती हैं। प्राकार मे मोदक चन्द्रमा के सहका गोल होता था। यह दो प्रकार का होता

था। एक केवल खाड से निर्मित होता था जो 'खण्डमोदक' कहलाना था और दूसरा पिष्ट चावल में शक्कर विलाकर भी में भून कर बनाया जाता था और हिम की तरह इवेत एव निष्ठानित सुरा के समान मधुर होता था?े। मोदक के समान अपूपक ? भी एक प्रकार का मिष्ठान्त ही था। इसे आजकल बोलचाल की भाषा में मालपूषा कहते है।

٤ बा॰ च॰ सक ३ पु॰ ४१

प्रसारितगुडमधुरसञ्जल इव ।

एप जलु लण्डमोदनसश्रीक । — विकः , सक ३, ५० १६७

वयस्य एतरवानु सीध्रपानीहेजितस्य मत्स्यविष्टकोयनत्तरः।

<sup>—-</sup>बाला०, अक ३, प्र० २६६

वी० एस० भाग्दे स्टूडेटस संस्कृत इव्लिश डिक्शनरी, प्र० ४१६ माल ०, ग्रक ३ पृ० २ १६६

हने निप्रशिके एवानीपहारिकमोदकानावंमास्वक सम्भव । —-विकल, सक ३ पृ० २०५

प्प सल् सण्डमौदकसश्रीक उवितो राजा दिवातीनाम् ।

<sup>—-</sup>चिक्रः, शकः ३, पृ० १६७

प्रतिशा∙, शकु३ पृ∞ ⊂३ ४ पच्यन्तेऽपूपका ।

<sup>—</sup> मृज्छ०, सक ४, पृ० २३७

िनरामिष ब्राहार में दूध की गणना एक पौष्टिक एव शक्तिप्रद पेय पदार्थ के रूप में की गई है । विवेच्य काल में गो-धन के प्राचुर्य के कारण दूध प्रभूत मात्रा में उपलब्ध होता

दूय

या। 'पंचरात्र नाटक' में विराटराज के जन्म-दिवस के अवसर पर गोदान के लिए का के मार्ग पर सजा दी जाती हैं । 'बाल-

सैक्टों गार्चे नगर-वाटिका के मार्ग पर सजा दी जाती हैं'। 'बाल-चरित' में गोपालों की एक पृथक् ही बस्ती का वर्णन है। दूप से दिखें, नवनीत', तक' ग्रीर यूत<sup>ट</sup> की प्राप्ति होती थी।

वर्ण्य युग में लोगों के बाहार ने फलों का भी विशेष महत्त्व था। गृहोधानो, सार्वजनिक उपवनों तथा वन में फलों के पेड ही अधिक लगाये जाते थे। प्रतिथि-सत्कार प्रयवा

फल

लगाये जाते थे। श्रतिथि-सत्कार ध्यवा किसी से भेंट करते समय फलो का व्यव-

हार ही उत्तम रामका जाता था। 'सिम्मानताकृत्तल' में पुत्रपत्त का सारित्य क्लोमिश्रस व्ययं से ही किया जाता है'। 'मासविकानियिम' में परिवाणिका महारामी बारिएगी को मेंट करने के लिए जिजीरिया नीजू ही ले जाती है'। तिपेवन में तो क्ला-कल और पन्यसूनािव आध्यसवािवयों के प्रमुख साहार थे'। एकों के रस का सूप<sup>8</sup> के रूप में भी सम्मवतः प्रयोग किया जाता था।

रै- पचरात्र, श्रक २, पृ० ५१

२,३,४. झन्यिमम् गेहे गत्वा द्विष भ्रस्तमति । भ्रपरिस्मन् गेहे पत्वा नवनीतं गिलति । झन्यस्मिन् गेहे गरवा पायरा भुद्दते । इतरस्मिन् गेहे गत्वा समयः प्रलोवते । ——या० व०, झक १, ५० २२

त्रपट प्रलावतः। १. बारु चण, छन् ३, मृरु ४१

हुला श्रद्भातले । गन्होटजम् । फनमिथमधंमुपहर ।

—शमि॰ शा॰, सक १, पृ० १७

 सति । मग्वस्यात्रावयति । यरिकपासिनास्माबृद्याज्ञनेन तत्रमनती देवी दृश्या । सद्दोजनूरनेस्य पुर्यूषिनुमिन्द्रामि । — माल०, यक ३, पृ० २६०

प स्व० वा०, १.३

€. मुच्छ•, १०.२६

फलों में आमों का सेवन अधिक प्रचलित रहा होगा क्योंकि नाटकों में इनका वर्णन बहुत हुआ है। आम के अतिरिक्त अम्बूर, पिण्डलजूर<sup>3</sup>, बीजपूरक<sup>४</sup> (बिजीरिया नीवू), पिचुमन्दा<sup>४</sup> (नीवू), नारिकेल , कदली , तिन्तिसी , इक्षु , ताल , ग्रीर कपित्य , (कैय) जैसे फलों का भी नामोल्लेख हमा है।

कहा जा चुका है कि सामिष बाहार में मांस के साथ मदिरा का भी उल्लेख हम्रा है। सामान्यतया मामिय भोजन इन दोनों का गहन सम्बन्ध समका

भालोच्य युग में मांस सामान्य भोज्य वस्तु भी। समाज में मांसाहार भनेतिक नहीं समका जाता था। राजा और रंक कोई भी मांस-भोजी हो सकता था । बाह्यमा तक मांस का सेवन करते थे। 'मिभज्ञान- \ मांस शाकुन्तल' में विदूषक ब्राह्मण होकर भी

जाता है।

हरिणी का मारा लाने की इच्छा प्रकट करता है १२। क्षत्रिय राजाओं का मृगया-प्रेम' उनकी मांसाभिश्चि को ही बोतित करता है।

१. नवजुत्तमयौवना चनज्योत्स्ना बद्धफलतयोपभीयक्षम<sup>ः</sup> सहकारः ।

—श्रमि० शा०. यंक १, ५० १४ विकः , धक ४, प्र० २२०

यया कस्यापि पिण्डवार्ज् रेस्ट्रेजितस्य । --बाधि० था०, यंग २, पु० ३३ ъ.

देखिए, पादटिप्पग्री नं॰ २ ٧.

भग्पकारामे विच्नमन्दाजायन्ते । —नारदस, धक ४, प्र. १०४ ¥.

€.

भ्रमि० शा०, शक ४, प्र० ६४

पंचरात्र, १.१६ v.

ध. तिन्तिण्यामभिनायो भवेत । --- ग्राभि० ह्या०, अंक २, ५० ३३

धमिल शाल, शंक ६, पूर्व १२४ 3

१०. बा० च०, अक ३, ५० ४४ ११. पनवकपित्यं शीर्यं ते । --- चारुरत्त, शक १, ५० ४२

महमिप प्रार्थ्यमानी यदा मिष्टहरिखीमासभीअनं न लभे तदैतत्संकीतंबन्ता-**१**२. द्वासयाभ्यात्मानम् । —विकार, संग ३, पृत २०१

एतस्य भृगयाशीलस्य राजो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्यि ।

-- समिव साव, अंक २, १० २६

राजा दुप्यन्त इसका साक्षात् प्रमारा है।

सामान्यतथा मास तीन श्रेणियो मे विश्वक्त विया जा सकता है—१ पत्रुमास, २ पिंडमास और ३ मस्त्यमास । पुग्रमास मे मृग, सुकर और सिंह का मारा प्रमुख था । क्तिपय अवसरो पर जगती मेरी का मास भी खाया जाता था ।

मास का दूसरा प्रकार पक्षिमास था। 'मृच्छकटिक' मे केवल एक स्थल पर परभूत-मास का उल्लेख हुआ है<sup>3</sup>। चिडिया ब्रादि का शिकार करने वाले 'शक्तिजुष्यक' कहलाते थे।

पशुषो और पक्षियों के अतिरिक्त मछिलयों का भी आहार में विशिष्ट क्लान था। मत्त्वमास अत्यधिक लोकप्रिय था। पाजकुल और मितनपृहों ने तो मछिलयों के मौत का इतना भाजुमें था कि कृते तक उन्हें छोड़ कर मृतक का सेवन नहीं करते थे<sup>8</sup>। सरस्य-स्प्या पीवर गाति के व्यक्तियों नी आजीविका थी। वे कौटा ग्रादि केन पर मठिलयां कांस्ति थे और खारा से वेचते थे<sup>8</sup>। मछिलयों ने रोहित नामन मछली प्रसिद्ध थी। यह लगमग तीन फुट जम्मी और वडी पेटू मछली होती है। इसका मास स्वाद से पिकल होता हुमा भी लाने योग्य होता है। इसका मुख्य कभी जैतुन के रग

— अभि० सा०, प्रकार, पृ० २४ ५ रमय च राजवल्लभ तत सादिष्यसि मस्स्यमासकम् ।

श्रम मृगोऽय बराहोऽय चार्चूल इति मध्याह्नेऽपि श्रीप्मविष्लपावपच्छायालु यन्राजीव्वाहिण्डघते । — स्रीभ व्याव, स्रक २, ५० २६

२ झमि० शा०,२६ ३ मृच्य०,=१४

४ ततो महरनेव शरयूपे दास्या पुत्री सङ्गतिलु॰भकै।

एताम्या सरस्यमासाभ्या स्थानो मृतक त शेवन्ते । — णूच्छ०, १ १६ सह रात्रायताराम्य-तरातवासी यीवर । — समि० सा०, सक ६, पृ० ६७

७ मह जालोद्गालाधिभिमत्स्यनम्मनोपार्यं कुटुम्बमरण करोमि । ——समि० शा०, सक ६, पू० १७

एकस्मिन् दिवसे खण्डचो चोहितमस्त्यो मया कल्पितो यावत्
 पश्चादह तस्य विकपणार्थं दशय गृहीतो भाविमध्ये ।

\_—सभि० द्या॰, अक ६, पृ० ६८

के सहश, पेटी सुनहरी और डैने तथा आँखें लाल होती हैं । 'ग्रिभिपेक

नाटक' में महाशाफर नामक मत्स्य का भी उल्लेख हुआ है। यह सम्भवत एक विश्वालकाय मछली होती होगी। श्राद्ध के स्रवसर पर ग्रन्य वस्तुग्रो के साथ इसके मास का भी विधान धा<sup>र</sup>।

था और उनका मास बेचा जाता था<sup>थ</sup>।

'मध्यमव्यामोग' मे जब घटोत्कच ब्राह्मण के तीन पुत्रों में से एक की अपनी माता के बतपारणार्थ ले जाने की इच्छा करता है तब ब्राह्मण

कहता है कि मैं भ्रपने गुणवान पुत्र को नरभक्षी को देकर किस प्रकार शान्ति-लाग करूँगा<sup>४</sup> ? आबेट मे मारे गये जीवो से ही मास-प्राप्ति नही होती थी, अपितु राज्य मे वद्यशालाएँ भी थी जहाँ पशुस्रो का वध किया जाता

मारा-भक्षण की अनेक विधियाँ प्रचलित थी। मास प्रग्नि में भूत कर इपवातेल और मसालों में तल कर उपयोग में लाया जाताथा<sup>७</sup>। इसका 'शूल्यमास'<sup>६</sup> केरूप में भी प्रयोग होता था। तले हुए मास का स्वाद मदिरा के साथ लिया जाता बार । 'शूल्यमास'

निम्न जातियाँ ही इसके भाँस का सेवन करती थी। नर-मास लाने की प्रवृत्ति केवल राक्षसो मे प्रचलित थी।

खाने वाला बताता है? । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि घीवर आदि

भक्य जीवो मे गोघा या गोह का उल्लेख भी मिनता है। 'स्रभिज्ञानद्याकन्तल' मे राजस्याल घोवर को 'गोधादी' स्रर्थात् गोह

पकाने की विधि में लोहे की सलाइयों में मांस के छोटे-छोटे दुकडे पिरो कर आग के ऊपर रख दिये जाते थे"। आखेट आदि में जहाँ मास पकाने का कोई साधन उपलब्ध नही होता था, 'शूल्यमांस' का प्रयोग किया जाता था।

सामिप भोजन में मास के पश्चात् मदिरा का द्वितीय स्थान है। विवेच्य युग में सुरापान का व्यापक प्रचार था। समाज में सभी वर्गों के मनुष्य मद्य-पान फरते थे।

मविश

राजाओं से लेकर सामान्य अनुचरी तक को मदिरा पीने की स्वतन्त्रता थी।

'स्रभिज्ञानदाकुन्तल' मे नागरिक सया उसके नगर-रक्षकों के मद्य-पान का उल्लेख मिलता है । 'प्रतिज्ञायौगन्घरायस्' मे राजमृत्य गानसेवक मिंदरीन्मत और जपापुष्प के सहश रक्तकोचन दिखाई देता है ।

केवल पुरुष ही नहीं स्त्रिया भी मद्य-पान का सानन्द लेती थी। मधा ग्रबलाजन का विशेष मण्डन माना जाना था। मालविकारिनीमन में रानी इरावती मदिरा पोकर राजा के साथ भूलने जाती है<sup>४</sup>।

सुरापान का सर्वाधिक प्रचलन गरिएका-समाज में था । बेश्या-लय एक प्रकार से पानागार वने हुए थे। वसम्तसेना के पट्ठ प्रकोट्ठ में वेश्या भौर कामुकजन सी-सी करते हुए मद्य-पान करते हैं° । दास-

 डा॰ गायत्री वर्मा: कवि कालिदास के ग्रम्बो पर बाधारित तत्कातीन मारतीय संस्कृति, ए० १४६

 कादस्वंदीसाक्षिकमस्माक प्रथमसीहदमिव्यते । सच्दीण्डिकापसमिव गच्छाम । —श्रमि० शा०, श्रमा ६, प्र० १०१

रे. एप गात्रसेवक. सूरां पीरवा पील्वा हसिस्वा हसिस्वा मदिस्या मदिस्या जपा-पुष्पमित्र रक्तलोचन इत एवागुच्छति 🗗 —प्रतिज्ञा०, ग्रंक ४, प्र० १०३ भेडि निप्राणिके श्राणोमि बहुओ मद किन स्त्रीजनस्य विशेषमण्डनम् इति ।

प्रिं सत्य एप लोनवादः । --- माल०, श्रक ३, पृ० ३०१

४. भेटि मदेन क्लाम्यमानमात्मानमार्यपुत्रस्य दर्शने हृदय त्वरयति ।

—माल०, धक ३, प्र० ३०१ ६. पीयते पानवरत ससीरनार महिरा। --- मृच्छ०, श्र**क ४, ५० २४**०

के सहरा पेटी सुनहरी ग्रीर ढैने तथा ग्रांखें लाल होती हैं। ग्रिभिपेक नाटक मे महाराफरे नामक मत्स्य का भी उल्लेख हुन्ना है। यह सम्भवत एक विशालकाय मछली होती होगी। श्राद्ध के प्रवसंर पर अन्य वस्तुओं के साथ इसके मास का भी विधान था? ।

भक्य जीयो मे गोघा या गोह का उल्लेख भी मिलता है। श्रभिज्ञानकातुतल मेराजश्याल धीवरको योधादी प्रथात् गौह खान वाला बताता है<sup>3</sup>। इससे ऐसा प्रतील होता है कि धीवर आदि

निम्न जातियाँ ही इराके माँस का सेवन करती थी।

नर मास लाने की प्रवृत्ति केवल राक्षसी मे प्रवृतित थी। 'मध्यमव्यायोग मे जब घटोत्कच बाह्यण के तीन पुत्री में से एक को म्रपनी माता के बतपारसाथ से जाने की इच्छा करता है तब बाह्मण कहता है कि मैं घपने गुराबान् पुत्र को नरभक्षी की देकरे किस प्रकार शान्ति लाभ करूँगा<sup>४</sup> ?

म्राबेट मे मारे गये जीवो से ही मास प्राप्ति नही होती थी, श्रिपितुराज्य मे वबशालाएँ भी थी जहा पश्चभी का वय किया जाता या और उनका मास बेका जाता था"।

मास भक्षण को धनेक विधियाँ प्रचलित थी। मास अग्नि में भून कर इपया तेल और मसालो मे तल कर उपयोग मे लाया जाताथा°। इसका शूल्यमास न के रूप में भी प्रयोग होता था। सले हुए मास का स्वाद मदिरा के साथ लिया जाता था। शत्यमास

- 8 भगवतशरण उपाध्याय कालियास का भारत भाग १ पृ० ११६ १७
- प्रतिमा॰, श्रक ५ पु॰ १३६ ą
- जानुक विलग यो गोधादी सत्स्यव थ एव नि सशयम् ।
- —- श्रमि० शा० श्रक६ पृ≉ ६७ पुरुपादस्य बस्वाह कथ निवृतिमाप्नुयाम् । — सच्यमञ्जा० ११३
- मनानिष शुनापरिसरचर इव एटा ग्रामियलीलुपी भीरकश्च । ų, — माल० सक २ पृ० २८६
- भगारस्थिपतित्रिव मासलण्डम् । —स्च्छ० ११६
  - **पृ**तमरिचननगुरुपितो मासलण्ड । —प्रतिज्ञा∘ सक्ष ४ पृ० १०४ श्रनियतवेल शूल्यमासभूयिष्ठो ग्राहारी भुज्यते ।
    - धर्मि० शा**० प्रक** २ पृ० २**६**
- ६ प्रतिज्ञाल् सक्ष ४ पृष्ट १०४

पकाने की विधि में लोहे की सलाइयों में मास के छोटे-छोटे दुक्डे पिरो कर आग के ऊपर रख दिये जाते थे । सासेट स्रादि में जहाँ मास पकाने का कोई साधन उपलब्य नहीं होता था, 'शूल्यमास' का प्रयोग किया जाता था ।

सामिष भोजन में मास के पश्चात् मदिरा का द्वितीय स्थान है। विवेच्य युग में सुरापान का व्यापक प्रचार था। समाज में सभी वर्गों के मनुष्य मदा-पान करते थे।

मदिरा

राजाओं से लेकर सामान्य धनूचरो तक को मदिरा पीने की स्वतन्त्रता थी। 'मिनिज्ञानशाकुन्तल' मे नागरिक तथा उसके नगर-रक्षको के मद्य-पान का उल्लेख मिलता है?। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' मे राजभृत्य गानसेवक मदिरीत्मत्त और जपापूष्य के सहश एक्नलोचन दिखाई देता है3।

केवल पुरुष ही नहीं स्त्रिया भी मद्य-पान का बानन्द लेती थीं। भद्य भवलाजन का विशेष मण्डन माना जाना या । भालविकाग्निमिन में रानी इरावती मदिरा पीकर राजा के साथ फुलने जाती है<sup>थ</sup>।

सुरापान का सर्वाधिक प्रचलन गणिका-समाज मे था । वेश्या-लय एक प्रकार से पानागार बने हुए थे। बसन्तसेना के पष्ठ प्रकोष्ठ में वेश्या मौर कामकजन सी-सी करते हुए मद्य-पान करते हैं। दास-

र बा॰ गायत्री वर्मा कवि कालिदास के प्रन्यो पर भाषारित तत्कालीन

भारतीय संस्कृति प्र०१४६ कादस्यरीसाक्षिकमस्भाकः अथमसीहृदमिष्यते । तण्दीर्ण्डकापग्रामेव गण्छामः ।

—धमि० शाल, सक ६, ५० १०१

3 एप गामसेवक सुरां पीत्वा पीत्वा हसित्वा हसित्वा मदित्वा मदित्वा जपा-प्रपंतिब रक्तनीचन इत एवागच्छति । —प्रतिज्ञा०, ग्रक ४, ५० १०३

४ चेटि निपुणिके ऋगोमि बहुसी मद किन स्त्रीजनस्य विशेषमण्डतम् इति । पपि सस्य एथ लोकवाद । —भात०, भक ३, ५० ३०१

चेटि मदेन क्लाम्यमानमारमानगार्यपुत्रस्य दशने हृदय स्वर्यात ।

---माल०, धक रे पूर्व रे०१ पीयते चानवरत ससोत्कार भदिरा ।

—मृच्छु०, सक ४, पृ० २**४०** 

दासी गिर्णकाजन के पीने से बची हुई मदिरा को पीते हैं°। वसन्त-सेना की माता सीघु, सुरा और भासन के पान से स्थूलस्त को प्राप्त करती हैं<sup>3</sup>।

वण्यं नाटकों में सुरा के लिए मिदरा<sup>3</sup>, 'कादम्बरी', 'तीसु'<sup>2</sup>, सुरा<sup>5</sup> श्रीर श्रासव<sup>2</sup> का प्रयोग किया गया है। मिदरा सुरा के पर्यायवाची शब्दों में रें। ही एक हैं। कादम्बरी कदम्म हुस के पुष्पां के रस से निर्मित विशेष प्रकार को मिदरा थी<sup>2</sup>। पके गन्ने के रस से निर्मित काराब 'सीपु' कहुनातों थी<sup>3</sup>। सुरा का वर्णन भी मिदरा के एक भिद के रूप में हुसा है। 'मनुस्मृति' में सुरा, तीशे (पुष्ठ से वर्णन में एक भिद के रूप में हुसा है। 'पनुस्मृति' में सुरा, तीशे (पुष्ठ से वर्णन में किया के एक भिद के रूप में हुसा है। 'सा सम्बर्ध मिदरा के पूर्व के एक से विशेष सा सा की परिणत है।'। सातव नामक मदा विगा पके हुसा के रस से तैयार किया जाता था'।'।

मदिरापान के लिए विशेष स्थल या मदिरालय होते थे जो 'पानागार'<sup>93</sup> कहलाते थे। इनमें मदिरा का विकय होता था और एक-साथ बहत से व्यक्ति बैठ कर सुरा-पान का भानन्द केते थे।

इमे भेटा, इसाइमेटिका, इमे झपरे अवधीरितपुत्रदारविक्त मनुष्याः करका-सहितपीतमदि रैगैशिकाजनैये युक्ता भासवा तानु पिवस्ति ।

<sup>----</sup>गुच्छ०, सक ४, ५० २४० २. सीयुपुराधनमत्ता एसानदनस्था गता हि गाता ।

यदि जियते ऽत्र माता भवति ऋगातसहस्रतयासा श — गृष्छ०, ४-१०
३. उत्पदमस्या मम सबै मदिरेक्षस्यायास्तस्याः समागतमिवाननमाननेन ।

<sup>—</sup>বিকণ, ২.१४ ১. মদিণ আৰু ১, এ০ ১০১

४. मालक, संक ३, पृक्ष २६६

६. धन्याः सुराभिगैत्ता ।

राभिर्मेत्ता । ---प्रतिहार, ४-१

७. मृच्छ०, ४.२६

वी० एस० मास्टे . स्टुडेन्ट्स सस्क्रत-ईयसिख डिक्यनरी, पृ० १४२
 सीघु: पत्रवेखुरसम्क्रतिकः सुराविशेष: 1—(टीका मस्सिनाष) रपु०,१६.५२

१०. गौडी पेच्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा । — मनुस्मृति, ११-६४

११. बासव—घपक्षेद्युरसनिमितः। —(टीका महाप्रमुलाल गोस्वामी) मुक्टनः ५.२६

'यापानक' भी मदिरागृह की ही सज्ञा थी। डा० जगदीशचन्द्र जोशी ने 'ग्रापानक' शब्द को ब्याख्या करते हुए लिखा है कि 'ग्राघुनिक पारचात्य सम्यता मे जिस तरह की 'काँकटेल पार्टीज' हुम्रा करती है, 'श्रापानक' कुछ कुछ इसी सरह का ग्रर्थ देता है र।' ग्रमरकोश मे 'ग्रापानक' के लिए 'पानगोप्ठी' पर्याय इसी अर्थ का स्रोतक है। मदा विकेता 'शोण्डिक' और मदिरा की दुकान शौण्डिकापण कह-लाती धीर ।

भ्राहार के सामिप और निरामिप सर्वविध खाद्य पदार्थी की पाच श्रीतिया धी जिनका नामोल्लेख इस प्रकार किया जा सकता

है-१ महब, २ भोज्य, ३ लेख, ४ चीप्य

और ४ पानीय र 1 भक्य-वर्ग के अन्तर्गत भोजन-भेट वे पदार्थं छाते हैं जिनको चवा कर खामा

जाता है, जैसे रोटी,मोदक भादि । भोज्य मे विना ग्रधिक चवा कर खाई जाने बाली बस्तूएँ यथा उवला हुन्ना चावल, मात प्रादि समाविष्ट हैं। ते ह्या में मधु भीर चटनी के सहक्ष चाटे जाने वाले द्रव्य प्रन्तर्भूत होते हैं। चौप्य में गन्ने के समान चूस कर लाये जाने वाले पदार्थ माते हैं। पानीय के श्रन्तर्गत पेय पदार्थ आते हैं।

खाने-पोने ग्रीर भोजन पकाने के लिए वर्त्तन ग्रत्यन्त ग्रावस्यक हैं। साटको में बत्तन के लिए 'भाण्ड' कार्य ग्रामा है। दर्सनो में

चापानकमध्यप्रविष्टस्येव । —मृच्यु॰, श्रक ८, पू॰ ३७६ २. प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, प० २०६

धमरकोश, २१०४२

٧ ध्रमिक साब, अक ६, पक १०१

<sup>¥</sup> तत्र पचविधस्यास्यवहारस्योपनतसभारस्य योजना प्रेक्षमाणास्या शवय-

मुल्कण्ठा विनीदियतम् । —- विक्र**ः धक २. प**ः १७१ देखिए रात्यायन की पन्ति-'स्रम्यवहारस्य पश्चविधत्व मस्यमीज्यले-

हाचौष्य पानीयभेदेन'---नायत्री वर्मा कृत कालिदास के प्रन्यो पर प्राधा-रित तरकालीन मारतीय संस्कृति, प्र० १५०

७, बारु घर, श्रक १, प्रव १८

भोजन-पात्र

शुभसूचक माने जाते थे। राज्याभिषेक के श्रवसर पर ग्रम्बुपूर्ण घटो

ते राजकुमार का अभिषिचन होता था<sup>द</sup> । शराव सम्भवत लोक-प्रच-

जाता था।

करते होंगे।

भोजन-वेला

भोजन की वेला (समय) निश्चित थी। नियमित भोजन स्वा-स्थ्य की दृष्टि से लाभप्रद समभा जाता था। ग्रसमय भोजन करने से

भोजन-वेला का स्मरण दिलाते हुए कहता है कि चलिए, अब हुने भोजन करना, चाहिए क्योंकि बाहारोचित बेला का अतिक्रमण अनैक

धनेक शारीरिक दीय उत्पन्न होने की सभावना समभी जाती थी। 'मालविका-

रिनमित्र' नाटक मे विद्यक राजा को

पात्र प्राय स्वर्णं <sup>द</sup>, लोहे ब्सौर कासे ' के बनते थे। समृद्ध-जन स्वर्ण निमित पात्रों का प्रयोग करते होंगे और सामान्य वर्ग लोहे धीर कासे के। दरिद्र व्यक्ति सम्भवत मुख्मय पात्रों का भी उपयोग

लिए प्रयुक्त होता था" । कढाई को कटाह समिधा से सम्बोधित किया

लित सकोराही था। लोही शब्द लोह-निर्मित बडछो या धमचे कै

कटाह<sup>र</sup> का उल्लेख हुभा है। कलशभीर

घट पानी रखने के पात्र थे। जलपूर्ण घट

कलश<sup>9</sup>, घट<sup>2</sup>, शराव<sup>3</sup>, सोही<sup>४</sup> ग्रीर

व्याधियो वा कारए। होता है।।'

भोजन दिन में तीन बार किया जाता था। प्राप्त कालीन ग्रल्पा-हार 'प्रानराश' या 'कस्यवर्त' व कहलाता था। 'चारुवत्त नाटक' मे सूत-घार क्षुघा से व्याकुल होकर नटी से प्रानराश के विषय मे पूछता है<sup>४</sup>। दूसरी बार का भोजन दोपहर में किया जाता था। 'मालविकाम्निमन' में निदूषक, वैतालिक द्वारा मध्याह्नकाल की सूचना दिए जाने पर राजा को अपराह्मभोजन का स्मरण कराता है । भोजन का अन्तिम समय राति में होताथा। इसे ही अग्रेजी भाषा में 'डिनर' शब्द से मबोधिन किया जाता है।

लान-पान के समान बाबास भी रहन-सहन पढति का श्रविभाज्य भग है। इसकी गणना मानव-जीवन की प्राथमिक बावस्यकताओं में की जाती है। शीत, ग्रीष्म ग्रीर वर्षा ऋतु से

ग्राबास

सुरक्षा की दृष्टि से ब्राबास मानव के लिए परम आवश्यक है। साथ ही इमसे मानव-

सम्यता श्रीर संस्कृति के विकास के इतिहास का भी जान होता है। विवेच्य नाटवो के परिशीलन से ज्ञान होता है कि तत्कालीन युग में स्वापत्य-क्ला उन्नति के चरम शिखर को प्राप्त कर चुकी थी और भवनो का निर्माण एक विस्तृत पैमाने पर चारम्म हो गया था। मानास-गृहो का मुजन निर्दाचत एवं सुनियोजित रचनारौली के श्राचार पर होता था। वसन्तसेना का अप्टप्रकोष्टमय प्रासाद तत्कालीन परिनि-ष्टित रचना-प्राविधि का ज्वलन्त प्रमाण है<sup>६</sup>। भवनी का स्राकार-प्रकार, विस्तार, उन्नति ग्रीर भव्यता नागरिक के सामाजिक पद ग्रीर स्तर नो घोतित करती थी। राजायो और वैभवशालियो के भव्य एव म नात्मक प्रासाद उनके अनुल ऐश्वर्य का परिचय देते थे। राजगृहों के विस्तार ग्रीर गगनचम्बी कँ बाई को देख कर इंग्टि जडी मृत

ŧ ग्रस्मातः पुत्रभीजन्ये तीपस्थिता । श्रेत्र भवन उचितवेलातित्रम चिकित्सका दौषमुदाहरित । ----माल०, सन २, ५० २८८

नास्ति किन प्रानराशोऽस्माक गृहे । —मच्छ», धार १, ५० **१**२ भी ! मूल न मानवपरिभतगरत्वर्ग थ । --रव वा वा व मक ४, ५० व६

चाग्दल, श्रद १, पु॰ ३ मानक, धन २, प्रक २०००

मृन्छ०, धन ४, ए० २२६-२४७

भोजन-पात्र

कलश³, घट³, शराव³, लोही<sup>४</sup> ग्रौर कटाहर का उल्लेख हमा है। कलशभीर घट पानी रखने के पात्र थे। जलपूर्ण घट

शुमसूचक माने जाते थे। राज्याभिषेक के अवसर पर अम्बपूर्ण घटो से राजकुमार का अमिषिचन होना था<sup>६</sup>। शराव सम्भवत लोक प्रच-लित सकोरा ही था। लोही शब्द लोह-निमित कडछी या चमने के लिए प्रयुक्त होता था" । कढाई को कटाह समिधा से सम्बोधित किया जाता था ।

पात्र प्राय स्वर्णं , लोहें श्रीर कासे ३० के बनते थे। समृद-जन स्वर्णं निर्मित पात्रो का प्रयोग करते होगे श्रीर सामान्य वर्ण लोहे भीर कासे के। दरिद्र व्यक्ति सम्भवत मृष्मय पात्रो का भी अपयोग करते होगे।

भोजन की बेला (समय) निश्चित थी। नियमित भोजन स्था-स्थ्य की हरिट से लाभन्नद समभा जाता था। ग्रसमय भोजन करने से झनेक बारीरिक दोय उत्पन्न होने की भोजन-वेला

सभावना समभी जाती थी। 'मालविका-ग्निमित्र' नाटक मे विदूषक राजा को

भोजन-वेला का स्मरण दिलाते हुए कहता है कि चिलए, शब हमे भोजन करना, चाहिए क्योंकि ब्राहारोचित वेला का अतिक्रमण अनैक

एप नून तबारमगतो मनोरय (इति कलशमावर्णयति) । —श्रीभि सार, सक १, पृरु १४

ð प्रतिसा० १३

<sup>—</sup>प्रतिज्ञा॰, ४ ५ 3 नव शराव सन्तिलै सुपुराम ।

<sup>—</sup>चारुदत सक १ पृ० २ लोहीपरिवतनकालसारामि ।

मच्छ० श्रक १ प० १२

प्रतिमा॰, १ ३ £ कॅपिलदेवगिरिकृत चारुदत्त की टीका, पृ० २

प्रतिमा॰ १३

<sup>3</sup> मुच्द्र०, श्रक १, पू० १२

भिन्तकास्यवत्यारास्यायादचाण्डा त्वाचाया । 20

व्याधिया का कारण होता है ।'

भोजन दिन में तीन वार किया जाता था। प्रात कालीन प्रत्या-हार 'प्रातरात' या 'कत्यवत' कहिताता था। 'वाहदत नाटक' में सूज पार कुषा से ज्याकुल होकर नटी है आतरात्र के विषय म पूछता है'। दूसरी वार का मोजन दोषहर म किया जाता था। 'मालिकानिमित' में निदूषक, बैतालिक द्वारा मध्याह्नकाल की सूचना दिए जाने पर राजा को अपराह्मभोजन का स्मरण कराता है'। भोजन का प्रतिम समय राजि में होता था। देखे ही म्रोजी भाषा म डिनर' शब्द से मनीपन सिमा जाता है।

सान-पान के समान भावास भी रहन-सहन पदित का प्रविभाज्य सग है। इसनी गणना मानव जीवन की प्रायमिक श्रावश्यकताओं म की जाती है। बीत, ग्रीष्म भीर वर्षी ऋतु से

भाषास

सुरक्षा की हिंछ से घावास मानय के लिए परम बावस्यक है। साथ ही इससे मानव-

मम्मता थ्रीर सस्कृति वे विवास के इतिहास वा भी जान होता है।
विवेच्य नाटको ने परिशोलन से जात होता है कि तरकालोन
युग में स्वापरय-मला उन्नित के चरम शिवार को प्राप्त कर चुनी थी
और सबनो वा निर्माण एक विस्तृत नेमाने पर आरम्भ हो गया था।
आवान-गृहों ना मुजन निर्दाचित एवं मुनियोजित रचनायोगी के माधार
पर होता था। वर्षत्त्रोना का अस्टमनेशनय मासाद तरकालोन एरिनिवित रचना-प्रतिथित ना उब्बत्त प्रमाण है। अबनो या आकार-प्रमार,
विम्तार, उन्नित ग्रीर अव्यवता नागरिय ने सामाजिक यद और स्तर
पा सातित वरती थी। राजाशों और वैभवतालियों ने भव्य एवं
पार्तिन प्राप्ताद उनने अनुल ऐरवर्ष या परिचय देते थे। राजाशुंत में
विकार और गमनचुन्नो उन्नित मी देन वर हिन्द जडीभूत

भस्मात पुनर्भाजाने नोपस्थिता । अत्र भवत अवितनेकातिकमे विवित्सका सीपमुदाहर्रात । —मात्र०, अक २, पृ० २००

र गान्ति भित्र प्रातराज्ञोऽस्माग ग्रहे । —मुच्छ० अर्थ १,५० १२ रे. मो । सुरा न सामवपरिमृतमग्रस्यवर्ग च । —स्य० वा० अर्थ ४,५० म६

४ चाग्दस, ग्रव १, पृ० ३

माप्तक, स्रवा २ वृक्ष २८८

<sup>•</sup> गुच्छ • झक् ४, गृ॰ २२६ २४७

सी हो जाती थी। 'खबिमारक नाटक' में अविभारक राजा कुन्तिमोज के राजशुल को देख कर विस्मय-विमुग्ध हो जाता है'। 'गुच्छ-कटिक' में दसन्तर्सना का भवन त्रिलोक की थी से स्पर्ध करने की सामध्ये रखता है'।

राज-प्रासादो धोर घनिक-गृहों को छोड़ कर जन-साधारण के मकान धावास एव मुरक्षा की दृष्टि से बनाये जाते थे । उनका धाकार-फलार भीर विस्तार सामान्य नागरिक के जीवन-स्तर के अडुक्ल होता था। तगस्त्रियों के धावास-गृह 'उटज' कहलाते थे। उन्हें सोसारिक सुक्ष-विलास के साधनों की साज सज्जा के स्थान पर पास-

पत्तो का आँक्याबन मात्र होता था।
ग्रह-िमर्गाण के उपकरिएों में इंट, मिट्टी श्रीर काष्ट का उस्लेख
हुआ हैं । इंटें एकी हुई और विना पकी हुई दीनों प्रकार को उसमेग
में लाई जाती थी । काष्ट सम्भवतः शित्त-रवाग, गवाध-निर्माण
सादि में अयुक्त होता था। मकान तैयार होने के बाद उसमें
परिष्कार एवं परिमार्जन के लिए सुपा या पूरे का स्ववदेगकिया जाता था। सुधावलेयन सरने वाले 'सुधाकार' कहलाते
थे। भवानें में कलासकता लाने के लिए नानाथिय रहन और मिण
भी प्रयुक्त होते थे ।

१. बहो राजकुलस्य श्रीः।

वियुक्तमपि मितोपम विभागानिनिविडमिवाम्युदितं क्रमोच्छुपेस् । मुपभवनसिद सहम्बंमाल जिग्नियतीय तभो वसन्धरायाः ।

- म्रवि०, २.११ २. एवं वसरतसेनाया बहुजुतारतसप्ट्रप्रकीट्ठ अवनं ग्रेस्य, यत् सस्यं जातार्मि, एकस्यमिय त्रिविष्ठपं दृष्टम् । — मञ्जूठः, श्रुकः ४, प्र० २४७
- ३. ह्या राजुन्तने गच्छोटजम् फलभिश्रमधंभुपहर ।
  - अमि० शा०, अकः १, पृ० १७
- इह सल् भगवता कनकश्चिक्तम चलुविषः सक्युपायी दक्षितः ।
   तद्यथा पवचेष्टकानामाकर्षस्यम्, सामेष्टकाना लेदनम्, विण्डमधाना सेवनम्,
   वाष्टमयाना पाटनिति ।
   ——सृष्टळ०, ग्रंक ३, पृ० १६०
- ५. वही।
- ६. प्रतिमा॰, अक ३, ५० ६६

युगविशेग के समाज की रहन-सहन प्रशाली का एक पोपक तत्त्व वैश्वभूषा भी है। विवेच्य युग में नर-नारी दोनों की वेशभूषा ग्रत्यन्त सुसस्कृत ग्रौर परिष्कृत थी। बस्भ चयन और परिधान के प्रति

वेशमुषा

मनुष्यो नी रुचि यथेष्ट परिपक्व थी। वे सूती, कनी, और रेशमी वस्त्रों, बहुमूल्य धामुपणी भीर सुगन्धित

भवलेपनो या प्रयोग करते थे । देश, काल, वातावरएा, वैयक्तिक रुचि और सामाजिक स्तर के अनुसार व्यक्ति पृथक्-पृथक् परिधान भाररा निया करते थे। प्रतिपाद्य नाटको में वर्शित वेशभूपा के विविध प्रकार निम्नलिखित है-

जैताकि 'क्षौमयुग्म' ३ 'कौशेयपत्रीर्णयुग्म' अादि शब्द प्रयोगो से व्यजित होता है, स्नी-पुरप दोनो प्रपने बारीर की सुरक्षा के लिए दो वस्त्रा का प्रयोग करते ये—एक कटि

से नीचे के भाग को आवृत करने के सामान्य वेशसुषा लिए और दूसरा कटि के ऊपर के भाग

को उकने ने लिए व्यवहृत होता था। अपर का यस्न 'उत्तरीय' या 'प्रावारक' महलाता था। 'बाटिका' श्रौर 'बाटी' का उल्लेख उस भाज मे साडी जैसे वस्त्र के प्रचलन को सिद्ध करता है। स्त्रियाँ माजनल के ब्लाउज की तरह बोई वस्त्र नहीं पहनती थी। वे मग-सीप्ठब के लिये स्तनावरक के रूप ने 'स्तनाशुक' धारण करती भी । पुरुष सिर पर बेष्टन' वा पटु १० बाधते थे। 'मृच्छकटिक' मे गगार यसन्तसेनाको प्रसन्न करने के लिए बपना पगडी-युवत सिर

देखिन, परिवार नामक ब्रध्याय के अनगत राज परिवार का विवेचन । ŧ ₹ भभिव्दााव, अस् ४ पुरु ६८

ą मालव, अर ४, प्रव ३४६

٧ द्र॰ या॰, १३

¥

थय प्रावादक ममोपरि उत्किस । —- भुच्छ० अक ₹ पृ०१४२ Ę एकस्य शादिकमा कायमपरस्य मूल्येन । ---प्रतिज्ञा०, धक ३, प्र० ६६

जनस्नानदाटीनिबद्धम् । 

विक् ०, ५ १२

पतामि बीर्पेश संबेद्धनन । মবিলা০. ৮ ই 20

—-मृच्द्र०, ८ ३१

उसके चरएगे पर रखने को उद्यत हो जाता है । चरएगे की रक्षा के

808

लिए 'जते' श्रीर 'पादका' उपयोग मे लाये जाते थे।

राजा और उसका परिवार अपने विभवानुकूल बहुमूल्य और श्रीर जडाऊ परिघान घाररा करता था<sup>४</sup>।

यति या तपस्वी नगर के कोलाहल से दूर शाग्त प्राथमी मे निवास करते थे। अत उनकी वेशभूषा भी सासारिकता से परे वैराग्य और साधना की प्रतीक होती

ਲਕਿ-ਬੇਗ

धी<sup>४</sup>। प्रकृति-प्रदत्त वल्कल ही मुनियो और बनवासियों के वस्त्र होते थे। यूप्यन्त श्राखिट के लिए जाते हुए मार्ग मे तपस्थियों के बल्कलों से टपकी हुई जल-रेखाओं से तपोबन की सीमा का अनुमान कर लेते हैं। 'म्रिम-धेक नाटक' मे राम बनवास-रूप धर्म कार्य के लिए राजीवित वस्त्री का परित्याग कर यल्कल पहनते हैं । घल्कल सपस्वियों के लिए तप क्षप सम्राम में कवन सयम रूप गंज के वशीकरण में प्रवृक्ष, इन्त्रिय रूप प्रश्व के निग्रह में लगाम का कार्य करते थे । न केवल ऋषिजन भ्रपितुतापसियां और मुनि-कन्याएँ भी वल्कल-वसन से भ्रपने गात्र को सुशोभित करती थी। 'मभिज्ञानशाकुन्तल' मे शकुन्तला प्रपनी सली प्रनस्या से अत्यन्त कस कर बांधे गर्ये बल्कल को शिधिल करने

—प्रतिमा∘. ∥ २८

<sup>8</sup> स्पद्यः, म ३१

एपा पुन का फुल्लप्रावारकप्रायुता उपावज्ञुगलनिक्षिप्ततैलिविववस्याभ्या पादाभ्यामुख्यासनीपविद्या तिष्ठति । —सब्छ०, झरा ४, पूरु २४४

चन्दन खलु मया पाहुकोपथीगेन दूपितम् । -माल०, सरु ४, पृ० ६४७ v देखिए परिवार नामक शब्दाय के श्रन्तार्गत दाख परिवार का विवेचन ।

भगतालकृता भाति कौशिवया यतिवेपया । ¥

थयी निग्रहवरवेव सभगव्यातमविद्यया ।। — माल०, ११४

<sup>&#</sup>x27;সমিত লাত **१** १४ मगलार्षेऽनया बत्तान् बस्कलास्ताबदानय ।

करोम्य यैन्षयमं नैवाप्त मोपपादितम् ॥ ---प्रतिमा॰, १२४

सप सम्रामकवच नियमद्विरदाकृश । श्वानीनमिन्द्रियास्वाना ग्रह्मता धमसार्थि ॥

के लिए कहती है।

परिवाजक ग्रौर बौद्ध मिक्षुक कापाय वस्त्र पहनते थे। 'माल-वियाग्निम नाटक' मे देवी कौशिकी वैधव्य के दु ल के कारण कापाय वस्त्र धारण कर सन्यास ब्रह्म कर लेती है? । 'मच्छकटिक' मे बौद्ध भिक्षक को काषाय-बस्त्रवारी कहा गया है । सन्यासी पुराने कुलयी के चुर्ण से अपने वस्त्र रगते थे ।

काप्टिनिमित चररणपादुका मुनिवेश काही एक अग थी। वनवास-काल मे राम पैरो में पादुका ही पहनते हैं<sup>थ</sup>। सपस्वी सम्बी-सम्बी बाढी रखसे वे<sup>ड</sup> और हाथ में दण्डकमण्डलु सिथे रहते थे<sup>ड</sup>। वे सिर मे डालने के लिए इंगुदी के तेल का प्रयोग करते थे"।

वन-कन्याश्रो के प्रसाधन-सविधानक वन्य एव तापसोचित होते थे। वे पूरपाभरलो से अपने शरीरावयवो को अलक्त करती थी। 'मिभिज्ञानशाकुन्तल' मे शकुन्तला कर्णावतस रुप मे शिरीप पुष्प धारण करती है। राजा दूप्यन्त चित्र में शकृत्तला को बनवासान-रप प्रसाधनो से सजाना चाहता है "।

रै सन्विधनमुद्रे । स्रतिपिनद्वेन बल्कलेन प्रियवदया नियन्निताहिस । शिथिलय ताबदेशत । — सभि० दा०, भक १, पृ० १३

२. माल०, भर ४. प्र० ३५०

 म मुक्त निर्वेदधृतकाषाय भिक्षु ताडियतुम् । — मुच्छ०, अव ८, पृ० ३७६ ¥. तस्या त्व पुष्परिण्या पुराणकुलित्थयूपश्चलानि द्रव्यगन्धीनि चीयराणि प्रशालयसि । — मृथ्छ०, सक ⊏, पृ० ३७६

पादीपभुक्ते तब पादुके म एते प्रयच्छ प्रस्ताय मूच्ना ।

६. यथाह परयामि पुरितन्यमनेन चित्रफलक लम्बकूचीना तापसाना नदम्बै । — समिल शाल, सक ६, पूर ११६

तच्च परिभ्रष्टदण्डकृष्डिकाभाजन शीकर सिक्ता ।

—मृच्द्र∘, यक २, पृ० १४०

भभि० सा०, धन २, प्०२४

६ वही, १२८

**१०.** यही, शक ६, पृ० ११६

विवाह की विशिष्ट वेशभूषा होती थी । वर वधु को इस श्रवसर पर मागलिक परिधान से विभूषित किया जाता था। वर स्व-स्तिसूचक लाल बस्न धारण करता था?।

विवाह-परिघान

वधु दुक्लिनिर्मित झोढनी झोढती थी भौर नस-सिख तक माञ्चयण पहनती थी । वह नानाविध मोषधियो से गुषी हुई कोतुकमाला भी धारण करती थी। 'स्वप्नवासवदत्ता' मे चटी वासवदत्ता से पदायती के तिए

कौतुकमाला गुयने को कहती है<sup>४</sup>। 'कौशेयपत्रोर्ग्युगल' <sup>४</sup> भी विवाह नेपथ्य में समाधिष्ट था। योद्धाभो की वेशभूषा 'समरपरिच्छद' कहलाती थी। धनुष-

वासादि भ्रस्त्र, कवच, गोधा (ज्याधातवारसा) ग्रीर घगुलिनास समरवेश मे परिमस्तित वेण । योद्धा समर-वेज दिधिपिण्डवत स्वेत छत्र भी धाररा करते

थे । सामान्य रित्रयो की तुलना मे ऋभिसारिकाओ का वेश-विन्यास

पृथक होताथा। प्रवसर ग्रीर परिस्थिति के श्रनुसार इनका वेश परिवर्तित होता रहता था। कभी इनकी वेशभूषा तडक-भडक वाली होती थी ध्रभिसारिका-वेडा

और कभी सामान्य । 'विक्रमोर्वेशीय' मे जर्वशी सामान्य अभिसारिका वेश धारला करती है। वह नीलागुक पहन कर अल्पाभरणो से अपने को अलकृत करती है।

1 विवाहनेपथ्येन खन् शोभते मानविका । ---माल०, श्रक ४, पू० १४ रे ₹ म्च्छ० १०४४

3 भनतिलम्बिद्वूलनिवासिनी बहुभिराभर्ग प्रतिभाति मे । उद्गणेरदयो-मूलवन्द्रिका इतहिमैरिव चैत्रविभावरी ॥ --माल०, ५७

धुमा तावत् कीतुकमाना भूस्फत् भागी । -- स्व० था०, अब ३, पू० ७६

**দালত য়কু** খুতু ইছে ¥ अये अयमगराज समरपरिच्छदपरिवृत । ---वर्णभार, अक १ पृ० ४ Ę

७ पचरात्र, २२

पचरात्र, ऋक २, पृष्ट ५१

हता चित्रलेखे अपि रोचते तेऽय मेऽल्याभरसम्बूपितो नीलाश्कपरिव्रहोऽभि-3 सारिकावेश ॥ — विकार, सक ३, प्र० १६८

जीवन पद्धति 700 'मालविकान्निमृत' में दस्युधो की बेशभूपा का वर्णन हुन्ना है। डाक़ हाय में धनुप-नाए लिये रहते ये दस्यु-वेश और कथे पर तुसीर धारण करते थे। जनकी पीठ पर मोर के लम्बे-लम्बे पख वधे रहते थे '। विवेच्य नाटको में स्थान-स्थान पर द्वारपाल और प्रतिहारी का उल्लेख हुम्रा है, किंतु उसकी वेशभूषा का स्पष्ट मामास कही नहीं मिलता। 'प्रतिमा नाटक' में द्वार-पालिका को व्वेत ग्राप्त घारण किये प्रतिहारी की वेशभूषा हुए बताया गया है । अन्त पुर का द्वार-रक्षक कचुकी कहलाना था। वह सम्भवत जैमा कि उसके सम्बोधन से स्पष्ट है, लम्बा कचुक घारए। करता था। बुद्ध होने के कारए। उसके हाथ में वेंत की छड़ी रहती थी<sup>8</sup>। केवल 'ग्रभिज्ञानशाकुन्तल' में मृगया वेश का सकेत मिलता है'। दुप्यन्त कण्य कृषि के ब्रायम मे पहुँच कर ब्रपने परिजनो से घालेट की वेशभूषा उतारने को कहता है। इससे इतना तो अवस्य कहा जा सकता है कि मृगया-वेश शिकारियों की एक विशिष्ट वेशभूपा

होती थी, निन्तु यह वेशमूपा कैशी श्रीर किस प्रकार की होती थी, इसका कोई परिचय नहीं मिलता है। यवनियाँ या राजा की यूनानी अगरिक्षकाएँ ४ आसेट-काल मे

अपने विशिष्ट परिधान के कारेंग तुरन्त पहचान ली जाती थी। वे गले में बन्य-पूर्णों की माला घारण किये हुए और हाय में धनुप लिये हुए राजा यवनी-वेश

की रक्षा करती थी"। मथुरा-संग्रहालय १. मालं . ५ १०

चरति पुलिनेषु हसी काशाशुक्तवासिनी सुसहृष्टा। मदिता गरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररहावि ।।

¥ भगनयात् भवाती मनयावैश्वम ।

भमि० शा०, ५३

3

भगवतरारण उपाध्याय वालिदास का भारत, भाग १, पूर ३२७

---प्रतिमाण, १.२

— समि० सा०, सक २, ५० ३२

मिनि॰ सा॰, बक २, पृ॰ २७

के प्रसिद्ध कापालिक मण्डल (Bacchanalian group) में यूनानी महिलाओं की पोशाक देखी जा सकती है । विरहिणी नारियाँ प्रिय के विरह में समस्त शृङ्कार छोड देती

बिराहुणी नारिया । अम के बिरहू में समस्त श्रृःझार छोड़ दता थी। वे मिलन बस्त्र<sup>3</sup> धारण कर अतीत की स्मृति मे प्रमन समय व्यतीत किया करती थी। वे एक नेपी बिरहिंगी मौर बिरहीं बांचती थी<sup>3</sup>। ब्राभूपणों ते उन्हें अर्ही को वेशसूवा हो जाती थी<sup>8</sup>। यत, उपवासादि नियमो<sup>8</sup>

भीर मनाहार के कारण जनना शरीर इस हो जाता था। शकुन्तना, सीता, कुरगी आदि नारियों त्रमधः दुय्यन्त, राम भीर अविमारक के विरह में विरहिणी का वेस ही भारण करती है।

पुरुप भी प्रिया के विरह में विशिष्त-से हो जाते थे। उनगी वेदाभूषा प्रमत्त व्यक्ति की-सी प्रतीत होती थी। युप्पन्त राष्ट्रन्तला के विरह में विदिाटट एव राजोचित गण्डन विधि का परिस्ताग कर देता है स्रीर सतत चिन्ता के कारण स्तीव रुसता को प्राप्त करसा है?।

> दत, उपवास झादि के झवसर पर नर-नारी जो परिप्रात धारण करते थे, उसे नियमवेग" पहते नियम-वेश थे। त्रतथारिणी नारियाँ द्वेत रेहानी वस्न पारण करती थी। उनके झरीर पर

वस्न भारता वस्ता था। उनक घरार पर मागलिक प्राभूषण और केशो में दूर्वादल शोभायमान रहता था। यथ्य व्यक्ति वसके स्रवसर पर रक्त वस्न धारण यरता था।।

१. भगवनसरक उपाध्याय शानिदास ना भारत, आम १, वृ० ३२७ २. बगने परिपूत्ररे बसाना । — स्थिः गा०, ७,२६ ३. धारवरवेनवेलो । — स्थिः, ९,०

५ नियमशासपुरति : -- प्रशिष् धार, ७ २१ ६ मनगतपुरविदेश : -- प्रशिष्

৬. মনিং বাং, ६.६ - বিভিন্ন ক্ষান্ত ক্ষ্মিক ক্ষ্মিক বিশ্ব

च विहित्तिनमध्या राजविमहियो हरवते । —वित्र ०, मंत्र ३, पृ० २०२

दिक्रण, १.१२
 मृष्यण, १०.४४

धामोद-प्रमोद यिविच नीडाओ एव मनोविनोद के साधनो से अपना मनोर्जन करते थे। उल्लेख-नीय सामाजिक उत्सव एव मनोविनोद इस प्रकार हैं-'मञ्यमञ्यायोग' मे इस उत्सव का सकेत मिलता है?। यह इन्द्र

दत्तकरवीरदामः । 8 —सुच्द्र०, १० २ ₹ मुच्छ०, १० ३

8,8 म्च्छ०, १० ५ ¥ मालंब, ५१२ Ę प्रतिज्ञा॰, धन ३, प्र॰ ७२

b

क्विलदेविगरि शास्त्री इन प्रतिज्ञायीगन्वरायण की टोका, पृ० ७२ 5

विष्णोर्वात्वित्तमनुभवित् गोपासक्यसप्रकला घोषमवावनरिष्याम । ---वा० च०, श्रक १, प्रo इह

3 मायापादीन बद्धस्य विवद्योऽनुगमिष्यसि ।

राजसे रज्जमिबंद अवस्वज इबोत्मवे ॥

—मध्यम०, १४७

२१० के सम्मान मे आयोजित एक धार्मिक एव सार्वजनिक उत्सव था।

थी भगवतशरुग उपाध्याय के प्रनुसार दाक्रध्वजोत्सव यह समारोह भाइपद के शुक्ल पक्ष की

अध्टमी से द्वादशी पर्यन्त पाँच दिन तव मनाया जाता था" । इसमे म्नाश्विन-पूर्णिमा के सात दिन पूर्व ही इन्द्र की ध्वजा रस्सियों से बौध कर स्थापित की जाती थी। प्रतिदिन उसे बटे उत्साह से फहराया जाता था और पूरिएमा के दिन रिसमी लोल कर जमीन पर पटक दिया जाता था । यह ध्यजा इन्द्र का प्रतीक मानी जाती थी । इस इन्द्रध्वज-उत्सव का लक्ष्य इन्द्रदेव से सुवृध्यि और प्रभुत यान्य प्रदान करने की कामना थी। यह समारोह वर्रामान भारत के होली पर्व और योख्प के 'मेपोल फेस्टिवल' से बहुत साम्य

रकता है । इन्द्रयज्ञ-उत्सव

यह सम्भवत इन्द्रध्वज उत्सय का ही एक प्रकार होगा। यह श्राभीर जाति पा प्रिय पर्वथा<sup>3</sup>।

'कत्ता' ४ 'वेता' ३ 'पावर' ६

विवेच्य समाज मे जुत-शीडा का ग्रत्यधिक प्रचलन था। भादि द्युतशास्त्र के पारिभाषिक शब्द इसनी लोगप्रियताको हो सुचित नरते है। जुझा शेलने पर योई राजनीय

चूत-ऋीडा

नियत्रसानहीः था। मनुष्य निर्वाध रप से जुझारोलते थे। घनियों का तो चूत प्रिय व्यसन ही याण। जुमा मनुष्या के लिए बिना सिहासन का रोज्य था<sup>द</sup>।

चूतकराकी एक मण्डलीया ममुदाय होनाधा<sup>4</sup>। इस चूत•

भगवनप्रारम उपाध्याय कानिदास का भारत, भाग २, पृ० १६४ ₹

का - शानिवुमार नानूराम ध्याम शामायणवासीन मस्तृति, पृ० ६ 5 द ₹

दबोऽस्मानः धापस्योनिन इन्द्रयनो नामोत्मवो भविष्यति ।

---वा० न०, धर १, पृ० ११

४ म्चद्र∘, र द ४.६ वही २६

नृपतिरिव विकासभागदणी विभववता समुप्तस्यत जाता । — मृष्यः , २७

 चून हि नाम पुरवस्यानिहासन राज्यम् । —मुष्टा॰, धर २, १० ११३ एन रव मनु कूनवरमण्डल्या बद्धोःनि । -- अष्टद् , धव २, ५० १०६ मडली ना अध्यक्ष 'राभिक' कहलाता था। यभिक का सभी यूत्व रो पर प्राधिपत्य रहता था। वह कूए म हार वर क्यान देने वाले छूत-कर की बहुत हुगेंति चरता था। 'मुच्छकिटिक' म जूतकर माधुर दस मुवर्ण ने लिए स्वाहक को मारता है । हारे हुए जुझारी पर न्याम लय मे दावा चरके भी स्वया नदूक किया जाता था। सवाहन के कूए में हार वर भाग जाने पर जूतकर माधुर से राजुज में निवेदन परने के लिए नहता है । जूत जीविका ना खाबार भी था। 'मुच्ड-कटिक' में सवाहर चारदल के निर्धन होने पर खूतोचजीबी हो जाता है । जूए से एक और धन सम्पत्ति की उपक्षित्र होती थी तो दूसरी और मनुष्य का मवेनाश भी हो जाता था'।

मनोविनोद के साधनों म संगीत एवं नृत्य का भी विशिष्ट स्थान था। मनुष्य नाच गाकर अपनी थातिकवान्ति का शमन कर्ते

ये। मृच्छकटिक म चारुदत्त प्रपने मनी-मृगीत एव नृत्य विनोद के लिए ग्राये रेशिल के घर सगीत

म्नात एव नृत्य विनाद के लिए ग्राय रेभिल के घर समात

भी मनुष्य के एकानी जीवन के भनानुक्षण मिन थे। बावदल वीया। की उस्मीवन व्यक्ति का अनरण सिन, गिदिष्ट स्थान पर गुप्त प्रेमी के माने भी दिलस्व हाने पर मनीविदाद न नायक, विद्याग से उद्वित्त कर के माने भी दिलस्व हाने पर मनीविदाद न नायक, विद्याग करने वाली प्रवणी के तुस्य और अनुसामिमा मे प्रेम भी बुद्धि बरण चाली वताता हैं । गुरुष भी मानव हृदय के उहास एय उमग की अनिव्यक्ति का सरक माध्यम था। बालचरित ग विगाद हुएवी सक दुष्ट एक जीकनुष्य का ही रूप था। यह एक

नैजनव्यापृतहृदय समिन हट्या मटिनि प्रभ्रष्ट । -मृच्द०, २ २

२ मृच्छ०,२१३

रे मृन्छ० प्रवः २ पृ० १२६

४ चारिण्मावदाप च तस्मिन् खूतोपजीवी अस्मि सब्स । — सृच्छ०, सक २, १० १६२

<sup>.</sup> मृब्द्धव, र व

६ षापि वेना भागं चार-तस्य गा वर्षं योत् गतस्य ।

<sup>--</sup>मृच्यः यक् ३ पृ० १४७

२१२ सस्कृत नाटक

रुचिर भीर लिलत नृत्य होता था । इसमे वालाएँ सज-धज कर एक नेता पुरुष के साथ नगाडे की घुन पर नाचती थी ।

नता पुरेष के साथ नगांड का घुन पर नाचता थार ।

तत्कालीन समाज में मनोविनोदों के अन्तर्गत वैश्या एव

गणिका भी परिगिश्त थे। धनिक और कामुक ध्यक्ति वेश्याओं को प्रभूत धन देकर उनका उपभीग करते

वेश्या एव गरिएका थे । 'मुच्छकटिक' मे राजश्याल सस्या-नक गरिएका वसन्तसेना के साथ रमरा

करने के लिए दस हजार मुत्य का सुवर्णाभूषण भेजता है"। वेश्मा-गृह कामुको के रमसा-स्थल बने हुए थे।

पुरु नातुना न रायान्यया वर्षा हुए व । समाज में शोवीन मनुष्य अपने जितानुरजनार्थं झनेक प्रपार के पक्षी भी पालते थे। यसन्त्योता के प्रसाद म पालतु पक्षिमों के

मानास के लिए एक पृथक प्रकोट ही पक्षी-पालन निर्मित या । पालतू पक्षियों ने पारायत,

पजरगुव, सदनसारिका, कोयल, लावन, मिंपजल, पपोन गृहम्भूद, राजहस स्रोर सारण अनु व थेर । यहार पुर भी जुदाई में हस, अभूद वोक्ता आदि विकास में किया विवास किया ने कोन विवास कि किया ने कोन विवास किया ने कीन किया ने सिंप किया ने मिंप किया निर्माण कि

मिलता है"।

१ भोगे वियोज्यसम्बद्धसम्बद्धाः । हरुनीसम् सन्तिन रचिर बहासि ॥

हर नीमर सनिन रचिर बहामि ॥ — वा० च०, ४६

प्रथ भर्तृवाभीवरोऽस्मिन् बृदायन गोपनायकामि सह हरनीसर नाम
प्रक्रीशित्भागराहित । — वा० च०, यन ३,५० ४४

वारदत्त, ११७

४ भार्षे । यन प्रवन्मानेन मह मुनगदशसाहसिक्षेऽप्रकार धानुप्रपित । ---- मृत्युक, संक ४, ५० १६३

४, हो हो नो । प्रभावतः इतः । यशिक्या नानापश्चिमपृहे ।

--- मृत्युः, सन् ४, पुः २४१-२४२ ६ सुबद्धः, सन् ४, पुः २४१-२४२

धावर्षेत्रंत्रिकतः पर्वे धाँक इव्डिया दिशेष्ट ।

मुक्द्य०, सर ४, ५० २३३

	जीवन-पद्धति	<b>२१३</b>
उद्यान एव वाटिका भी नागरिको के विनोद के साधन थे। मनुष्य अपने घर के सामने छोटा-सा उद्यान बगाया करते थे। 'मृण्ड- कटिक' में चाहदत्त्री और वसरतसेना के		
उद्यान	गृहोद्यान उस समय ने प्रेम को ही मूचित व	हरते हैं। ये उद्यान
मंति-मंति के पुष्पित वृक्षों से बायग्य मनोहर और रमणीक प्रतीत होते थे'। इनमें युवतियों के मूलने के लिए दोला खादि भी वृक्षों पर डाल दिये जाते थें'।		
जन-सामान्य के विनोद के लिए सौंप या वेल भी प्रचलित या। सपेरे कुटिल विषयरों को मन्त्रादि द्वारा वदीभूत कर पिटारी में बन्द कर लेते थे स्त्रीर उनकी नाना प्रवार की		
साप का खेल	चेप्टाएँ दिखा कर ज करते थे। 'प्रतिज्ञागीर	व्यदायरा में गान-
सेवक घपने मित्रों की तुलन जब खेल दिखाने के लिए र तो वे एकदम कुढ़ हो कर	प्तपों को मजूपा ने बाह	रानराला जाता था

'प्रतिज्ञासीगन्धरायण' मे एक स्थल पर 'डिण्डिक' साव का प्रयोग हुमा है जिसका अर्थ विश्वदेवगिरि ने विकृत वेश भाषणादि के द्वारा जनता का मनोरजन करने वाला

क्या है। इससे ऐसा ग्राभास होता है कि

--- मृच्छ०, सक् ४, ५० २४८

— प्रतिज्ञा०, यक ४, पृ० ११०

स्याग तत्कालीन समाज मे बहुरूपिये या स्थाग

ध्रच्यरीतिबुसुमप्रस्तारा रोगिता धनेकपादमा ।

मुच्द्र०, धक ४, पु० २४८

एत ते मुह्दो निरोधमुक्ता इव इट्यासर्पा इतस्ततो निर्धावन्ति ।

प्रतिज्ञान, ४१३

टिव्डिनो नाम को विष्टतन्त्रेषमापर्सादिना जनस्य हास्य जनयन् भिक्षामर्नयति स उच्यते । —कपिलदेवगिरि कृत प्रतिज्ञायौगन्धरायस की टीका, पृ० ७२

म्च्छ०, सन २, ५० १५७ २. मुच्छ०, श्रक ४, पृ० २४७

भरने वाले भी होते थे जो विचित्र वेशभूषा और स्वर-परिवर्तन के द्वारा जनता का मनोरजन किया करते थे।

मानव जीवन के निर्माण में लोक-मान्यताग्री ग्रीर लोक-विश्वासो का भी सदा से योग रहा है। ये विश्वास बौद्धिक सिद्धात या

लोकमान्यताए ग्रीर जन-विद्यास

धारगाए नहीं है, अपित जन प्रचलित रूढ एव तकंशुन्य रूढियां या परम्पराएँ हैं। बालोच्य काल मे अन्यविश्वासी ना

अभाव नही था। दैनिक जीवन मे स्वप्न, शकुन, भूत-प्रेत, ज्योतिप देव, तत्र-मत्र, ब्रह्मशापादि मे मनुष्यो की

अटल मास्या थी। स्वप्नो के शुभाशुभ फलो मे लोगो का प्रगाढ विश्वास था। उनसे उन्हें भावी घटनाओं की पूर्व सूचना मिलती थी। 'बालचरित' मे

राजा कस ज्योतिषियो से स्वप्त में हुप्ट त्राधी, भूनम्प, उल्कापात और देवप्रति-स्बप्त माम्रो का पल पूछता है । 'प्रतिज्ञायीय-न्यरायण मे नटी स्वप्त मे अपने पितृयुक्त के व्यक्तियों को अस्तस्थ

देख कर उनकी भूशलता के विषय में चितित हो उठती है?। निमित्त ग्रथवा शकुन का प्रभाव भी जन जीवन पर कुछ वम

नहीं रहा है। शकुनो नो प्रचलित मान्यतायो एव मापदण्डो ने प्राधार पर आंका जाता था और बायें की सिद्धि-श्रसिद्धि का पूर्वाभास पाने की चेटा की য়সূত্র

जाती थी<sup>3</sup> । माटको मे वरिएत सुभासुभ निमित्तो की विवरिणका इस प्रकार है-

(क) शुन निमित्त---

१ धाराश में विजली एव,प्रचण्ड वायू से विद्व मूलन बादली भी गर्जना से अयवा नज्यायमान प्रव्वी के धूमने से किसी महापुरप

ŧ याव चन, घर २, ४० ३०

प्रतिचार, धक्ष १ पुरु ४

<sup>•</sup> हा थित र पुत्रवस्य में महानुभाषम्य सूचविद्यन्ति जासगमयमधुद्दसूतानि महानिमित्तानि । —वा॰ घ॰, धक १, प्र॰ ४

के अवतार की सूचना ग्रहरण की जाती थी<sup>५</sup>।

२. पुरुष का दक्षिण श्रक्षि-स्पन्दन शुभसूचक माना जाता थारे । ३. चित्त में आकस्मिक आनन्द का अनुभव भी शुभ निमित्त का

३ विक्त में आनारमक आनन्द का अनुभव भा भुभ निमित्त का प्रतीक या ! 'विक्रमोर्बेकीय' में राजा पुरूरवा अपने हृदय में आकरिमक प्रराजता का अनुभव कर अभीष्ट सिद्धि की कल्पना करता है<sup>3</sup>।

४. मरते हुए शत्रु को देखने से जन्मान्तर में भी श्रक्षिरोग नहीं होता था  $^{\mathbf{F}}$ ।

## (ख) द्वनिषत्त—

१. म्राकाश से जलती हुई उल्कामी का गिरना $^{\nu}$  अशुभ माना जाताथा ।

२ कीए का शुष्क बृक्ष की बुष्क शाला पर बैठ कर उस पर अपनी चोच पिसना ब्रीट सुर्यागिमुख होकर भयावह स्वर मे क्रन्यन करना दुर्गिनित्त का थोतक समक्ता जाता था १। सूर्यागिमुख कौए का सुष्क बृज पर बैठ कर भयकर वामनेन से देखना भी भावी विपत्ति भी सुचना देता था ।

३ लपलपाती हुई जिल्ला बाले, शुक्ल बातो से युक्त, कुटिल तथा बायु से परिपूरित कुक्ति बाले सर्प का मार्ग में दशन दुर्लक्षण या। 'मुच्छकटिक' में चारदत्त न्यायमण्डप को जाते समय गाग में सर्प

को देरा कर अपनी दुखद मृत्युका अनुमान कर लेता है<sup>व</sup>। ४ पुरुष का याम नेत्र स्पन्दन<sup>4</sup> और स्त्री का दक्षिया नेत्र-

४ पुरुष का याम नन स्पन्दन । आर स्ना का दाक्षण नन

बा० च० १६

२ मृच्छ, ६२४ ३ विक० २६

8

४ मृष्छ०, सन १, पृ० १४७

५ दूतच०१२५

६ पचरात्र, झक २ पृ० ५२

७ मृष्य० ६११ मञ्जीकश्य

⊏ यही ६१२ ≣ यहा,७६ स्फुरणौ ग्रह्यभसूचक या।

 मुण्डित-मस्तक बौद्ध सन्यासी का दशैंन अमागलिक समभा जाता था?।

- ६ सूर्योदय के समय सूर्यब्रह्ण किसी महापुरुप के विनाश की मुचना देसा था 3।
- ७ हृदय का अकारण भयभीत एव व्यक्ति होना पृथ्वी के गुप्क होने पर भी पैरो का लडखडाना तथा बाहु का पुन-पुन

प्रकम्पन<sup>६</sup> शुभ राकुन नहीं माना जाता था। पुत्र भीर अधुभ निमित्तों ने श्रतिरिक्त कुछ ऐसे प्रयान गुण, वर्म एव पल वाले महानिमित्त होते थे जिनका शुभाशुभ कल निष्यत नहीं था। 'यालपरित' में यस ऐसे ही सहानिमित्तों को देख वर उनके फल का निष्यय नहीं कर पाता है"।

तत्त्राणीग समाज से भूत-प्रेत", पिशाय धादि से भी सीग यहुत विश्वास परते थे। इन प्रेगास्मा जीवो का रूप हप्टिगोचर नहीं होता था। 'श्रीभज्ञानशाकुनत्ता' मे प्रवि-सूत-भ्रेत हारी राजा से कहता है कि निसी सहर रूप वाले प्राप्ती ने मारावय यो मैप-

प्रतिच्छन्द नामक प्रामाद के बग्रभाग में रख दिया है।

—बा॰ च॰, २१

१ मृष्यः, धन ६ पृ० ३२६

२ वयमभिमुलमनान्युदयिन धमलकदर्तनम् । — मृब्द्य०, धर ७, पृ० ३७१

मूर्योदय उपरायो महापुरयविनिपातमेव क्यायिन ॥

<sup>---</sup> मुक्द्रक, सर १, पृक्ष ४६० ।

४,५ मृत्यु०,७६ ६ मृत्यु०६१३

मध्यै प्रधानगुराक्षकवैनिमिल्लै ।

स्थ प्रधानगुरागमप्तानामस् ।
 हि बायती व्यक्तामप्त्रयो जुत्य ।

मद्भारण बेकावि सावैतानिकस्य येथपनिच्छादस्यासमूसिमारोपित t

<sup>—</sup>शमि० सा०, धर ६, 7० १<sup>०४</sup>

भवित सनु परय बाल्यामितो पिरालोडींग मोजनेताः
 —िरियल, धक्र २, पृ० १८६

फलित ज्योतिप और नक्षत्र विद्या में भी भनुष्यो की ग्रास्था थी। नवीन कार्यारम्भ के लिये यह नक्षत, मृहतं श्रादि के मागल्य का विशेष ध्यान रखा जाता था । राज्या-भिषेक, युद्ध के लिये प्रस्थान, गृह-प्रवेश, **च्योतिय** 

यज्ञारम्भ, विवाह-सस्कार ग्रादि कार्य सदा मागलिक एव ज्योतिप-सम्मत मूहतं में ही सम्पन्न किये जाते षे। 'धविमारक' से ग्रमात्य भूतिक शुभे नक्षत्र में कुरगी के वरान्वेपण के लिए प्रस्थान करते हैं । 'प्रतिमा नाटक' मे भरत के नगर-प्रवेश के समय भट भरत से कृत्तिका की समाप्ति पर नगर मे प्रवेश करने के लिये कहता है?।

निद्ध पुरुषो एव दैव-चिन्तको के वाक्य प्रमाण माने जाते थे। 'मुच्छकटिक' मे राजा पालक सिद्धादेश मे विश्वास कर आर्यक की बन्दीगृह में डलवा देता है<sup>3</sup> । सिद्धों की भविष्यवासी या गराना कभी बसत्य सिद्ध नहीं होती थी। विधि या धैव सिद्धादेश का ही बनुकरण करता था\*-ऐसा जन-विश्वास था। राजसभा में भी वेतनभोगी प दैव-चिन्तक होते थे।

भाग्य या विधि के सर्वातिशायी प्रभाव म तत्कालीन नागरिको की घटल ग्रास्या थी । सम्पूर्ण जगत् विधि की लीला माना जाना था। विधाता ही समस्त चराचर विश्व

देव की स्थिति का नियामक था"। उसके विधान का कोई भी प्राणी उल्लंघन नही कर सकता था"। मानव-जीवन की विविध कियाओं के साफल्य और

 भव नक्षत्र शोधनमिति तेन च दुतेनामास्य आर्थभितिक प्रस्थित । —प्रवि०, शक ३, पू० ६० ₹ प्रतिमाठ, यत ३, ५० ७४

मुच्छ०, यक ४, पृ० २२४

٧ रारप्रस्पयात कृतमित्र नहि सिद्धवाश्या •पुरुषम्य गच्छति विधि सुपरोक्षितानि ।।

--स्व० वा०, १११ प्रयंशास्त्र, खण्ड ४, भ्रष्याय ३ ¥

Ę माल॰, शक् ४, ए० ३२३

मृच्छ० १० ५६ विधिरनतिक मसीय ।

~- प्रतिमा०, अक २, पू० ५६

२१व

ग्रस(फल्य मे दैव का प्रमुख हाथ रहता था'। दूर्दैव के शमनार्थ मनुष्य तीर्याद भी जाते थे। 'श्रमिक्षानशाकुन्तल मे महर्पि कण्य शकुन्तला के भाग्य की प्रतिक्षलता को शांति के लिए सोमतीर्थ जाते हैं । देव के प्रति ग्रगाध निष्ठा होते हुए भी जन जन मे पुरुपार्थ विद्यमान था। 'आलचरित में कस अपने पृष्ठपार्थ से दैव तक को विचत करने नी शक्ति रखता है<sup>3</sup>।

तन्त्र मन्त्र जादू टोना द्याप और दैवी विद्याभी जैसे धरौनिन तत्त्वों में भी जनता का विश्वास था। मन्त्रों में दैवी द्यक्ति मानी

जाती थी। मन्त्र वल से व्यक्तियों व

स्वेच्छानुसार भट्टय भौर दृश्य हो जाने ग्रलीकिक तस्व भौर सब कुछ जान लेने के उल्लेख भी मिलते हैं"। सासारिक ग्राधि-व्याधि के निराकरण के लिए रक्षा-सूत्र

ग्रीर रक्षा-करण्डक पहनने की प्रथा भी थी। प्रतिज्ञायीगन्धरायए। म राजमाता नाग बन की गये हुए अपने पुत्र की जीवन-रक्षा के लिए समस्त बधुयो के हाथ से स्पर्ध किया गया रक्षा-सूत्र भेजती है । 'म्रभिज्ञानशाकुन्तलं मे भरत के हाथ म अपराजिता नामक मीपभ से बक्त तायीज बाँधा गया थार । देवी विद्याएँ भी लोगो को सिद्ध हो जाती थी। तिरस्करिएी और अपराजिता ऐसी ही अलीकिक विद्याएँ थी। तिरस्करिशो विद्या भी सिद्धि से बहुव्य रहने की शक्ति प्राप्त हो जाती थी । श्रीर श्रपराजिता विद्या के बल से अजेवता की उपलब्धि हो सकती थी<sup>द</sup>। माया के आश्यय से अलौकिक वस्तूमा का सुजन भी

ŧ प्रतिचार १३ दैवमस्या प्रतिकृत ज्ञासवित सोमतीय गता । -- प्रश्निक शाक भन १,पृ० ६

बा० च० २१४ 3

प्रवि०, ४१३ ¥

×

सववपूजनहरूनयुक्ता वा एका वा प्रनिसरा दीयनामिति ।

—प्रतिपा० घर १ प्र०१० মসি০ যাত হাৰ ও দৃ০ ইইছ

वित्रसन्।--(तिरस्वरिधीमपनीय राजानमपेत्य) ।

— विक्र⊤•, सवा२ प्र∘ १८३ ननु भगवतादेवगुरुग्। अपराजिता नाम विसाव धनविधामुपदिवाना जिल्ला

प्रति पगस्यासहानीय कृते स्व । —विषक, स**न २ पू**० १७६ सम्भव था। 'प्रतिमा नाटक' में राजब अपनी भावा से काचन-मृग की रचना कर राम को प्रवचित करता है-। ऋषिया का बाप अमीध माना जाता था। 'अबिमारक नाटक में चण्डअपन ऋषि के शाप से सोबीर-राज सपरिवार स्वपाकर्त को प्राप्त होता है<sup>3</sup>।

समाज घोर राष्ट्र ने उत्कर्ष म सामाजिन प्रयात्रा का भी योग रहता है । ये प्रथाएँ मानव नो समाज से सुसम्बद्ध करने वाली कडियाँ होती है । वर्ष्य समाज में लौकिक रीतियां

होता है। वय्य समाज में लाकिक रातिया सामाजिक प्रथाएँ और प्रथाओं के बयत बड़े कठोर थे। लोक प्रयाग्नों का पालन करना प्रत्येक

सामाजिक के लिए आबस्यक था। इनका उल्लंघन करने वाला वड़ का भागी होता था। 'श्रमिषेक नाटक' ने राम वाली वो अगम्यागमन भयोंत् छोटे भाई की क्त्री को हृपित करने के झपराय के कारण दड़ देते हैं?।

लोक निंदा धीर लोकापनाद का अय ही , नीपिक अपामी का पालन कराने में प्रधान क्य से कारण होता था । लोकापनाद की भागका से लोग मर्यादा का उल्लंधन करने का साहस नहीं कर पाते थे। 'प्रभिषेक नाटक' म राम प्रजाक विद्यास के हेतु ही परम पुनीता सीता-को भ्रान परीक्षा लेते हैं'।

विवेच्य नाटको के झाधार पर तत्का तीन सामाजिक प्रयाम्रो की रूपरेया इस प्रकार कीची जा सकती है —

समाज में विवाहिता नारी ने लिए सामाजिन वधन मत्यन्त कठोर या। विवाहित स्त्री ना, नाहे पति नी प्रिय हो या स्नप्रिय, पति-गृह म रहना ही लोगसम्मत माना जाता थार्थ। यितृगृह से उसका

मभि॰ शा॰, ४ २७

१ प्रतिमा सन् ८ पृ० १४० १८२

यस्माद् ब्रह्मायमुख्योऽह व्यवान इति भाषित । तस्मात् सपुत्रदारस्त्व व्यवाकत्वमयाध्स्यति ।।

३ दण्डितस्त्व हि दण्डिय बाद् अदण्डयो नैन दण्डयस ।

<sup>—</sup> स्रविक, ६६ सः। —— समिक, शक१, प्रक१,

अवानतापि च भैदीह्या शुनिता भूमश्तन । प्रत्ययार्थे हि लोकानामवमन मथा इतम् ।।

<sup>--</sup> मिन, ६ २६

नियास लोकनिया का कारण वन जाता था। मनुष्य उसके लिए ग्रनेक प्रकार की भकाएँ करने लग जाते थे ।

लोक-रीति के श्रनुसार छोटे भाई के ससर्ग से बड़े भाई की स्त्री दूपित नहीं मानी आली थी, फिजु बड़े गाई के ससर्ग से छोटे भाई की स्त्री दूपित हो जाती थीं । 'अभिषेक नाटक' में सुपीव की को अभिमर्पित करने के अपराध के कारण राम बाली को दड देतें हैं ।

मातृ-दौष के कारण पुरुषी को दोषी वा अपराधी नहीं समका जाता था। इसी आधार पर भरत माता के दोषी होने पर भी स्वय को निर्दोष सिद्ध करता है<sup>8</sup>।

आजकल की तरह वर्ण्य थुग में भी उपयुक्त घवसरों पर प्रिम-नःदन करने की प्रथा प्रचलित थी। 'प्रतिमा नाटक' में राम के राज्या-पियेक के श्रवतर पर लक्ष्मणादि श्राता धोर समस्त वयु-शास्त्रव उनका प्रमिनन्दन करते हैं\*।

कथन की सरबता प्रमाणित करने के लिए वापय मा तीगण साने की रीति भी वर्जन प्रचलित थी। यनुष्य प्राथ घननी प्रियतम बस्तु की वाष्य खाते थे। 'स्वान्यावायदा नाटक' से विद्युप्त फपने मिन राजा को सरस कहने के लिए मिनता की वापय दिलाता हैं। पैरो की बापय खाने की भी विचित्र प्रथा प्रचलित थी। सरत सुमन्य की स्वार कुतान वती भी विचित्र प्रथा प्रचलित थी। सरत सुमन्य की

**<sup>ং</sup>** মনিং মাণ, ২ १७

२ न त्वेव हि नवाचिज्ज्येष्टस्य वत्रीयसी वाराभिनर्शनम् ।

<sup>——</sup> ল্লাডিক, জাৰ ং, পূচ ংও মনিক, ই বং

सुपुरच <sup>1</sup> पुरपाशा मानृदोची न दोयो,
 सरद भरतमार्त पदय तावद्यथानत् ।।

<sup>—</sup>प्रतिमा∘, ४२१

प्रतिमान, सक् ७, पृत्त १८२-१८३

वयस्यभावन ग्रापित श्राप्ति, यदि सत्य न भग्नाति ।

<sup>--</sup>स्यव वाव, सन ४, पृव १११

प्रतिज्ञा करने से पूर्व जल का ब्राचमन किया जाता था। यौगन्यरायण जल का ब्राचमण कर स्वामी को शत-वन्धन से मुक्ति दिलाने की प्रतिज्ञा नरता है।

छीक या जमुहाई आते समय ग्रामीर्वादात्मक वचनो का प्रयोग बरने की रीति की रें।

इप्टजन की विदाने समय संगे-सम्बन्धी किसी जलाशय तक छोडने जाते थे। शकुन्तला को विदा करते समय महर्षि कण्व श्रीर मनसूमा ग्रादि संखियों उसे सरस्तोर तक पहुँचाने जाते हैं ।

सम्माननीय व्यक्ति से मिलते समय उसे कुछ-न-कुछ उपहार मे प्रवस्य दिया जाता था। ऋषिगरण राजा दुप्यन्त से मिलते समय उसे पल भेट गरते हैं । भगवती कौशिकी महारानी धारिएी से मिलने जाते समय विजीरिया नीवू उपहार के लिए मैंगाती है<sup>×</sup>।

'दतवान्म' मे 'तृलान्तराभिभापल्।' नामक सामाजिक प्रया का सकेत भी उपलाध होता है, जिसके धनुसार दृष्ट के साथ तिनका बीच में राप कर बार्तालाम भिया जाता था। श्रीष्टप्ण दुर्योधन जैसे दुरात्मा व्यक्ति में निनवा मध्य में रण वर ग्राभिभाषण वरना उचित समभते हैं। तिनना बीच म रखने ना तात्पर्य यह था कि वक्ता श्रीता की प्रत्यक्ष सम्बोधित न बारके तिनके को माध्यम बना कर बोलता था यौर श्रोना परोक्ष रुप से इस सवाद को सुनता था।

विवाह।दि मागुलिक प्रवसरों पर सौभाग्यवती स्त्रियों ही समस्त भगल पूर्य सम्पन्न करती थी। 'स्वय्नवासवदल' में सौभाग्यवती भारियाँ ही जामाता उदयन को चतुरशाला में ले जाती हैं"।

<sup>3</sup> प्रतिज्ञात, शब १, पूर्व ३०

धनादित्रयोगप्याशियोऽभिषेयाः ।

<sup>---</sup> श्रतिशा०, शक २, ५० ६० भगवन् मोदनात स्निग्यो जनोइनगत्तव्य कृति ध्यते । तदिद सरस्तीरम् । 3 प्रत सन्दिरय प्रतिग तमहसि । -- श्रमित थात, सक ४, पृत ७३

ग्रमि० गा॰, ग्रह २ पु० ३७

मात्रक, सब ३, पुरु २,६८

मा प्रश्चानलक्ष्मा व्यवशोल्ड्य । यय किल स्लाप्तराभिभाषका । स्यव याव, धार ३, गुव ६२

दीर्घ प्रवास के पश्चात् नगर में प्रवेश करते समय नगर में समीप थोडा विश्वाम कर नगर में प्रवेश करना लोकावारों में परि-गणित था'।

सामाजिक सुल-समृद्धि के लिए सामाजिक नीरोगता एव ग्रनामयता श्रनिवाय है। कहा भी गया है 'शरीरमार्श खलु घर्म-साघनम्' अर्थात् सानव के लिए सासारिक

## चिकिस्सा-विधि

साघनम्' अर्थात् मानव के लिए सासारिक धर्म का पालन करने का प्रमुख साधन सुस्वास्थ्यं एव नीरोगता है श्रीर ृयह

केवल चिकिश्सा-शास्त्र के परिज्ञान द्वारा ही सम्भव है।

ष्ठालोच्य युग में ग्रीयथ-विज्ञान एव चिकित्सा-वात्त्र समुप्तत एव विकासशील था। समाज में वेथो , जिपजो जे ग्रीर चिकित्सको के ना नाहुत्य था। चिकित्सक रोग-निदान भीर रोगोप्वार में सिडहर्स होते थे। रोगविशेयल भी में जिन्हें विशेष-विशेष रोगो का विशिष्ट ज्ञान होता था। 'मालविकांग्रिजिन' में भूवसिद्धि नामक विगवेष संपेष्ठ स्थापियों का विशेष क्षेप्र

रोगोपचार के सम्बन्ध में सर्वेष्ठधम रोग ना कारस्य जानने का प्रमास किया जाता था। व्याधि के निवान-परिक्षण के विमा उसकी चिकित्साम सम्बन्ध की । 'अभिजानदाकुन्सत' में शबुन्तना नी सिक्यों उसके मनस्ताप का कारप्य जान कर उसका निवारण वरना चाहती हैं । चिकित्सकों के अनुसार अनियमित ब्राह्मर भी चारोरिक विकारों का मूल था। असमय भोजन करने से आरोरिक किया-प्रणाली अस्वस्वस्थित होकर अनेक प्रकार के रोगों को जन्म देती थी।

भय च उपीपविश्य प्रवेष्टुभ्यानि नगरास्मीति सत्समुदाबार ।

<sup>—</sup>प्रतिमा०, घन ३, पृ० ७४ २,३. किमाहुस्त वैद्या , न यानु भिषजस्तत्र निप्रुसा । —प्रतिमा०, ३.१

४. अत्रभवतं उचितवेलार्तिकमे चिकित्सका दोपमुदाहरन्ति । —माल०, यक २, १० २८६

७ वही। ६. माल०, घक २, पृ० २६ स

रोग के दो प्रकार थे-एक मानसिक ग्रौर दूसरा शारीरिक। मानसिक सन्ताप का कारण ध्यक्ति की विशेष ध्रवस्था या परिस्थिति होती थी, किन्तु ज्ञारीरिक पीडा का कारण शरीरगत विकार था। 'म्रभिज्ञानशाकुन्तल मे दुष्यन्त के मनस्नाप का हेतु शकुन्तला का विरह है। शारीरिक रोगा में कुछ तो सामान्य एव साध्य रोग होते थे ग्रीर बुद्ध बसाध्य । सामान्य रोगो मे ब्रातपलधन (लू लगना) शीर्पवेदना , मोच द्रा जाना<sup>3</sup> कुक्षिपरिवर्त<sup>४</sup> (पेट का गुडगुडाना) फोडा फुसी<sup>४</sup>, म्रक्षिरोग", सन्धिक्षोभ", बरा<sup>च</sup>, सप दश , ठड लगना<sup>९०</sup> म्रादि का निरुपण विया गया है। जटिल रोगा में य॰मा १९, चातुर्थिक ज्वर १२, कु ज 13 वातशोिएत 18 ना सनेत विवेच्य माटको में मिलता है।

वैद्या एव चिकित्सको द्वारा अनुमत उपचार दिधि के साथ साथ प्राथमिक एवं घरेलू उपचार भी प्रचलित थे। श्रातप ताप मं प्रारीर को शोतलता पहुँचाने के लिए उशीरानुलेप किया जाता था 🗓 । मोच माये हुए स्रग पर रक्तच दन का लेप लॉभकारी समक्षा जाता था<sup>९६</sup>।

स्रभि० गा०, स्रक ३ पू० ४३ P स्व० वा० सक ५ पृ० १३३ माल० शक्षे पृ०३२१ ş

स्व० बा० सन् ४ पृ० ८६ ¥ तनो गण्डस्योपरि पिण्डक सब्त ।

4 मृच्छ० सक् १० पृ० ५४७ Ę

मगि∘ शा॰, त्रक २ पू० २⊏ ø

— प्रतिज्ञाः सक २ पृ०६७ कियनामस्य बग्गप्रतिकर्मेति । 4 3 माल० ४४

ξo म्बट० प्रक १ पू० =२

5.5 यदमाता इव पादमा ।

एपा मनु चातुर्विकेन पीडघत । —मेन्छ० झक्ष ८ वे० ४,४४ **१**२

स्रभि≉ शा≉ स्रकर पृ≉ रे⊂ ₹ ₹

यया वातगोगित सभितदव वतत इति पश्यामि । १४

——स्व∘बा॰ ग्रक४ पृ०⊏६

(यह सम्भवतं गठिए वा ही एव प्रकार होगा।)

सभिल्याल सक ३ पृत्र ४१ १५ माल०, सक ४ पृ० ३१७

ब्रग्ग-चिरोपगा के लिए इंगुदी तैस श्रेष्ठ माना जाता था । सर्प के बाटते पर सर्प-विषय के निवारगा के लिए या तो उत्त टच्ट शंग की काट दिया जाता था, या जना दिया जाता था या घाव में से दूपित रक्त निकाल दिया जाता था ।

उस युग में भी दयालु एवं सहृदय चिकित्सक थे जो दरिद्र एवं दीन रोगियों को नि.शुल्क औषघ देते थे <sup>3</sup>।

चिकित्सा-वाहन की दृष्टि से त्यायाम की मानद त्वाहम्य के तिए आवस्यक का। इतसे खरीर हुए-पुर त्वता था, त्कन्ध-अस्त इड, उसत और विचाल हो जाता था । इसके झत्यांत केक्न, इत, विविश्व कीझाएँ और कसरत समाविष्ट थे। 'त्वस्मवासबदल' मे राजकुमारी पद्मावती के मुख पर कन्दुक-कीझा रूप व्यायाम से उत्पन्न त्वेदिबदु दिखाई देते हैं "।

विखाइ वत है ।

भास, कालिदास और सूद्रक के सतरह नाटक सम्मिलित हप
से तरकालीन सामाजिक जीवन और जीवन-पद्धति का नित्र प्रस्तुत

सिटकर्श

करते हैं। जहाँ भास तथा कालिंदास के रूपक राजकीय जीवन का संस्पर्य करते विवाहि देते हैं, बहाँ गुटक का 'मुच्छकटिक' वित्रांकम करता है। किसी एक यिषेच्य टकों को तटयगीन जीवन-पद्मति के मंद्रकम का

ादलाइ दत है, यहां शुद्धक का 'मुज्यक्षाटक जन-सामान्य की दशा का चित्रांकम करता है। किसी एक यियेच्य नाटककार या उसके नाटकों को तद्युगीन जीवन-पद्धति के संकम का श्रेय नहीं दिया जा सकता है।

१. यस्य त्वया ग्रेगाविरोपणुर्मिगुदीना तैलं न्यविच्यत गुखे कुशक्ष्रिविद्धे । —-ग्रमि० शा॰, ४.१४

२. मास-, ४.६

३. दरित्र इवातुरी वैद्येनीवयं दीयमानमिन्छति । — माल०, सक २, पृ० २०७

४. व्यायामशानी चाप्यनुपालकः । — प्रतिज्ञा॰, २.१३ ४. व्यायामश्चिर्वियुत्तीव्युतायताशी । — प्रविकः, १.६

६. स्व० वाढ, संक २, पू० ६७

## शिक्षा-प्रणाली

समाज-बिन्तरण का एक महत्त्वपूर्ण रच शिक्षा प्रणाली भी है। विवेच्य नाटको से तस्त्राकिः स्टरकाशिन शिक्षा-प्रणाली के बस्तरिकः स्टरण का ज्ञान प्राप्त होता है। समाज मे शिक्षा का क्या स्वरूप था, स्वान्वया विषय पढाये जाते थे, गुरु शिष्य का सम्बन्ध्य किस प्रकार का होता था, स्वा पढाये जाते थे, गुरु शिष्य का सम्बन्ध्य किस प्रकार का होता था, स्वा पाठभक्त था—आदि सभी शिक्षा सन्वन्धी विपया का विवरण, व्ययं नाटका में मिलता है।

मालोच्य युग मे शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। विद्यार्थियो

विकार-केरळ

के श्रध्ययनार्थं सुसचालित शिक्षरा-सस्थाएँ थी जहाँ उनको विभिन्न विद्यामी एव कलामी की शिक्षा दी जाती थी।

रिक्षा केन्द्रों में आश्रमों का विशिष्ट स्थान था जो कोताहल श्रीर श्रशान्त वातावरण से परे शान्त अरण्यों में स्थित थे। आश्रम विद्या के सर्वोत्कृष्ट केन्द्र थे। उनमें शान-

भाशम

विद्या के स्वार्क्ष्य कन्द्र या जिनम सान-विज्ञान की प्रजस्न घारा प्रवाहित होती थी। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भ्राथमी की

था। रवान्द्रनाय ठाकुर प्राथमा का महत्ता प्रतिपादित गरते हुए कहते हैं कि 'भारतवर्य' में रावसे प्रास्वर्य' जनक बात प्यान देने योग्य यह है कि यहाँ बहर नहीं, जगल सर्वोत्छ्य सरहति वे जन्मदाता हुए। इन जमलो में यद्यपि मनुष्य ही रहते थे, परन्तु सर्य और कलह ना क्षेत्रामान भी चिह्न न पा। यह सबसे प्रिक महत्वपूर्ण बात है कि इस एकाकी जीवन और एकानता ने मनुष्य का अकर्मध्य न बना कर ज्ञान का विस्तार हो किया। '' कण्व,

सस्यृति, ए० ३७६

र गायत्री देवी वर्मा कालिदास के ग्रामी पर ग्राधारित तत्कालीन भारतीय

च्यवन ग्रीर मारीच ऋषियों के बाश्यम इसके ज्वलन्त प्रमासा है। ग्राश्यम विद्यालयों में विविध विद्याग्री की शिक्षा प्रदान की

जाती थी। उनमे अनेक शास्त्रो और विद्याओं मे पारगत अपने विषय के विशेषज्ञ ज्ञानार्य होते थे जो विद्यार्थियो को विषय विशेष का प्रधिकारी बना देते थे। विक्रमोवशीय' मे राजकुमार प्राप्तु ज्यवन ऋषि के निर्देशन मे समस्त विद्यात्रों का अनुशीलन कर धनुवेंद्र मे विशेष योग्यता प्राप्त करता है'। स्वप्नवासवदत्त' मे ग्रह्मचारी लाबाएक नाम के ग्राम में स्थित शिक्षा केन्द्र में वैदो का विशेप ग्रध्ययन करने के लिए जाता है । कण्य के ब्राथम के सम्बन्ध में यह अव्ययन करन करा है। किया निकास के आजन वा सन्धाय न पह मसिद है कि बारो वैदो में निपुत्ता यह सन्धन्यी साहित्व के बिजाय पद और कमपाठ के अनुसार सहिता वा पाठ करने में विद्यापत छन्द, शिक्षा व्याकरण और निक्कत में प्रवीग्र, आस्प्रविकान, ब्रह्मीपासना मोद्र, युम, न्याय बना आदि के यरम आता वहाँ रहा करते थें। प्राथम-यम एवं आध्रम कत्तंव्य ग्रस्तास कठोर और दुवँह होते थें। इनका पालन वरमा समस्त विद्याधियो एवं आध्रममाहित्यों के

लिए मावस्यक था। स्रभिज्ञानशाकुतल मे तावगी शबुन्तना की सुध भीजते हुए देख कर राजा दुष्यात कहता है कि महर्षि कण बस्तुन सप्तायुदर्शी है जिन्होंने इसकी क्ठोर साध्यमध्ये में नियुक्त किया हुँ । दैनिक हदन\*, तपादि अनुष्ठान\*, यन से क्च-मूल, सिम्या हुइ। हुनुसादि वा लाला आध्यम युक्तो लोच भीजना पादि आध्रम धर्म म परिगणित थे।

१ गृहीनविद्यो पनुवैदेशभविनीत । — বিল**০ অবাধ যু**০ বধৰ

२ स्तिविदीयगाम वस्त्रभूमी सावाण्य नाम ग्रामस्त्रभीयतवानस्मि । —स्व॰ वा॰ भर १, पृ॰ ४७

गाममी दबी बर्गी काविदास के प्राथा पर प्राधारित तत्त्वातीन आरतीय रास्ट्रति. प्र० ३७६-३=०

मिंग शा∘ मक १ पृ∞ १२

यावद्वपस्थित होमवना गुरवे निवदयामि । Z.

— सभि० गा० धर ४, गृ० ६२ — श्रमि ॰ गा॰, धर ४ पृ॰ ७३ बरग 1 उपरध्यत सपीऽनुष्ठानम् ।

ग्रद्ध पुरुषम्मित्तु प्रतिमित्त ऋषिकृषात्वा सहगतनानेनाधमविषद्धमाषरि

-- विक धन ४ छ २४६

मभि•धा•, यह १ पृ० १२

स्राश्रमों का प्रवानाधिकारी कुलपति ' कहलाता था। समस्त स्रायमवासी म्हणि उमकी स्राज्ञा उत्ती प्रकार धिरोवार्ग करते थे जेंस परिवारजन स्वर्ण उपेट अधित की। एक कुलपति के स्राधिकातुल्य म स्य हजार विदार्थी तक रहते थे। उनके पालन-पोपण और जिल्ला-दीला का उत्तरदायित्व कुलपति पर ही होता था । कहते की स्रावस्थकता नहीं कि कुलपति दाव्य साध्यम-स्ययस्था में पारिवारिक वातावरण की मृष्टि का सुचक है ।

पाश्रमों के सरक्षण और ज्ञान्ति व्यवस्था का भार राजा पर होता था। बही आश्रमों का तन-मन घन से रदाएं करता था। 'सिकानाजानुस्तल' वे श्रमसूषा अमर द्वारा सनस्त श्रवुन्तला को तपोवन ने रक्षम राजा बुज्यन्त ना स्मरण करने की यहती हैं'। 'राजा को आश्रमवासियों ने उपरोधा और विक्यों की सत्त विक्ता रहती थी "। वह आश्रम में अविनय पर आयरण करने वाला को दिख्त करता था। बहु क्वियों एवं बहुम्बारियों के कर्टा के परि-शान के लिए एक धर्माधिकारी भी नियुक्त करता था। धर्माधिकारी समय ममय पर आश्रम ना निरीक्षण करता था। श्रीर बही, स्विपंगे के सम्युक्तिकही को सुवना भी राजा को यथासमय देता था'।

परम्परागत वैदिव आश्रमो के अतिरिक्त राजकीय शिक्षण-

मिप सिनिहिनोध्य कुत्रपति ।
 सुनीता दरसाहका मोऽ नदानाविगोधनगात ।
 सध्यायपति निक्रपिरसी कुत्रपति स्पृत ।।
 स्पायपति निक्रपिरसी कुत्रपति स्पृत ।।
 स्पित्रगात सामान्य नी तीला पुरु ३५ २६

रे भगवतधारण उपाल्याय कानियास का भारत, भाग र पृ० ६१

४ मनि० शा०, सन १, पु०१६

५ राजा---नपोबननिवासिनामुपरोवा मा भूत्।

— श्रिमि वास्त्र १, ५०१० ६ र पौरक वसुमना नामिन शासितरि दुविनीतानाम् । ग्रयमाचरस्यत्रिकय सुन्तामु सवस्थिक यकासु ।। — स्रमि० शां० १२३

भवति य पौरवर्ण राना धमाधिकारे नियुक्त सोऽहमाथमिणामविष्न क्रियोपनम्भाय धमारण्यमिदमायान । — भनि० सार, भक् १ पु० १८ संस्थाएँ भी होती यो जहाँ शास्त्रीय ज्ञान के साथ-साथ व्यायहारिक एव सास्कृतिक विषयों की भी शिक्षा राजकीय शिक्षारणालय दी जाती थी। 'मालविकान्निमित्र' नाटक

में राजभवन के समीप स्थित इसी प्रकार के राजकीय विद्यालय का उल्लेख हुग्रा है। इस विद्यालय के दो विभाग थे, जिनमें एक में सगीतशाला " और दूसरे में चित्रशाला ' थी।

राजकीय शिक्षशालयों के बाचार्यों की राज्यकीय से नियमित

बेतन मिलता था । 'मालविकाग्निमित्र' में नाटचाचार्य हरवास श्रीर गगादास सगीत एव नृत्य के शिक्षण के लिए वेतन ग्रहण करते हैं ।

राज-परिवार के लिए राजगृह में भी शिक्षा की सम्वक् व्यवस्था होती थी। राजकुमारो को क्षात्रधर्म और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देने के लिए राजगृह में राजाचार्य या राजगुर

राजगृह

रहते थे जो राजा की छत्र-छामा में ही जीवन-यापन करते थे । 'पंचराम' मे भाचार्य द्रोगा इसी प्रकार के राजगुरु है। राजकन्याओं को भी विविध कलाओं में निपुरा बनाने के लिए आचार्य नियमत किये जाते थे।

'प्रतिज्ञायीगम्बरायण' मे महासेन की महिपी घपनी पुत्री वासनवता को नीएगा-बादन सिखाने के लिए एक ग्राचार्य रखना चाहती है। शिक्षा के क्षेत्र मे तो गुरु या शिक्षक का महत्त्व था ही, किन्यु

समाज ने भी उसे उच्च एवं विशिष्ट पद प्रदान कर रखा था। उसे समाज में सर्वोत्कृष्ट श्रीर पूज्यतम माना

गुरु का महस्व

जाता था। राज-राजेश्वर तक ग्रह का देवता के समान भादर गरते थे। 'पंचरात्र'

---माल०, ग्रम १, पृ० २६२ तत्तावत्सगीतज्ञाला गच्छामि । चित्रशाला गता देवी यदा अत्यववर्णशामा चित्रलेखामाचार्यस्यालीनयन्ती ਰਿਸ਼ਰਿ । ---माल॰, धक १, पृ० २६४

३. भवति परवाम उदरम्भरिसवादम् । कि सूचा वेसनदानेनैतेपाम् ।

—बात्तक, सक १, प्रक २७४ ---पदाराज, सक १, पृ० २४

 भो पाकार्यं! धर्में धनुषि चाचार्यं। पनरात्र, १.३०

प्रतिकार, सक २, एर १३

मे यज्ञ की समाप्ति पर गुरूजनो का अभिनन्दन करते समय दुर्पेधिन सर्वप्रथम आचार्य द्वोण को प्रसाम करता है ।

तिप्प के चारित्रिक विकास के लिए गुरु का ब्यक्तित्व प्रादर्श वनता था। प्रादर्श-प्राचार्य ही शिप्प के भावी जीवन को इंप्टात्वरूप वना सकता था। श्रादर्श-प्राच से स्वा

भादभं-शिक्षक होता वा और शिष्यो को विद्या प्रदान करने से प्रवीस होता वा और शिष्यो को विद्या प्रदान करने से प्रवीस होता वा वे । निद्या-दान से ज्ञान की बुद्धि मानी जाती थी, नाज नहीं । जीविकोपार्जन के लिए विद्या-दान निन्दनीय माना जाता था। 'मालविका[निन्नर' में विद्यपक जीविका के हेतु प्रध्यापन-कमें अगीकार करने वाल मनुष्यो को ज्ञान का ब्यापार करने वाले विस्तक् बताता है<sup>3</sup>।

गुरु की योग्यता शिष्य के जयन म मकट होती थी। शिक्षक का कीमल इसी में था कि वह विद्यार्थियों के हट मनीयल भीर उरसाह तथा गिरिक को देख कर उसके समुद्रक शिक्षा प्रदान करें। मुमोग्य शिष्य का जयन गुरु के बुद्रिकाशयन की व्यक्त करता था? । मुद्रीय को ने दो गई विद्या ही सकल होती थी। कुषान को विद्या का वात केबल मनोव्याया ना कारण बनता था? । गुरु की विद्या क्या सकल को किया की विद्या की सकल होती थी थी की में में मा जत समुद्र-गुक्ति में पहुँच कर उसी थी और में मा जत समुद्र-गुक्ति में पहुँच कर मोती बन आता है । गुरु की सकलता शिष्य

१ पचरान, सक १, प्र०१६

२ श्रिप्टा क्रिया कस्यनिदारमसस्या सकान्तिरम्यस्य विशेषयुक्ता । यस्योभय साधु ग शिखनाणा धुरि प्रतिद्वापयिनव्य एव ॥

यस्योभय साधु ग भिक्षकाणा धुरि त्रतिद्वापयिनव्य एव ॥
---माल० ११६
२ यन्यागम केवलभीयिकायै त ज्ञानपण्य व्यस्ति ॥

<sup>—</sup>माल०, ११७

विनेतुरद्व-प्रपरिग्रहोऽपि वृद्धिलायव प्रशासयतीति ।

भुशान्यवारदस्ता विद्यवासायवाया समुताः — म्हिन्निः सा०, व्यकः ४, पृ० ६३

पात्रविदोपे श्यस्त मुखात्तर बजित शित्पमाधातु । जलिमक समुद्रशुक्तो युक्ताफलता पयोदस्य ॥ ——माल०, १६

वे नैपुण्य पर शवलम्बित समग्री जाती थी'। 'मालविकाग्निमत्र' मे ग्राचार्य गरादास, भगवती कौशिकी के मुख से मालविका के नृत्य की प्रशासा सनकर ग्रपने नाट्याचार्यं के पद को सार्थंक समभता है?।

विद्यार्थीं गए। निश्चत विद्या की समाप्ति पर गुरु को बाहित दक्षिए। देते थे । यह दक्षिणा कितनी होनी चाहिए, इसका स्पष्ट

सकेत नाटको में नहीं मिलता है। इसना

स्वरूप एव परिमारा गुरु या शिष्य की गुरु-बक्षिस्या इच्छा पर निर्भर था। यज्ञादि घार्मिक

विश्वा र लिया प्रााव सामित्र समारीहो के समापन पर भी यज्ञकर्ता गुरु को दक्षिणा देते थे। 'पयरात्र' में दुर्योधन यज्ञावसीन पर भाचार्य द्वीरा को दक्षिणा स्वीकार करने को बाध्य करता है ।

जीवन का प्रथम चरण-ब्रह्मचर्याध्यम-विद्याध्ययन के लिए नियत या । इस अवधि में विद्यार्थी को संयमित जीवन-यापन करना

पडता था। छात्र के परिवार का सामा-विद्यार्थी-जीवन जिक स्तर बुछ भी क्यों न हो, उसे गुरु

के कठोर सनुशासन वा पाल करती पहला था। 'तिनकोशंबोध' में बाह्य व्यवन ऋषि के शास्त्र में विद्यार्थन करते समग, राजपुन होने पर औ, ऋषि कुमारों के साथ समिया, पुष्पादि लाने जाता हैं '। छान जीवन में बात्मानुशासन, इन्दिय निवस्त्र वैनिक प्रनुष्टानादि पर विशेष यल दिया जाता था। विद्या की तथ मी तरह ग्रजित वरना पडता था। विद्या समाप्ति पर्यन्त उसवे लिए नैष्ठिन ब्रह्मपर्य वत वा पालन ग्रनिवार्य था। राजकुमार त्रायु क्षियो-चित विद्यामा में निष्णात होकर ही गृहस्थायम में प्रवेश करता है ।

¥

माल० २ ह

ग्रंच नर्तियमाहिय । --- माला , चन २, पूर २५४ दीक्षा पारिनवान् विभिन्धिन पुनर्देय गुरायद्वमवत् । -स्व० वा०, १ म 3

भी भाषाय <sup>1</sup> धर्मे धनुषि चाषाय । प्रतिशृह्यना दक्षिणा ।

<sup>—</sup>पचरात्र, सर १, पु॰ 🕏 भव पुराममितुगनिमित्त कवितुमारकै गहरातेनाननाश्रमविरद्धमापरितम्।

<sup>—</sup> विक∘ सर प्र•२४६ प्रयिवस्य उपित स्वया पुत्रस्थिताश्रेत्रे । हिनौधेमध्यामितृतव शमय ।

<sup>-- (83° . 37</sup> X. 7° 3¥E

वासक के विद्यारम्भ की अवस्था शैशवावस्था ही होती थी। माता-पिता अपने वालको को विद्या-प्राप्ति के निमित्त वाल्यायस्था मे ही गुरु के हाथों समर्पित कर देते थे।

बिद्याच्ययन की ग्रवधि विद्यार्थी के विद्याध्ययन का परिसमाप्ति-काल निश्चित नही था। उसका दीक्षा-काल उसकी योग्यता पर निर्भर करता था। क्षत्रिय वालक जय कवच घारए। करने योग्य हो जाता था तभी वह विद्याध्ययन नमाप्त कर गृहस्याश्रम मे प्रवेश वरता था। विक्रमोर्वशीय' मे राजकुमार ग्रायू कवचहर इम मायु मनस्या तक समस्त विद्याएँ सीख लेता है ।

'कौटलीय अर्थशास्त्र' के अनुसार अध्येय विद्याएँ चार है-आन्वीक्षिकी, प्रयो, बार्ता और दण्डमीति । जिस विद्या से धर्म श्रीर श्रधर्म के स्वरूप का ज्ञान होता है उसे

अध्ययन के विषय

त्रयी कहते हैं, जिससे अर्थ या अनुर्थ का बोध होता है, उसे वार्ता ग्रीर जिसमे न्याय तथा अन्याय का विवेचन होता है, उसे वण्डनीति कहते हैं। जो विद्या तर्क द्वारा इन समस्त विद्यामों के महत्त्व का स्पष्टीकरण कर बुढि को स्थिर करती है और बुढि, वाणी और त्रिया में निप्रणता

जाती है, उसे मान्वीक्षिकी कहते हैं<sup>3</sup>। मनु ने चतुर्वेद, पड्वेदाग, गीमासा, न्याय, पुराण और धर्म-शास्त्र इन चतुर्दश विद्यात्रों का निरूपण किया है। श्रुताचार्य ने त्रयी

के अन्तर्गत इन्ही चतुर्दश विद्याशी को परिगणित किया है<sup>थ</sup>। विवेच्य नाटको में शब्येय विषयो के बन्तर्गत ऋग्वेद ", साम-

वैद<sup>६</sup>, गणित", हस्तिशिक्षा", वैशिकी कला", नृत्य कला ", गान्धर्व

ŧ बाल द्यपस्य गुरव प्रदातुर्नेवापराधीःस्ति पितुर्ने मातु ।।

—पचरात्र, १ १६

एप गृहीतविध माय सम्प्रति क्वचहर सर्वत ।

—विक०, सब ४, पृ० २४८

३ धर्यशास्त्र, १२.८.१२ ४. दाकनीति, १ ५४

४,६,७,५,६ मृच्यु०, १४

१० मुच्छ०, १ १७

विद्या वौर्यविद्या सवाहन कला धनुर्वेद , सागोपाग वेद , मानवीय धमशास्त्र<sup>६</sup>, माहेश्वर योग शास्त्र<sup>७</sup>, बाहेंस्पत्य ग्रर्थशास्त्र<sup>६</sup>, मेघातिथि का न्यायशास्त्र<sup>ह</sup>, प्राचैतस श्राद्धकल्प<sup>९</sup>°, इतिहास<sup>९९</sup>,वेदान्त दशन '२ नाम्य विद्या '3 स्त्रीर ज्योतिष शास्त्र '४ की चर्चा की गई है। इनके यतिरिक्त यालोच्य-काल मे अपराजिता १४ नामक शिखाबन्धन विद्या और तिरस्करिए। " जैसी रहस्यमयी विद्याएँ भी प्रचलित थी जिनकी सिद्धि से घट्टय होने की शक्ति प्राप्त हो जाती थी।

विवेच्य गुग मे मौखिक पठन-पाठन के साथ लिखित सामग्री का उपयोग भी होता था। मध्येय विषयो का ज्ञान पुस्तको 'क द्वारा भी

लेखन-प्रशाली

कराया जाता था। उबकी का प्रेम पत्र १० शकुन्तला का ललितपदो वाला प्रस्थ

पर्वे १६ सेनापति पुष्यमिन का राजकीय लेल ° कल्पबृक्ष के पत्तो से निर्मित वस्त्रो पर लिखी गयी दुष्य त की कीर्ति गाथा " तत्कालीन सुनिध्चित लेखन शैली के जबल त

```
रष्टास्त है।
१ प्रतिज्ञाः । सक २ ५०६३
 २ मुख्या अक ३, पृ० १५६ १७१
 ३ मुख्य० धक २ पृ० १२७
 ४ पचरात्र शक ३ पू० ११६
 X & 0 = 6 %
                                  —प्रतिमा॰, सब ५ पृ० ११४
११ समि० सा० सन ३ प्र०४४
१२ विका ११
१३ माल ०, १४
```

१४ माल श्रम ५ ५० ३५१

१५ सभि० गाल सवाक प्रव १३६

१६ विकार समा २, पूर १७७

१७ एनरपर सम पुस्तक नास्ति । — व्यवि० वक् २ पृ०३३

वित्र २१३ ŧ=

धभिव शाव शव ३ पुरु ४६ 3 \$

२० धय दवन्य संनापते पूर्ण्यमित्रस्य सन्द्रानात्मीसरीयत्राभृतनी सस प्राप्त । --- मानः चनः ५ पृ० ३४२

२१ धनि० सा०, ७ ५

'अिन्जानगाकृत्वल' में प्रयुक्त 'तेखन-साथनम्' शब्द लेखन-सामित्रों के अस्तित्व को द्योतित करता है। लिखने के लिए पत्र-रूप में निलनी-पत्र और भूग-पत्र का प्रयोग

सेखन-सामग्री

क्या जाता था। शकुन्तना ने कमल-पश पर प्रेम-पत्र निखा था और उर्वती ने एक कार्क किये थे। 'बर्विनिष्णवर्गा कर'' थे

निष्कर्षं यह है कि झालोक्य-काल में शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था। डिज-बालकों को झाथमों में शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा की अवधि क्षमता एव योग्यता पर निर्मर

निध्कर्ष

अविध क्षमता एव योग्यता पर निर्भर होती थी। आक्षमों में विविध विद्याएँ सिखायी जाती थी। समाज और धर्म में

गुरु का स्थान बहुत ऊँवा था। उसका स्रादेश सर्वोपरि विधानक होना या स्रीर उसके समझ राजा तक कुकते थे। स्राथम-संस्कृति से यह अदुमान कागाना गकत न होगा कि भारतीय संस्कृति का किता स्व कर से न होंगा कि भारतीय संस्कृति का किता किता का का स्व का स्थान में पुरुषकों का प्रयोग भी होता था। सन्देश स्थादि के प्रेषण में परु-प्रयोग होता था। विकाश के स्थान में वह हुए पुक्ति तक का उपयोग भी होता था। विकाश के स्थान में वह हुए पुक्ति तक का उपयोग भी होता था। विकाश वी ध्यवस्था राज-भर्म का स्था थी। राजगरिवारों में राजगुरु सी होते थे। विधा-दाग साह्यण का कर्तव्य था, जीविकोपार्जन का सामन नही।

न सनु सनिहतानि पुनर्वेकनसापनानि १—प्रिश्न वार् , मक ३, पृत्र ४६
 एतस्मिद्धकोदरसकुमारे नलिनीपत्रे नकैनिद्यसम्पर्धे ग्रह ।

<sup>—</sup> समि० सा०, संक ३, ए० ४६ ३. अर्जेक्याचीऽमध्ययन्त्रासः । — विकल संक २, प० १८०

रे. भूजंपनगतोऽयमधारविन्यासः । —विकल, अंक २, पृ० १८० ४. भनिक साब, अक ३, पृ० ४९

वनीयनि स्टबन्धकारे मापराशिप्रविष्टेव ग्रतीगुटिका दृश्यमानेव प्रनष्टा यसन्तरीना । — मृच्छ०, प्रक १, पृ० ५६

## धमं एव नीति

समाज रचना में वर्ष एवं नीति का महस्वपूर्ण योग रहता है। ये दोनों समाज के इंढ जाधारस्तम्म हैं। जिस प्रकार पहियों के सहसोग के विना रच धपने गन्तव्य पत्र पर प्रवसर नहीं हो सकता, जभी प्रकार धर्म एवं नीति के बिना संशक्त एवं सुचार समाज का निर्माण प्रसम्भव है।

भर्म मानव जीवन के चार पुरवायों—धर्म, कर्म, काम एव मोश—म प्रयम एव सूर्धन्य' है। इसके द्वारा ही क्रम, काम एव गोस मी सिद्धि होती है। इसी कारण बाचायों ने इसे ब्रम्युदय एव

नि रिसंब होता है। इस कारण आधारण न इस अनुक्र र र नि स्वेस सिंदि का मूल माना है।

व्यापरएग ने अनुसार धर्म रानद 'खू' धातु में मत् त्रत्यव लगाने से निय्यत्त होता है। इससे व्युत्पत्तिलम्म तीन धर्म (या व्याच्याप्) है।
प्रथम, प्रियते लोग अनेन इति धर्म अधाति जित्तसे लोग प्रति प्रयत्ति जायते स्वेस के से स्वेद प्रयत्ति आरती से ति पर्म के स्वांत् जो लोग गो धारण वर वह धर्म है धौर तुतीय, 'प्रियते म स्वांत जो लोग गो धारण वर वह धर्म है धौर तुतीय, 'प्रियते म स्वांत जो लोग गो धारण वर वह धर्म है धौर तुतीय, 'प्रियते म स्वांत जो लोग गो धारण वर वह धर्म है धौर तुतीय, 'प्रियते म स्वांत प्रांत जो दूसरो द्वारा प्रता विचायति प्रयाप्त प्रयाप्त प्रयाप्त प्रयाप्त प्रमाणित्याहुममाँ धारयति प्रजा'। इसने अनुसार धारएग परता ही पर्म हैं।

१ मने पम सविभेवमदा स जिवसमार अनिभाति भाविति । स्वमा ममोनिविचयायवाम्या यदक एव प्रतिकृत्य सब्यते ।।

— कुमारसम्बद्ध १ स्ट १ डा० गायत्रो वर्मा वर्गानदाम व ग्रांचा पर ग्रामारित संस्वासीन भारतीय संस्कृति, पु० ४१८ धर्मसास्त्रियों ने धर्म के स्वरूप के विषय में प्रपने बुद्धि-बल के प्राधार पर प्रथक पृथक न्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। इससे धर्म वी म्रोक राखाएँ (सम्प्रदाय) हट्टियोचर होती हैं।

आलोच्य नाटको में घर्म नी चार माखाओं का सकेत मिलता है जिन्हें ब्राह्मण, वैस्एाव, मैंच एव बीद मत ने नाम से अभिहित किया गया है। यो तो जैन-सम्प्रदाय भी बहुत पुराना है, किन्तु उसका उल्लेख नाण्या है। स्पष्टत उक्त नाटको में जैन धर्म विरोप चर्चा का विषय नहीं है।

सर्वापत युग में श्राह्मणु-धर्म (जिस वैदिक् धर्म भी कहा जा स्वता है) का श्रामण्ड साम्राज्य या। वेदा स्रीर जास्त्रा में जनता का

सरना है) था प्रापण्ड साम्राज्य या। नदा म्रार शास्त्रा म जनता था। श्रद्धल विश्वास या। जीवन के क्रिया श्राह्मस्य-पर्म चलामें में ग्रास्त्र वचन प्रमास माने जाते थें । सामाजिब, प्राप्तिक, राजनीतिक

थें। सामाजिन, धार्मिन, राजनीतिक सौर सास्ट्रतिन सभी कोनो से मारम-सम्मत निष्य ही माग्य होता था। 'प्रतिज्ञायीनामरायण' में मरतरोहेंन मुद्र म जीते हुए वाह ने विषय म मान्य-सम्मत विवान पूछता हैं । येदिन कर्मनाण्ड में प्रधानता एवं यज्ञादि नो बिगिन्द स्वान आश था। मर्बमावारण में धार्मिक-मियाधा और यज्ञ विधानों ने प्रति सर्यन्त अवा थी। यज्ञानुकान स्मी पुट्यों पर स्वानं प्रधान में से इस पुट्यों पर ही स्वर्ग-सुद्र ना अनुम्य सर्यनं है । याग क्रियाधों में दसाराविश्यादि गुणों को समा-हिन मानी जानी थी और उनते मानव में समस्त सर्वाय पुल जाते थे। दुर्थों में समस्त पर्या है । युर्थ प्रयोगमां होने पर भी यज्ञ दीक्षित होने में नारण सुगती ने रूप म तोभावमान होता है । उस मुग में गृहस्य मी दिन-

<sup>ं</sup>पचरात्र, १२२

चर्या म पच महायज्ञ' (ज्ञह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मृयज्ञ) की भावना विद्यमान थी। चारुदत्त का नित्य मृहस्योधित देव पूजने, देव वित्त अपैण जोर सन्ध्या, जपादि धर्मीचरण प्रचयज्ञ की महत्ता का परिचायक है। इन्द्र ध्विष्ठ , विद्यु , वस्तु , सूर्य , स्द्र , महत्ते, स्व , या आदि दे वैदिक देवताओं को विदोप महत्व आप या ।

परस्परागत वर्णाश्रम धर्मे को समुचित ब्यवस्था थी । । समाज में ब्राह्मएएों का सर्वोत्त्रस्ट पद था। पृथ्वी पर पूरवतम । होने के वारए। समस्त पार्मिक आयोजनों से उनको अग्रिम स्थान दिया जाताथा।

विषेच्य युग में वैद्याव धर्म का उदय हो चुका था। वैदिक-कालीन विद्यु जो प्रकृति को दिव्य शक्ति मात्र थे, इस युग में सर्व शक्तिमात्र देवता वन गये थे। वे वैतोप्य

दाक्तिमान् देवता वन गये थे । वे त्रेलीक्य वे सादि कारणः और निलोक म मिन नीत निया क्लापो के सूत्रधारः माने

नीत किया बनायों के सूत्रधारे र मान जाते थे। उनवे दशावतारों का ग्रत्यधिक माहात्म्य था। विवेच्य नाटको

१ ममुस्मृति ३६६७०

— मृण्य**ः ११६** 

तपसा मनसा वाश्मि प्रजिता बिनकमित्र ।
 तुष्पति गमिना निय देवता वि विचारित ।।

तद्वयस्य । इतो सया शृहदेवताभ्यो विश्व । गण्छ त्वपपि चतुष्पथ मानुभ्यो विलसुपहर । —मृष्डा०, सन १, पृ० २०

४ महमवि हताीच सञ्यामुवारे । — मृत्युः, सन ३ ए० १८६

४ पृथ्यं र वे ६ पवरात्र १४

६ मृत्यु०६५७ १० पथरात्र ११६ ११ सभिक,६३० १२ समिक ६३३

१३ मा भीस्तपस्तिन ससाववभवा वर्णाश्रमासा १ तिना प्रागव मुक्तामनी य प्रतिपासम्बि । — स्वाप्तिकशाक संक्ष ५ पुरु ६४

व प्रातपासमातः । — स्रोत्रव्याचा प्रकर्पण्यानः १६ दिवासमा प्राचनमा पृथिश्याम् । — सम्बन्धनः, १६

१५ ममा अगयन त्रैनोवयकारसाय नारायलाय । — मनिक यक ४, पृरु ७०

१६ दूर घर, ११

में विष्णु के सात ग्रवतारों—राम³, कृष्ण्³, वलराम³, वराह्४, -वामन<sup>४</sup>, नृसिंह<sup>६</sup> और मत्स्य<sup>७</sup> का निरूपण मिलता है। विष्णु पृथ्वी पर घम के संस्थापन और अधिमयों के विनाश के लिए अवतार लेते हैं ---ऐसा तत्कालीन घार्मिक विश्वास था, जिसमें नि:सन्देह गीता की परम्परा है।

यण्ये-काल में विभिन्न दार्शनिक एवं घार्मिक गतीं के साथ-साथ गैवादैतवादी विचारघारा भी प्रवहमान थी। इसके धनुसार केवल शिव हो इस चराचर जगत् के कारण थे।

धीय-सन

जल, अग्नि, पुरोवा, रवि, शशि, श्राकाश, पृथ्वी और वायु शिव के बाठ व्यक्त हम माने जाते ये 1 वे झलण्ड समाधि 1° में स्थित होकर मुमुझु मौर अनन्य भक्तों की श्रभिलापापूर्ण करते थे १ । शिव का धर्वनारी श्वर १ रूप भी उपासना का विषय था। वेदान्त में ये संसार में व्याप्त परमपूरुप के नाम से प्रशस्त हैं १३।

भालोच्य-पुग बौद्ध-धर्म का ल्लास-युग था। बौद्ध-धर्म उन्नति की

 मिन, १.१ २. वयमपि मनुष्यलोकमवतीर्णस्य भगवतो विष्णोर्वानचरितमनुचरितुं गोपाल-

करेपप्रच्छाता घोषमेवावतरिष्यामः । — वा० च०, सक १, प० २० रे. स्व० वा, १.१ ४. ममि०, ६,३१

 वा० च०, १.१ ঘমিত লাত, ৬.২

৬. খৰি০, १.१

इंह तु जगित मूनं रक्षणार्थं प्रजानाम् ।

धस्रममितिहन्ता विष्णरदावतीर्णः ॥ ६. धमिल साल, १.१

श्वमभोवं: पातु झून्येक्षसमुचटितलय ब्रह्मलग्नः समाधिः ।

---मुच्छ०, १.१

११. विकार, १.१

₹₹. कान्तामंभिश्रदेहोऽव्यविषयमनसो यः परस्ताधतीनाम् । 23.

--- माल ०, १.१

वेदान्तेषु समाहरेक पुरुषं व्याप्य स्थित रोदसी ।

--विक १.१

—वा० च०, **१.**६

```
২ ै দ
                    सस्कत नाटको मे समाज चित्रए।
```

ग्रोर ग्रग्नसर न होकर पतन की ग्रोर गतिमान् था। इसमे ग्रनेक विकृतियों ने जन्म ले लियाथा। धर्मना व्यावहारिक पक्ष समाप्त होकर केवल बौद्ध-धर्म सैद्धान्तिक पक्ष रह गया था। बौद्धों के धार्मिक सिद्धान्त केवल उपदेश के विषय रह गये थे। जीवन मे उनका

पालन नहीं किया जाता था। जनता की धर्मास्था विगलित हो गई थी। लोग सासारिक कप्टो से बचने के लिए (धर्माभिक्षि से नही) परिवाजकत्व ग्रहणः कर लेले थे । 'मृच्छकटिक' मै सवाहक सासारिक जीवन से दु ली होकर ज्ञाक्यश्रमग्राक बन जाता है<sup>9</sup>। बौद्ध भिक्षुश्रो का समाज मे ब्रादर नही था। मनुष्य इनको घृए। एव तिरस्कार की हिट से देखते थे। शावयश्रमण का दर्शन श्रमागलिक समभा जाता था। भार्यक को मुक्त करके जीजोंद्यान जाते समय चारदल मार्ग म

भिक्षुको देखकर श्रमगल की कल्पना करता है<sup>य</sup>। धर्म ग्रीर धार्मिक विचार-प्रणालियो का मूल ग्राधार देवता है। देवता की समोध एव सलौकिक शक्ति में विस्वास ही धर्म की

नीव को हढ करता है। सस्कालीन समाज मे बहुदेववाद बद्धमूल हो चुना था। रेबता भनेक देवी देवताओं में लोगों की घास्या

बढ गई थी। मालोच्य नाटको मे जिन देव-देवियो का उल्लेख हुमा है, वे ये हैं—इ॰द्र³, वरुएा४, अग्नि४, रुद्र<sup>६</sup>, सूर्यं४, मरुत<sup>६</sup>, यम<sup>६</sup>, विष्णु १ °, ब्रह्मा १ ९, शिव १ २, कुबेर १ ३, स्कन्द १ ४, कामदेव १ ४, चन्द्र १ ६,

भार्ये प्रहमेतेन वत्तकरापमानेन शावयधमणको भविष्यामि ।

---मृब्छ०, शक २, प्र०१३६

कथमभिमुखमनाम्युदयिक थमछकदर्शनम् ।

—मुन्छ०, शब् ७, पृ० ३७१

₹ श्रमिक, श्रक ४, पुरु ६६ मृच्यं०, २३

भ्रभि०, सक ६, ५० ११६ Ę धर्मिक, ६३० ሂ

मृच्छ०, ६ २७ धमिन, ६३० 9

3 मभिव, सक ६ पूर्व १२३ मुख्यक, ६ २७ 20

११ मुच्छ ०, ६ २७ १२ सध्यमः, १४३

ŧ٦ मुच्छ०, धन ४ पू० २४७ मुच्छ, सब ३,५० १४९ 88 ŧ٤

थवि०, धन ३, ५० ७१ 25 मनिं0, ६३० नारद $^1$ , नगरदेवता $^2$ , गृहदेवता $^3$ , बनदेवता $^4$ , सक्ष्मी $^4$ , कारया-यनी $^4$ , सरस्वती $^9$ , श्वी $^4$ , गौरी $^6$  और मातूदेविया $^1$  $^9$ ।

इन्द्र देवताओं का अधीश्वर या "। मैघों पर भी इसका प्राधि-पत्य या। मेच इन्द्र की बाजा से ही अवण्ड जलबृष्टि करते है " । इन्द्र के सम्मान में सक्त्यजोत्सव " और इन्द्रयंत्र " जैसे समारोह भी ग्रायोजित होते थे।

बरुए जल का देवता <sup>भ</sup> माना जाता था। कुपाए और गुप्त मूर्तियों में यह मगर पर बैठा हुआ है और दण्ड के लिए हाथ में पाश जिये हए हैं<sup>भ</sup>ै।

प्रति देवतामो का मुख '॰ माना जाता था। यज्ञादि '॰ धार्मिक प्रनुष्ठानो मे इसका विशेष महत्त्व था। राजगृही मे आसाद से पृथक् सन्यागार '॰ होसे थे जहाँ निरन्तर सन्ति प्रदीप्त रहती थी।

रह एक बैदिन-कालीन साधारएा कोटि का देवता या जो गुप्तकाल तक आने-आते महत्त्वपूर्ण देवता वन गया। कालान्तर में इसका सम्बन्ध सिव से जोडा जाने लगा और अन्त में यह शिव का स्वस्त से पान तरह गया ? । इसका प्रमुख अस्य पर्छ माना जाता था ? ।

```
१. मृज्यु , ५ ११
                                २ मृच्य०, १.२७
                                ४. अभि० शा०, ४%
 रे. मुख्यः, धन १, प्र० ३२
                                   धवि॰, धक ३, पृ॰ ७४
 ५ भवि०,२३
 ७. समि०, ६३०
                                   बिक्त०, शक ३, पूर २०३
 ६. मुच्य०, १.२
                               १०. मृज्य, धक १, ५० ३२
११. न क्षजु देवराको ममासनमारीहति ।
                                —সবিয়াণ, থক ই, দুণ দণ
१२ मृच्यः, ५२१
                               १३ मध्यमं ०, १,४७
१४. बा॰ च॰, झन १, पु॰ १४
१५ परय परय भगवत्त्रसादान्निष्कम्पवीचिमन्त सलिलाधिपतिस ।
```

<sup>—</sup> स्वित्र क्षेत्र ४, पृत्र ७६ १६ भगवतशरल उपाध्याय : नालिदास वा भारत, भाग २, पृत्र १२६

<sup>े</sup> प्रतिकृतिकारी हिन्दा । — प्रतिकृतिकारी स्वार्थित । — प्रतिकृतिकारी हिन्दि । — प्रतिकृतिकारी हिन्दि । — प्रतिक सार्व हिन्दि । — प्रतिक सार्व हिन्दि । — प्रतिक सार्व हिन्दि । स्वर्थ हिन्दि । स्वर्य हिन्दि

२१. चिर मूले बच्च परसुरिय स्ट्रस्य पति । -- प्रचरान, १.१६

सुर्ये ऋग्वेद के विश्वदेवो में परिगणित देवता था। इसके

सारिथ का नाम अरुए वा, जो इसके रथ का सचालन करता था। भरत् विवेच्य यूग के लोकप्रिय देवता नही थे । हाँ, वैदिक देवता

के रूप में मरुत् की प्रतिष्ठा बनी हुई थी। मरुत् देवों का एक पृथक् समुदाय या गरा व्या। ऋग्वेद में ये वृष्टि-देवता के रूप में वर्शित हैं ।

यम भी एक वैदिक देवता था जो ऋग्वेद मे मृतको का राजा प बतामा गया है। यही कालान्तर में मृत्युका देवता माना जाने लगा।

विष्णु - ऋग्वेद का भूर्यदेव विष्णु बालोच्य युग मे सर्वशक्ति-मान, जगत् का नियन्ता और त्रिलोक का ब्रादि कारण माना जाने लगा था। सुदर्शन चक्र, शार्जु धनुष, कौमोदकी गदा, पाचजन्य शख,

नन्दक तलवार इसके बायुध थे<sup>ज</sup>। इसका बाहुन गरुड पक्षी माना जाता था"। इसके विषय में ऐसी पौराणिक मान्यता थी नि यह धर्म सस्थापन के लिए पृथ्वी पर विविध प्रवतार ग्रहण करता है।

बहार विश्वका संस्टा स्वीकृत था 🖰 । इसकी 'प्रजापति' 🖫 सजा से भी अभिहित किया जाता था। भारतीय संग्रहालयों में बहुग की मृत्ति चार सिर, चार हाथ बाली है। हाथी मे वेद, कमण्डतू, रुद्रारा भीर खवा है। यही दाढ़ी वाली प्रतिमाएँ विशेष रूप से देखने

मे माती है १३।

मक्शनल वैदिक माद्योलोजी, पृ० ३१ ŧ

धभि० शा०, ४२ ₹

सब्द्वी इमरद्गण त्रिमुबन सुदर त्वर्यन प्रभी । --- शिक्त, ६३० 3 भाग्वेद, ८७१६ ¥

ऋग्वेद, १०१४१ ¥

नमो भगवते श्रेनोवयशासमाम नारायणाय ।

٤

--- शभि॰, सक ४, पृ० ७७ द्र॰ वा॰ सन १, पृ० ३७ ४३ ø

मये मय भगवतो बाहुना गरंड प्राप्त । —दु० था०, घर १, पृ० ४४ 5

मध्यम∘, १४३ ₹•

3 या॰ प॰, १६

\* \*

यभि॰ सा॰, ४१४

गायत्री दवी वर्मा वालिदास वे श्राया पर शाधारित तरा दिन भारतीय

17 धरशत पुरु प्रश्नम

—माल०, ११

— विक०, ११०

शिव को हस्ति-चर्मवारी , सर्पों से परिवेध्टित अर्द्धनारी-स्वर , योगसमाधि मे लीन , जल, अनि, पुरोधा, चन्द्र, सूर्य, माकास, वायु और पृथ्वी—इन अट्यूत्तियो से युक्त , पृथ्वी और याकास मे व्याप्त, वेदान्तियों का ध्रादिपुरुष , आत्मभू , नीलकण्ड , सीर गौरी से ग्राहिसप्ट माना गया है। पिनाक (धनुप) इनका वरामुष है । ।

कुबेर घन का देवता माना गया है "। इसके नाम से कुरूपता प्रकट होती है। हाय मे एक यैंनी लिये हुए, कुरूप गर्दन और सीद वाने एक लाझिएक बनिये या खजान्यों के रूप में उसकी मूर्ति मिलतो है ? ।

स्कन्त शरवरण से उत्पन<sup>ा ह</sup> और शक्ति नामक अस्त को भारण करने वाला<sup>98</sup> कहलाता था।

कामदेव श्रङ्कार-रस का देवता था १४ । वसन्तोत्मय के भ्रवसर पर इसकी आग्र-मजरियो द्वारा पूजा की जाती थी १६।

चन्द्र भीपधियो का स्वामी माना जाता था 'ण।

१ य स्वय कृतिवासा ।

१४. भृज्ञारीकरस स्वय भूमदनी।

ষ	पर्यं मग्रन्थिया प्रदिगुणितभुजगाश्नेयसबी नजानी ।			—-দূৰ্ৱ৹,	ŧ	ξ
3	<b>मान्तासमिथदेही</b> ।			मान०,	ξ	ę
¥	धन्मोर्व पासु धू येक्षणः	<b>पटितलयश्रहा</b> नः	न समाधि ।	<del>— দূ</del> দ্ভ,	2	Ş
×	श्रमि० शा०, ११	Ę	विका•, ११			
19	सभि० द्या॰, ७ ३४	=======================================	मृष्यः, १२			
٤	मृष्यः, १२	ţ=	মণিত যাত,	१६		
<b>१</b> १	प्रतिमा॰, ४१७					
१२	भगवतशरक उपाध्याय	कालिदास का	भारत, भाग	२, पु० १४०		
₹ ₹	সবিলা৹, ২ ২					
\$8	धनिनवरो यम ।			मच्यग०, १	¥	3

१६ सिक्ष प्रवत्नम्बस्त मा यावदश्रपादस्यिता मृत्वा चृतकनिका ग्रहीत्वा काम देवाचेन करोशि । —अधिक शाक अक ६, प्रव १०२

देवार्चन नरोमि। — अभि० शा० अक ६, ५० १० १७ अभि० शा० ४२

```
संस्कृत नाटको से समाज चित्रण
```

२४२

नारद देवपि कहलाता था । यह वेदो मे पारगत, सगीत प्रेमी ग्रीर वीएग के स्वर से लोक मे कलह उत्पन्न करने वाला मान्य था<sup>र</sup>। गृह-देवता, नगर-देवता श्रीर बन-वेवता--ये सम्भवत गृह,

नगर ग्रीर वन की रक्षा करने वाले देवता थे।

लक्ष्मी ऐश्वयं एव वैभव की अधिष्ठात्री देवी ही थी। यह विष्णु की ग्रधींगिनी मानी जाती थी3 !

कारवावनी शुस्भ निधुस्भ खौर महिपासुर का वध करने वाली मानी जाती थी । कुण्डोदर सर्पं शकुकर्सं शुल, नील और मनौजव

द्राचारियों के विनाश के समय देवी की सहायता करते थे। सरस्वती वाणी को अधिष्ठात्री देवी थी। वह 'भारती'<sup>६</sup>

मिभा से भी विभूपित थी। शची इन्द्र की पत्नोण कही जाती है। शची ऋत्यन्त स्रोजस्विनी

एव तेजोमयी देवी थी। विश्वमोवंशीय में उवंशी वतवेशधारिणी देवी औशीनरी को तेज में शंची के समकक बताती है<sup>य</sup>। सात देवियाँ सस्या में सात थी। अभरकीय में इनका नामी

ल्लेख इस प्रकार है—बाह्यी, माहेश्यरी कीमारी, बैद्यावी, वाराही, इन्द्राणी भीर चामुण्डा । कृपाण काल के एक मधुरा प्रस्तर पर सप्त-मातकाम्रो की नीली किनारी की पक्ति उत्कीर्ण है "। एक गुप्त

शिलालेख मे स्कन्द के साथ इनका उल्लेख प्राप्त होता है ''। गौरी दिव की अधागिनी स्वीकार की गई थी 1%।

१ स्रवे भगवान् देवपिनारद । — चावि० सर ६ प्र∙ १५०

षवि० ६११ ३ ग्रवि०.२३ 2

४ बा॰ व॰ २२० ४ वा० घ०. घरु २, ५० ३८ ६ হাসি৹ ६३৹ धमि० सा०. छ २४

न किमपि परिहीयते धच्या छोजस्वितया ।

—विक∘, सन ३ प्र∘ २०३ ब्राह्मी माहेश्वरी चैंव शीमारी वैद्यावी तथा । £

बाराही च सथ द्राली चामुण्डा मप्तमातर ॥ --- समरकोग

भगवनगरका उपाध्याय-नासिदास का भारत आग २, पृ० १४०

20 ₹ ₹

स्य दगुप्त का विहार जिलान्स्तम्म लेख । मुख्य १२ ₹₹

येज्ञो मे पश्चे बलि बा भी विधान था। मृब्द्रकटिक' म विदूपक

१,२,३,४ सभि०, अन ६, ५० १२२ मायुष्मन् एव अत्र हेमकुटी नाम क्षिपुरुष पथतस्तप सनिदिशेत्रम् ।

—য়িখি৹ য়া৹ য়য় ৬, ৭০ १६१

पचरात्र, १२३

नपे बीद्या प्राप्ते जगदपि सम दीक्षितमित । -पचरात्र०, १३

एहि एहि पुत्र । एवमेवावम्यस्नानपु खदमवाप्त्रहि । —पनरात्र सक १ प्र**०** २१

यनयसितेऽव भूथस्ताने न तल तावदस्तिहत्स्ववची भवद्धि ।

—पन्साय, यक १, पू० ३

तृप्ता द्विजेन्द्रा धने । —पचरान, १४ फूरफूर करते हए दीपक की तूलना यूपकाष्ठ से बाधने के लिए लाये गये बकरे से करता है।

यज्ञो मे अश्वमेष "राजसूय विश्वजित् भ नैमिपेय शत कुम्भ भीर अग्निष्टोम का निरूपसाहसाहै। अश्वमेष एक राज यज्ञ था ग्रीर राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूण था। इसमे एक निश्चित ग्रवधि के लिए मेध्यादय छोडा जाता था। उसकी रक्षा के लिए वडी भारी सेना के साथ प्राय राजपुत्र को सेनापित बना कर भेजा जाता था। यज्ञ तुरग निद्वाद्व विचरण करताथा श्रीर उसके पीछे रक्षक सेना रहती थी। जब कोई विपक्षी योद्धा बश्व को पकड कर चुनौती दता थातो उसके साथ अव्वरक्षको का घमासान युद्ध होता था। यदि यज्ञाभिलापी राजा विजय प्राप्त कर लेता था तो सपरिवार शास्त चित्त से यज्ञ का श्रायोजन करता था"। यन समाप्ति पर वह चक्रवर्ती सम्राट घोषित कर विया जाता था।

राजसूय यज्ञ भी अव्यमेष यज्ञ के समान विशाल राजयज्ञ था। रामस्त विपक्षी राजाबी का विजेता ही इस यज्ञानुष्ठान का ब्रधिकारी माना जाता था । विश्वजित् विश्वजय के प्रधात् किया जाता था। इमम यजमान अपना सारा कोष वान कर देता था<sup>9</sup> । नैमिपैम शत भुम्भ स्नीर शन्तिष्टीम यज्ञ अव्यमेयादि के सहश विशाल राजयन नहीं थे और नहीं इनका राजनीतिक हिंदू से विशेष महत्त्व था।

१ भी । प्रदापमादमारतेन पशुवाधोपनीतस्यैव छागलस्य हुदय पुरपुरामने

प्रशीप । — बुब्छ० सर १ प्र०६% २ मापण भग प्रपृश्वप्रव

पचरात्र १२०

श्रम मनु तायत् सक्षिन्तिसयरत्नस्य विद्यविती बनस्य प्रस्तिवा प्राव — प्रतिमा॰ धन ३ प्र• ७६ सित्यमञ्जीको दिलीय ।

<sup>—</sup>वित्र**ः सर** ५ पृ० २४३ नमिपयसत्रादवियुक्तोऽहस्यन्या ।

मध्यमः धव १ व० ११ नणभार सदा १ प्र•२६

तेन ह्यग्निष्टीमपण ददामि । o मास॰ धकार पु०३६२३६३

<sup>3</sup> एकमव ऋतून् सर्वान् गमानीयाप्त=शिलान् ।

राजमूय मुकाशिकाका जरायन्य इवानय ॥

<sup>—</sup>पत्ररात्र०१ ५

पर तिथि-विशेष पर और श्रभीष्ट सिद्धि के लिए यत, उपवास रसे जाते थे। 'पचरात्र' में दुर्योधन का घरीर यज्ञ के भ्रयसर पर किये गये अतों से वत-उपवास ग्रत्यन्त कुश हो जाता है<sup>9</sup>। 'मृच्छकटिक' मे भूता तिथि-विशेष पर किया जाने वाला रत्न पष्ठीव्रत करती है ।

ये भी धार्मिक इष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यज्ञादि घार्मिक ग्रनुष्ठानों

'विक्रमोवंशीय' में रानी श्रोशीनरी रुष्ट प्रिय को प्रसन्त करने के लिए 'प्रियानुप्रसादन' श्रेत करती है। इसी प्रकार 'बारदत्त' में नटी 'जन्मा-न्तर में भी, वर्तमान् पति को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए 'ग्रीम-रूपपति' नाम के ब्रस की साधना करती है।

यत के श्रवसर पर मनीवाछित फल-लाभार्थ पूजन-मामग्री ने देवपूजा की जाती थी। 'विक्रमोर्वशीय' में रानी प्रिय को प्रसन्न करने के लिए चन्द्रदेव की अर्घना करती है<sup>×</sup>। इस के दिन बतधारी के सामाजिक स्तर के योग्य बाह्यण भोजन के लिए निमस्त्रित किया जाता था धौर भोजन के पश्चात् उसे दक्षि गा प्रदान की जाती थी ।

धार्मिक कृत्यों मे देवाचॅन का भी विशेष महत्त्व या । उपासक ग्रभीष्ट-मिद्धि के लिए देवताओं की विधिवत् पूजा करते थे। 'विक्रमोब-

टेखार्चन

शीय' में रानी प्रिय-प्रमादन रूप गाये की सिद्धि के लिए यथाविधि चन्द्रमा की श्रचना करती है°। देय-पूजन ग्रीर देय-बिल गृहस्य के निरय नियमों में भी विहित थे। प्रतिदिन मन, बचन.

---पचनाय, १,३६ तत्वर्वस्ते तत्रु गातमेनत् ।

२. मृत्यु , अवः ३, पू । १८४ ३ भर्नः प्रियानुष्रमादन नाम ।

-- Time, 24" 3, 70 266

चाहदत्त, यन १, पृ० ५ दारिकाः ग्रानयनीपहारिक यावन्यणिहस्यपृष्टगर्नाः वश्वराशः वर्णातः -- [450, 55 3, 70 542

६. श्रम्माद्वयत्रनयोभ्येन बाह्यसेन उपनिमन्त्रिन । 🔫 दृष्ट ०, ४४ १, ४०१= ७८ - प्रपि च दक्षिगुत कानि ते चनिष्यनि । -2430, 20 3, 70 12

द. विकण, स्रोंक ३, पूर्व १०४

कर्म से पूजित देवता भक्त की इष्ट-सिद्धि अवश्य करते थे "। 'मृञ्छकटिक' मे चारुदत्त नित्य नियमानुसार देवकार्य वस्पन्न करता है।

प्रात साय सन्ध्यावन्दन भीर जपादि वैदिक शायों की नित्य कियाएँ थी जो श्रपने प्रमिल रूप में विवेच्य-काल में भी भ्रवशिष्ट थी।

'मृञ्जुकटिक' में चारवंत सन्ध्या-करवन

सन्ध्या-वन्दन और गायत्री आदि अन्त्री के जप भी दैनिक जीवनचर्या का अग मानता है। तपोऽनुष्टान विशेषत तपस्त्रियो की जीवनचर्या का ग्रग थी।

तपोऽनुष्ठान विशेषत तपस्वियों की जीवगवर्षों का ग्रंग थी। उसमें नैपुष्य का भी योग होता था। दु साध्यता उसकी कसीटी थी। बुद्ध तपस्वी स्पोयोगी होकर समाधि में

तपश्चर्या स्वयं को भीर निकटवर्ती सतार को पूर्णत विस्मृत कर देते थे। मारीच ऋषि के स्राक्षम में कठोर तपस्या म निरत सुगि के चारो और वीटियो ने बिल

,यता लिये थे, यक्षस्यल पर सर्यन्यचायडी हुई थी, गले मे सूखी हुई लताएँ उलकी हुई थी और जटाम्रो में चिडियो ने घौसले बना सिये थें । तप सापना न्हपियों ने लिए 'जीवनीवध' थी। म्हपियों के लिए उसम ज्युवधान समझ था। म्हफिपातशाकस्तल' के सक्तुता की

ति तांक्षण हिल्ला गए जावनाच्य वा मुख्यान क् लिए उसम क्यान ब्रम्म था। म्याफातवाकुत्तल में साहुत्तला सी विदा में ममय भी महाँप कच्च वो तयोषरोध विस्ता ही व्यक्ति परती है । तपस्यियों में तयोमार्ग में उपस्थित होने वाली वाधामों से निया-रए। का उत्तरतायित्व राजा वा होता था। 'अभिज्ञानसाकुन्तल' में राजा दुम्मत क्या-दिवागों से मिलने पर सर्वप्रथम उनकी तपस्या की निर्वायता के विदाय में प्ररंग करता है ।

१ गृहस्थस्य नित्योऽय विधि ।

तपमा ममसा वाभिमः पूजिताः विश्वचित्रः । तुष्पत्ति वाभिना निरंग देवता कि विचारितः ॥ —मुच्छ०, ११६ सिद्धीष्टतदेवनार्यस्य । —मुच्छ०, स्रवः १, पू० २४

२ सिद्धीवृतदेवनार्यस्य । — मृत्यद्व , स्वर् १, पृ० २४ ३ शहमपि कृतशीच सम्यामुकाले । — मृत्यद्व , स्वर ३, पृ० १७६

४ समान्तजपोऽस्मि । — मुन्छ०, सन १, पृ० १८

४ समिन सान, ७११\_ ५ असे ! सरकार अमेरकारका ० — व्यक्ति व्यक्ति स्टू

६ वरमे ! उपरामते त्रपोऽनुष्टानम् । —श्रमिक सा०, सङ ४, ९० ७५ ७ सपि निविम्नतपसो मुनय । —श्रमिक सा०, सङ ४, ९० ८६

२४७

घार्मिक दृष्टि से तीर्थ-यात्रा या तीर्थाटन का वडा महत्त्व था। तीर्यस्थान अत्यन्त पावन और पाप नाशक समके जाते थे। लोग बिशेष तिथियो पर तीर्थी म स्नान वरने तीर्थं यात्रा जाते थे। 'विकमोर्वशीय' मे राजा पूरूरवा

तिथि-विशेष पर सपरिवार गगा-यमुना के सगम में स्तान करने के लिए जाता है। लोग तीर्थों में जाकर ग्रह-शान्ति भी कराते थे। महर्षि कण्य शकुन्तला की ग्रह शान्ति के लिए सोमतीय को जाते हैं?।

धर्म-क्षेत्र मे सस्कारो का भी विशिष्ट स्थान था। व्यक्ति ग्रपने माम के अनुरूप शरीर और आत्मा का शोधन एव परिप्कार करते थै। पुनर्जन्म की व्यवस्था में भी संस्कारी

का योग समऋ जाता था । इसलिए सस्कार सस्कारयुत मनुष्य द्विज<sup>४</sup> कहलाता था।

भालोच्य नाटका मे पुसवन\*, जातकमं , उपनयन , रामावर्तन , विवाह भीर बन्स्पेष्टि "स्कारो का विशेषता से निरुपए हमा है।

٤ धद्य तिधिविद्येष इति भगवत्योगगायम्नयो सगमे देवीभि सहकृनाभिषेक साम्प्रतमपकार्या प्रविष्ट । —विक्र∘. धक ४, प० २३६ देवमस्या प्रतिकृत रामगित् नोमतीर्थं गत । — घभि० सा०, प्रद १, ५० ६ ₹

3 गौतम धर्मसूत्र, १०१

"जन्मना बाह्यणी बय , सस्कारैदिव उच्यते —देखिए, गायती वर्मा

मालिदास के ग्रन्थों पर आधारित तत्कालीन आरतीय गरकृति पृ० ६४ निवृत्तपुत्तवना जायाऽस्य श्र्यते । — स्रभि० गा० सनः ६, पृ० १२१

٤ विधिवदस्माभिरवृष्ठितजातकर्मा पुत्र एव शाकुन्तलेय । — মুমিত হাতে, মক ৩, ৭০ १४৬

तस्य पुत्रोपनयनाथं सकलत्रोऽस्मि प्रस्थित । b

— शब्यम०, ग्रक १, प्र० २**८** 

कस्मात त्व कृतसमावतीं बटक इव त्वरसे । -- अवि०, घन ४, ५० ११६

3 तिचत्रफलकस्ययोयत्यराजनासवदत्तयोनिवाहोऽनुष्ठीयताम् ।

—शतिज्ञाः । भक्ष ४, प्र० १२६

हत स्वर्गे गतो बानी । सुग्रीव । वियतायस्य सस्कार ।

— समि०, ध∓ १, ५० २२

₹४८

शुद्धि सस्तारों में पूराबन प्रथम था। यह गर्भाधान के तृतीय मास में सम्पन्न होता था। इसमें सारे दिन उपवास की हुई पत्नी को पति दहीं में एक यब की बाल झीर दो माप के दाने मिला कर तीन बार पीने को देता या मोर अल्लेक वार उससे पूछता था— तुम क्या पी रहीं हों तथा गरनी प्रत्येक बार पुमवने पुसवनें कहती थीं । भात कम बालक के जन्म के पद्माल् सम्पन्न होने वाला प्रथम

सस्कार या। यह नासो च्हेब से पूर्व किया जाता था। पुनोतानि की सूचना प्रान्त करते ही पिता बालक का मुख देखता था और स्नान माजन के पश्चा । प्रधाविधि पितरो ना नाड कर बच्चे की पी मधु प्रधाना था।

था और विधाध्यया आरम्भ करता था। मानव धर्मशास्त्र के आहे भानुसार साह्यण क्षांत्रम और वैदय के लिए उपनयन सस्कारका समय कमा आठ से सोलह स्थारह से बाईम और बारह से चौदीस धप तक माना जाता था<sup>3</sup>। समावतन सस्कार विधाध्ययन की समास्ति पर मनाया जाता

उपनयन सरकार यशोपबीत सस्कार भी कहलाता था। इस सस्कार के पश्चात वालक यशोपबीत घारण कर ब्रह्मचारी बन जाता

था। वेदानुशीलन के पत्चात् गुरुकी धनुमति से ब्रह्मचारी का घर लौट माना ही समावतन कहलाता था।

समावतन के पश्चात् विवाह-सस्कार का विशेष महत्त्व था।

यह श्रह्मचारों ने लिए गृहस्थाश्रम का मार्ग प्रशस्त करता था। श्रास्थिष्ट संस्कार मृत्यु के उपरान्त विया जाता था। इसकी भार

श्र त्याष्ट संस्कार मृत्यु के उपरान्त । या आता या। इतका के त गैत समस्त मृतव त्रियाओं का समावेग होता है। मृतय के याय का रणा अयोच माना जाता या। अयोच वो जुढि वे लिए यमुनादि पवित्र नदियों वे जन म स्नान वरने वी प्रया योग। वितरों यो तृत्यि वे

र मान्वलायन ग्रह्मभूत्र मध्याय १ १३२ ७

२ भगवतगरण उपाप्याय वालिदास या भारत भाग २ पृ० १४४

३ वहीं माग २ पृ०१५७ ४ विस्तार के निष्देशिए परिवार नामक धष्याय ।

१ भन भगोषिकोऽस्मि भृता दारिका छहीता । स्टूलक प्रतिपालमतु भनी

यावद् यमुनाजस गया शीच वरोमि । —था० च०, प्र₹ १, १० १६

388

की स्मृति मे सावत्सरिक श्राद्ध किये जाते ये <sup>३</sup>। श्राद्ध-दिवस पर श्रद्धा-नुसार दान दिया जाता था<sup>४</sup>। श्राद्ध के ग्रवसर पर मनुष्यो के लिए घासो में कुश, श्रीपधो में तिल, शाको में कलाय, मत्स्यो ग महाशफर, पक्षियों में वाघीए।स ( काली गर्दन, लाल शिरं वाला पक्षी ) श्रीर पशुद्रों में गाय या लड्ग का विघान था । काचनपादन मृगो के मास से पितरो का श्राद करना उत्तम माना जाता था। इससे नृप्त पितर पुत-लाभ का फल प्राप्त करते थे धौर स्वर्ग में देवा के साथ विमानी में निवास करने ये तथा ग्रावागमन के बन्धन से मुक्त होकर स्थिर हो

जाते थे<sup>द</sup> । यह भी धर्माचरराका ही बगथा। भागन्तुक का स्वागत-सत्कार गृहस्य का अनिवार्य कर्तव्य माना जाता या। मतिथि के क्रागमन पर उसका अभिवादन<sup>®</sup> किया

जाता था भीर फिर उसको बैठने के लिए प्रतिथि-सत्कार

११

द्यासन दिया जाता था<sup>५</sup>। तत्पश्चात् पाद भौर घर्ष्य से उसका मातिथ्य किया जाता था<sup>ड</sup> । इस प्रारम्भिक यौपचारिकता के बाद परस्पर कुझल-क्षेम-विषयक प्रश्न किये जाते ये भौर मतिथि मपने थागमन का उँहरप प्रकट करता था 1°। स्रतिथि-सरकार में मधुर और नम्न शब्दो का प्रयोग शिष्टाचार माना जाता था 🔭 ।

१ जातः। स्वमव पर्यवस्थापय श्रास्मान श्रहमाकः तिसीवकवानायः। --- मुच्छ०, सक १०, प्र**०** ५६४ समि० सा०, ६२५

दयस्त्रप्रभवतस्तातस्यानुसबत्भरश्राद्धविधि । —प्रतिमा०, स्रक ५, पृ० १२६

-प्रतिमा०. सनः ५, प्र० १३४ सर्वे श्रद्धया दश्च थादम् । ¥

प्रेतिमा॰, शक ४.५० १३४-३६ ×

प्रतिमा०, ५ १० ٤

--- प्रतिमा॰, धक ४, प्र॰ १३२ भवे भगवान । भगवन भभिवादये ।

मगवन् । एतदासनगास्यताम् ।

5 इदानीमतिथिविश्वेषलाभेन । हना शकुन्तले गच्छोटजम् पलिश्रमधंगुपहर

इद पादोदन भविष्यति । --- श्राभिक साथ सक १, पुरु १७

१० ঘ্ৰমিত হাত, গ্ৰন্ধ ই, দৃত ইন भवतीना सूनृतसैव विरा कृतमानिय्यम् । --- स्रिश्व झा०, सक १, पृ० १७

धर्माचरण और धर्मनिष्ठा के गर्भ मे श्रच्छे जन्म की कामना ही समाहित है। यह कामना मनुष्य को पापो से बचा कर सदानरण

करने की प्रेरसा देती है। वर्ण्य-युगमे कर्मवाद ग्रीर पुनर्जन्म मे बहुत रो लोगो कर्मवाद एव पनर्जन्म का ग्रटट विश्वास था। जीव की मरणी-

परान्त कर्मानुसार गति प्राप्त होती है-लोगो का यह विश्वास उन्हे सत्कर्म मे प्रवृत्त कराता था। 'मृच्छकटिक' मे चेट ग्रंपने दासत्व का कारए। पूर्वजन्म इत पाप हो भानता है। इसी कारए। वह इस जन्म मे शकार के पुन पुन कहने पर भी वसन्तसेना वध-स्प दुख्ख नहीं करता है । सम्भवत परलोक कोई ग्रतीकिक वस्तु न होकर, केवल पाप-पुण्य का परिस्ताम था ।

नीति को दो वर्गों मे विभाजित कियाजा सकता है—एक सामान्य नीति और वूसरी राजनीति। सामान्य नीति में नैतिक ग्रीर मानबोचित नीति भाजरण बाता है और राजनीति मे राजा

श्रीर उसकी शासन-व्यवस्था से सम्बद्ध नीति का समायेश होता है। विवेच्य-काल में लोगों का नैतिक स्तर बहुत ऊँचा था। सदाचार या शिष्ठ आवर्ण जीवन का बाधार-स्तम्भ या। दीन-

सामान्य नीति

दयालुता, विनञ्जता, सज्जनो का सत्कार, सच्चरित्रता, परोपकार, सरलता, उदा-रता. शीर्यं, धेर्यं, मिष्टमाप्या आदि

मानवीय गुरा सदाचार के भग थे। मानवीय गुणो से सम्पन्न व्यक्ति का जीवन ही वस्तुत दलाध्य समभा जाता था<sup>3</sup> । 'मृच्छकटिक' मे चाददत्त आदर्श सद्गुएगे का साकार रूप ही है<sup>8</sup>।

१ येनास्मि गर्भदासो निनिमित्तो भागधेयदोधै । श्रधिक च न केप्यामि तेनाकार्यं परिहरागि ॥ —मुच्छ०, ६ २४

२ शकार—क संपरलोक ? विट-सुकृतदुष्कृतस्य परिग्राम् । —-मुच्छक, सक ८, पृत ४१५

मुख्युव १४५

वही।

२४१

चारिन्य-रक्षा तत्कालीन नागरिको का परम धर्म था। मनुष्यो

को चरित्र की रक्षा की ग्रत्याधिक चिन्ता रहती थी। 'मृच्छकटिक' मे नास्दत्त वसन्तमेना के सुवर्णभाण्ड के चौरी चले जाने पर इस आशका से चरित्र

अत्यन्त दुखित होता है कि सब लोग उसके चरित पर शका करेंगे, वस्तु स्थिति को कोई नहीं देखेगा'। निर्मेल चरित्र मे उच्च कुल ही कारण होता था। अकुलीनो मे समस्त मानवीय गुए। विद्यमान होने पर भी उनका चरित्र निष्कलक नहीं माना जाता था?।

सस्य नैतिकता का मापदण्ड था । कठिन-से-कठिन विपत्ति मे भी सत्य का परित्याग नही किया जाता था। मसत्य-भाषण पाप माना जाता था। 'मृच्छकटिक' म बसन्त-

सेना के साभूपएं चोरी हो जाने पर सत्य विदूषक कहता है कि मैं इसके विषय म श्रसस्य प्रचार करूँगा। इस पर चाकदत्त उत्तर देता है कि मैं दरिव होने पर भी चरित्र को भ्रष्ट करने वाले असत्य का आश्रय नही

लेंगा ३। दान देने की प्रवृत्ति भी लौकिक और पारलौकिक कत्याए। का सायन मानी जाती थी। याचक की मिश्रलियत वस्तु प्रदान करना

ही दान का सर्वोच्च ग्रादर्श था। 'कर्ण-भार मे कर्ण जाह्मण रूप-भारी इन्द्र दान झीलता

की अपने शरीर की रक्षा करने वाला नयच तक दान मे दे देता है '। मृज्छकटिक' मे चारदत्त जैसा धनाडच व्यक्ति याचको को अभीष्ट धन प्रदान करते करते ग्रीप्मकाल के जल-पूर्ण तालाव के समान मन्त्र्यों की प्यास बुक्ता कर स्वय सुल जाता है।

2 मदि तानत् शतान्तेन प्रसामीऽर्येषु मे कृतः । किनिदानी नुजसेन चारित्रमणि दुपितम् ॥

थवि०. २ ४

भैदयेसाय्यनीयस्यामि पुनर्स्वासप्रतित्रियाम् । प्रमृत नाभिधास्यामि चारित्रक्रश्चनारणमः।। ---मन्द्रक, ३३५

-मञ्च०, ३२६

¥ कणंभार, १२१ 'n

गुच्छ०, १४६

प्रतिज्ञा-पालन तत्कालीन नैतिक आचरण का मूल मन्त्र था। लोग प्राणोत्सर्ग द्वारा भी बचन का निर्वाह करते थे। 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायस्। भे यौगन्धरायस्। श्रसह्य प्रतिज्ञा-पालन कष्टो को सहरी हुए भी राजमाता के समक्ष की गई स्वामी को मुक्ति दिलाने की

प्रतिज्ञा का पालन करता है। लोग न्यास ( घरोहर ) की सर्वात्मना रक्षा करते थे। 'मृब्छ-कटिक' मे चारुदत्त वसन्त्रसेना के सुवर्गभाण्ड की रक्षा के लिए दिन में वर्धमानक और रात्रि में मैत्रेय को

नियुक्त करता है<sup>2</sup>। साक्षियों की उप-न्यास-रक्षा स्थिति मे घरोहर लौटानी पडती थी। 'स्वप्नवासवदत्त' मे रैभ्य और धानी की साक्षि राजा मे वासवदत्ता

रूप धरोहर लौटाने का परामर्श देता है<sup>3</sup>।

चारसागत की रक्षा करना मानव का प्राथमिक कलंब्य था। वारणागत को, शतु होने पर भी सभय घटान किया जाता था । 'अभिपेक नाष्टक'

चारसामन-रक्षा मे राम बरुए में प्राये हुए विभीषरा गी, शत्रु का भ्राता होने पर भी सस्कारपूर्वक प्रवेश कराने के लिए कहते हैं '। माता-पिता, गुरुजन, आचार्य आदि से मिलते समय प्रसाम

या मिनादन करना लीकिक शिष्टाचार मामा जाता था। 'पचरात्र' मे उत्तर मगवान कृष्ण<sup>४</sup> भौर पिता

विराट से मिलते समय उन्हे सभिवादन द्यभिवादन करता है। प्रज्ञानवश श्रीभवादम न करने पर क्षमा याचना भी की जाती थी। अभिमन्यु अपने पुज्य धर्जन आदि

यदि शत्रुबलग्रस्तो राहणा चाहमा इव ।

मोचयामि न राजान नारिम यौग घरायण ॥ --- valatio 8 8 8 मुच्छ०, सक १, पुक हु३

साक्षिमन्यासो निर्यातियत्वय । इहात्रभवान् रैम्य खलभवती चाधिकरण

भविष्यति । —स्व० वा०, सक ६, पृ० २२६ कथ विभीयम् अरुणायत इति । बत्स लक्ष्मण् । गुच्छ, सत्कृत्य य प्रवेश्यता

विभीषसा । --- स्राधिक सक् ४, पूर्व ७३

५,६. भगवन् " मभिनादये । सात " धभिनादये । ---पनराज, प्रक २, ५० १०१

पितृजनों को ब्रज्ञानवश प्रणाम न करने के कारण अपने भ्रपराध के लिए क्षमा मांगता है।

परिवार एवं समाज में बन्धुत्व की भावना विद्यमान थी। भाई भाई के लिए, पिता पुत्र के लिए, पुत्र पिता के लिए, पत्नी पति के लिए, पति पत्नी के लिए, स्वामी सेयक के

लिए, सेवक स्वामी के लिए वडे-से-वडा बन्धस्व त्याग करने को तत्पर रहता था। 'मध्यम-

ब्यायोग' में ब्राह्मरण और उसके परिवारजनों का पारिवारिक स्नेह श्रौर त्याग-भावना घन्य है ै। रुमण्वाच् नामक मन्त्री ग्रपने स्वामी उदयन के दु.ख से ग्रत्यन्त व्यक्ति होता है। वह राजा के न लाने पर स्वय भी नही खाता और उसके साथ ऋहोंनश विलाप करता रहता है<sup>3</sup>।

लोग दूमरों द्वारा किये गये उपकार को विस्मृत नहीं करते थे श्रपितु प्रत्युपकार करने का प्रयत्न करते थे। 'बालचरित' में नन्दगोप वसदेव कृत हतनता

उपकारों के प्रत्युपकार के लिए उसके पुन कृप्ण की रक्षा करने को उद्यत हो जाता है ।

दूसरो का घन लोप्ठवत् समभा जाता था। मनुष्य परिहास में भी परद्रव्य का ग्रपहरण करने से उरते थे। 'प्रतिमा नाटक़' में अवदातिका परिहास परव्रदय-हरिड

में नेपच्य-रक्षिका रेवा के वल्कल उठा लाने के कारता अपने को धिक्कारती है और अपने कर्म को अनुवित

कहती है<sup>४</sup>। ग्रज्ञानस्तु मया पूर्व यद् भवान् नाभिवादित ।

--वंबरान, २.६८ तस्य पुतापराधस्य प्रसाद कर्त्महँसि ॥ र. मध्यम०, अव १,५० १२-१८

३. स्व० वा०, १.१४

V. यद्यस्ति भवत विचिन्मया पूर्वकृत भवेत् ।

—वा० प०, १.२० तस्य प्रस्यूपकारस्य कालस्ते सम्पागतः ॥ महो मत्याहितम् । परिहासेनापीम वल्लनमुपनयन्त्या ममैतावत् भयमासीत्, —प्रतिमा∘, मंक १, पृ∘ ६ कि पुनर्लोमेन परधनं हरतः ।

समाज मे नैतिकता का स्तर उन्नत होते हुए भी अनीति एव ययमं ना अभाव नही था। जनता में रिख्यत नेना, चोरी करना डाका डालना, शराब पीना जुझा खेलना, वेश्यागमन धादि धनैतिव

कृत्य निर्वाध रूप से प्रचलित थे। इसके अन्तर्गत राजकीय शासन-व्यवस्था, त्याम एव दण्ड-विधान , युद्ध एव सैन्य-व्यवस्था, राजा

की गृह एवं परराष्ट्र नीति छावि विषयो राजनी वि भी विवेचना भी जाती है। राजकीय-प्रशासन का मूल शान्ति और सुरक्षों में निहित था।

राजा का राज-दण्ड शान्ति की व्यवस्था करता था। राजा दण्ड-विघानानुसार दुष्टो श्रीर अपराधियो

राजनीति एव शासन- को दण्ड देकर तथा प्रजा के पारस्परिक विवादों को शान्त कर<sup>8</sup> राज्य में शान्ति ह्यसम्था स्थापित करता था। राजाका सुचार प्रबन्ध ही प्रजानो अनीति पर चलने एव प्रधमचिर्ण से बचाता था।

'प्रभिज्ञानशाकु-तल' मे राजा दुष्यन्त की समुचित शासन-नीति के फारएा ही प्रजा में निकृष्ट-से-निकृष्ट वर्ण भी कुमार्ग का मनुसरए

नहीं करता है ।

राजकीय शासन प्रबन्ध की सम्यक् प्रगति के लिए राजा के पास अनेक प्रत्युत्वन्नमति मधी होते थे। ये राजा के तन्त्रावाप अर्थात् स्वराष्ट्र एव परराष्ट्र नीति की

चिन्ता करते थे। इनकी एक परिपद् मन्त्रि-परिचर् होती थी जो अमारय परिषव' मा 'मनि-परिषद्' कहलाती थी। राजा शासन से सम्बद्ध विषयो पर परिषद्

से परामर्श करता था। मित्र परिपद विविध राजकीय विषयों

नियमयसि विमागप्रस्थितानात्तदण्ड । 

वही । त्रशमयसि विवादम् । — सभि० सा०, ५ प

न कश्चिद्रश्चीनामप्यमपकृष्टीऽपि भजते । — अभि० शाः. ५१०

मद्रचनादमात्यपरिषद जुहि । —-विकार धन ४, पृरु २४२ Y.

६ तेन हि मतिपरियद ब्रुहि । -- भास०, धक ४, पृ० ३४२ ---सभि०, झक १, पृ० व (e

तदगाध्यवगैरा सह सम्च्य गन्तव्यम् ।

पर नीति निर्धारित कर ग्रन्तिम निर्णय के लिए राजा के पास भेजती यी । राजा का निर्णंय ही सर्वसम्मति से स्वीकार्य एव मान्य होता था ।

नागरिको की समस्याओं और विवादों के प्रशमन तया दुर्वि-नीता को दण्ड देने के लिए राजकीय न्यायालय होते थे। प्रधिकरण-मण्डप के प्रधानाधिकारियों म न्यायाधीहा.

थेप्ठी और कायस्य परिगणित थे<sup>3</sup>। रयाय-विधान ये तीनो ग्रधिकारी मिल कर न्याय करते थे । स्यायाधीश राजा का वैतनिक सेवक होना या । उसे राजा इच्छा-

नुमार हटा सकता था । 'मृच्युकटिक' मे शकार ग्रविकरिएक को कहता है कि यदि मेरा प्रभियोग नहीं सुना गया तो राजा से कह कर सुन्हे निकलवा दूंगा । भ्यायाधीश ग्राजकल के अज के समान होता था। न्यायालय मे निष्पक्ष न्याय के निमित्त यह भावश्यक था कि न्यायाधीश शास्त्री का ज्ञाता, वादी प्रतिवादी के कपट-व्यवहार की समभने मे दक्ष, बक्ता, कोध-रहित, मित्र, शत्रु और पुनादि स्वजन के लिए समद्रप्टा, दुर्वलो का पालक, शठी का शासक, धर्मलोभी, तत्वज्ञ तथा राजा के कोष का निवासक हो ।

श्रेष्ठी वर्तमान न्यायालयो के ज्यूरर' (Juror) या 'ग्रसेसर' (Assessor) ने समान कहा जा सकता है। कायस्थ सम्भवत न्याया-लय का पेशवार होता था। यह कार्यार्थी का व्यवहार लिखता थार।

श्रमाध्यो विज्ञापयति —विवर्भगतमनुष्ठेयमनुष्ठितमभूत् । देवस्य ताबदभिभ्राय ş —माल**ः म**कः ४ पृ० ३४१ थौत्मि॰दानीति । प्रमारमो विशापमनि-- कल्यासी देवस्य युद्धि मिश्रपरिषदोऽप्येतदेव दशनम । ą

<sup>-</sup> मास० धक ४ प्र०३४२

<sup>(</sup>तत प्रविशति श्रष्टिकायस्यादिपरिवृतोऽधिकरिएक ।) 3

<sup>—</sup>मुक्द वाक १ प्र ४४४ रिन दृश्यते सम व्यवहार ? यदि न दृश्यने तदायुक्त राजान पालक ٧ भगिनीपति विकाप्य भगिनी मातर च विज्ञाप्य एतमधिकरिएक दूरीकृत्य श्रेत्र ग्राममधिकरशिक स्थापयिष्यामि । — मृच्छ०, ग्रक ६ ५० ४६१

मच्छक, १ ४ į. ٤ यदाय प्राज्ञापयनि । ग्राय । लिखितम् । — मृच्छ ग्रक ६ ए० ४६६

न्यायालय मे अधिकरिएक के समक्षवादी तथा प्रतिवादी दोनो के वयान लिये जाते थे। साक्षियो की गवाहियाँ भी ली जाती थी।

न्यायाचीरा जिसे चाहे उसे व्यवहार के लिए बुलवा सकता था'। फासी ब्रादि के जटिल ब्रिजियोगों में न्यायाधीश का निर्णय अन्तिम

स्वीकृति के लिए राजा के पास भेज दिया जाता थार।

राजा को अधिकरिएक का निर्णय रह करने ना पूर्ण अधि-कार था। मुच्छकटिक' में राजा पालक न्यायाधीश द्वारा चाहदत्त के लिए निर्धारित किये गये राष्ट्र-निष्कासन दण्ड को भग कर उसके लिए प्रारायण्ड की बाजा देता है । राजा स्वय भी धर्मांसन पर बैठ कर पौर कार्यों का अवेक्षण करता था और उचित निर्णय देता था<sup>प</sup>।

दण्ड-विधान मानव धर्म-शास्त्र पर बाधारित था। न्यायाधीश मनुनिदिण्ट दण्ड नियमो के अनुसार ही दण्ड का विधान करते थे<sup>थ</sup>।

अपराधी के लिए दण्ड के नियमी की धाराएँ धत्यन्त कठोर थी। धपराधी की दण्ड-प्रसाली वठोर-से-कठोर सजा दी जाती थी।

दण्ड-विधान के बनुसार रत्नों की चोरी के अपराध का दण्ड मृत्यु या । हत्या के भपराधी के लिए भी प्रारादण्ड नियत या। 'मृच्छ कटिक' मे शकार न्यायाधीश से चारुदत्त को प्राण-दण्ड से दण्डित

करने के लिए कहता है । बाह्मण के लिए हत्या का अपराध करने पर भी प्राण-दण्ड विजित था। उसे अक्षत विभव सहित राष्ट्र से

१ भन्न धौधनक<sup>ा</sup> वस<sup>\*</sup>तसेनामातरमनुदेजमन्ता**ह्य**ः

— मृच्छ०, स्रक ६, पृ० ४६६ भार्यं नाच्दरा । निश्वये पय प्रमाश्वन् दोये तु राजा ।

—-मुच्छ, सक ८, पृ० ५१५ मुच्छ॰, झक १, ५० ४१६ बेत्रवति मद्भवचनादमास्यपिशुन अहि । चिरश्रबोधान्न सभावितमस्याभिर्य

धर्मासनमध्यासित्म् । — सभि काा अर ६, पूर १०७

भय हि पातकी विभो न वध्यो मनुखबीत्। —मृच्छ०, ६३६

एप यमसदन प्रविश्य प्रतिनिवृत्त । --प्रिश्न शा॰, सक ६ पृ॰ १००

भ्रुणुत भ्रुणुत भट्टारका । एतेन मारिता एतेनैव सशयशिख्य । एतस्य o दरिद्र चारदत्तस्य शारीरी दण्डी घायताम । -- मण्डल, धक ६ पुरु ११३ निकासित कर दिया जाता या"।

मृत्यु-इण्ट से दण्डित व्यक्ति नो सूली पर चनाना , कुत्तों से नुषवाना<sup>3</sup>, रस्सी ने बाँच कर वींचना<sup>डे</sup> ग्रीर आरे से विखाना<sup>४</sup>, गुप्र-विन वना कर मरवाना<sup>इ</sup> ग्रादि प्राणापहारक दण्ड-विधियाँ प्रचलित थीं।

वध्य पुरुष को वध से पूर्व करवीर पुष्पो की माला पहनायी जाती थी?। उसके मम्पूर्ण गरीर पर लाल करत के यापे मारे जाने थे और निल, तप्हुल मादि के पिष्ट कूर्ण का मवलपन किया जाना या<sup>=</sup> ।

प्राण-दण्ड देने का कार्य चाण्डाल करते थे। वे अपराधी को बच्य-पटह बजाते हुए स्मशान तक ले जाते थे। वे मार्ग मे घोषणा-स्यलों पर श्रपराधों के परिचय के साय उसके अपराध एव दण्ड की घोपएग करते जाते थे भीर दूसरे व्यक्तियों को वैसा अपराध न करने ने लिए सायधान करते जाते ये<sup>6</sup>।

वध्य पुरुष कभी कभी भाग्यवदा मुक्त भी कर दिये जाते थे। कभी कोई साबुजन घन देकर बच्य पुरुष को छुडा सेता या, कभी राजपुत्र के जन्म के उपलक्ष्य में अपराधिया को मुक्त कर दिया जाता था, कमी हाथी बन्धन-स्तम्म तीड कर भाग जाता था जिससे घवरा-हुट में बध्य जन मुक्त हो जाता था भीर कभी राज्य-परिवर्तन के कारण बध्य व्यक्तियों को मुक्ति प्रदान कर दी जाती थी<sup>६०</sup>।

कैश पदड कर पैरों से मारने के भ्रपराध म भ्रपराधी को न्यायालय की ग्रीर से चत्रग दण्ड मस्तक मुण्डन, कशाधात, धन-

१ मुच्छ०, ६३६ २,३,४,८ मृच्छ०, १० १४ --- मभि॰ सा॰, भक ६, पृ० स्ट गुझबलिमं विप्यसि ।

७ मृद्यु , १०२

६ मृष्ठ०, १०५

६ यथा च एप उदगीनो डिण्डिमजन्द पटहाना च खूबते तथा तर्कयानि दरिद्रचादरत्त बध्यस्याने नीयन इति । -- मृच्छ०, सक १०, पृ० १४५ १० मृच्द्र०, श्रद १०, प्र० १४६

हरए। ग्रीर बहिष्करण से दण्डित किया जाता था । ।

ब्रपराधी के ब्रक्षियोग निर्श्य के लिए विष पान, सलिल प्रवेश

तुलारोहरा ग्रमिन प्रवेश आदि परीक्षाएँ भी प्रचलित धी?। आलोच्य युग मे माम्राज्य की सुदृढता एव स्थिरता के लिए

राजा की ओर से राज्य की आन्तरिक एव बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था की जाती साम्राज्य रक्षा

थी। सुरक्षां के साधनों में सेना नगर

रक्षक गुप्तचर प्राकार एव दुर्ग प्रमुख थे। देशी-विदेशी शत्रुको से राज्य की रक्षा के लिए राजा के पास

अक्षीहिग्गी रोना होती थी। राजा अपनी विशाल रोना के बल पर

गतुस्रो को पराभूत करने का गर्वकरता मेना था<sup>3</sup> । 'स्वप्नवासंबदत' मे राजा प्रधीत

सेना के विस्तार के कारण ही महासेन कहलाता है'। राजा की विजय प्राप्ति का बाधार विशाल बाहिनी ही नहीं घी अपितु सैनिकों को राजा के प्रति अनन्य निद्धा एवं अस्ति

भी थी। राज भनित से विरहित सेना स्त्री के समान थी ।

सेना चतुरनिशी होती थी। उसके गल सेना सन्ध सेना, रथी स्रोर पदाति—ये चार सन सेर। गल भारतीय सेना के मुख्य स्तम्भ पे मौर सम्भवत राज्याधिकारियो द्वारा

सेंग्य-स्ववस्था

सुरक्षित वनो से पकड कर लाये जाते र्थे। कतिपय वन तो हस्तियो के प्रापुय भह त्वया विश्वस्ता शानाध्ति कुवन्-महस्रावेरीयु वृहीत्वा पादेन ताब्ति ।

\* तद् शृणु रे । अधिकरणमध्ये यदिते चतुरम न कल्पमामि चण न भवामि

वीरकः। — मुच्छ० सक ६ पृण्डेश्रे AFEC EXT

मस्ति ममेंबादगाशीहिएगीथससमुदय । --दू० दा० प्रव १ पृ० ६ महित उज्जीयाया राजा प्रचीन नाम । तस्य बलपरिमाणनिवृत नामपेप

---स्वव वाठ, यह २ पुरु ७० महासेन इति । ध्यक्त यल बहु च तस्य न भैक्काय भश्यातवीरपृश्य च न चात्रत्तम् ।

ब्याज ततः संबंधिनन्दति युद्धकाल संव हि सँ यमनुरागमृत कलतम् ॥

तथा हरत्यदवरचपदानीनि मामकानि विजयागानि सानदानि ।

के कारए। 'नागवन' १ ही कहलाने लगे थे। अश्व भी गज के समान ही उपयोगी थे। कम्बोज देश के दूतगामी श्रश्व युद्ध की इप्टि से उरकृष्ट समभे जाते थे । अश्व सेना 'अववारोहसीय' कहलाती थी । रथ भी समर-साधन के रूप मे प्रमुक्त होते थे । सेना मे पदाति सैनिको को सस्या सब से अधिक होती थी। इसका समर्थन 'शुननीति' से भी होता है<sup>४</sup>। बण्यं नाटको म 'नौका'<sup>६</sup> के उल्लेख से जल-सैन्य या सहज हो सनुमान विया जा सकता है। पाष्ट्यीं भी सेना का एक प्रकार था ।

सुविधा की हप्टि से सम्पूर्ण सेना को छीटे-छोटे समूहो मे विभक्त कर दिया जाता या और सैनिको की गराना के लिए एक पुस्तक या सूची बना ली जाती बीम। सेना का अधिपति सेनापति । या वलाध्यक्ष <sup>५</sup>°कहलाता या । वह सेना मे सैनिको की नियुक्ति करता था और समराभियान के लिए सेना को तैयार करता था"।

युद्ध म वीरता प्रदर्शित करने वाले योद्धाया को सैनिक-सम्मान प्रदान किया जाता था। उनके रख-कोशलादि वीर-कृत्य प्रस्तक मे

चय वेणुबनाश्रितेषु गहनेषु नागवन इब प्रयाता स्वामी प्रागेव सम्भाविष — प्रतिज्ञा॰, सन १, प्र॰ ७

तब्य १ - क्लंबार, ११६ मान्यवास्वीजजातम् । ₹

प्रतिज्ञा॰, शक १, प्र०१३

ą ¥

रचमानम शीध्रम् में स्लाच्य प्राप्ती रखातिथि । तौषविद्य शर्रभींच्य जेप्यामीरयमनीरम ।। जगदीराचन्द्र जोशी प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, पृ० ३८७

¥ श्रीकासने विषय । ٤

--- श्रमि० शा॰, श्रम ६, पृ० १२१

७ स्व० वा०, ५१२

त्रमान्निवेदयमानासु सेनासु वृत्यपरिष्रहेषु परीक्ष्यमाखेषु पुस्तकप्रामासात् कुनश्चिदप्यविज्ञायमानी हो बनोकसी गृहीती। --अभि०, प्रक ४, पृ० ६२

मुच्छ०, धर ६, पु० ३४३ 3

१० ग्राभिक, अन ४, प्रक ६७

११. भो भो वलाध्यक्ष । सन्ताहमाजापय वानस्वाहिनीम् ।

श्रक्ति किये जाते थे° । युद्ध मे आहत वीरो की वेदना के निवारणार्षे उनको समुन्ति सम्मान एव पुरस्कार प्रदान किया जाता था<sup>र</sup> ।

सैनिक वेदाशूपा या 'समरपरिच्छद'<sup>3</sup> सैन्य-सज्जा का प्रमुख ग्रग था। वर्म <sup>४</sup> (कवच), गोघा<sup>४</sup> (ज्याधातवारस), ग्रगुलियास्<sup>६</sup>, छत्र<sup>8</sup>, ग्रीर सस्तास्त्र<sup>5</sup> समरवेस में समा-

क्षत्र , आर जस्तरित न रागरात न रागर सैग्य-सज्जा विष्ट थे। शस्त्रास्त्रो मे घनुप-वाणः , तलवार"॰, चर्म" (वाण), तोमर<sup>1</sup>र, कुन्त<sup>13</sup>, शक्ति<sup>14</sup>, प्रास<sup>14</sup>, परसु<sup>14</sup>, मिण्डियाल<sup>19</sup>, शुल्<sup>18</sup>, मूसल<sup>18</sup>, मुद्गर<sup>2</sup>॰, वराहकर्ष्<sup>2</sup>॰, कसुप<sup>2</sup>॰, कर्पण्<sup>3</sup>, शकु<sup>14</sup>,

त्रासिगदा<sup>२४</sup>, कुलिदा<sup>२६</sup> मादि का निरुपए हुमा है।

संन्य-सज्जा में ध्वजाएँ भीर रएए-बाब भी समाविष्ट थे। ध्वजाएँ व पान-विष्ठ भीर सैनिक-विष्ठ के रव में ममुक्त होती थी। राजाओ और सेना-सायको का अपना-प्रवना विशिष्ट ध्वज-विष्ठ होती थी। राजाओ और सेना-सायको का अपना-प्रवना विशिष्ट ध्वज-विष्ठ होता था। विज्ञानीबेरीयों में राजा पुरूरवा का रय-ध्वज हरिण से प्रक्रित है १ है। 'कणभार' में दुर्योक्षन की रय-प्रवाक का विष्ठ होयी

१ रष्टुपरिस्प दाना योषपुरपासा कर्मासि पुस्तकमारोपयि पुमार ।
——पचरान, सन २, पृ० ७६
२ ताहितस्य हि योषस्य दलाभनीयेन नर्मणा ॥

र ताडतस्य हि याघरय देखामनायन कमणा । धनानान्तरिता पूत्रा नाशयत्येव वेदनाम् ॥ — पत्रराप्त, २२६

कर्णभार शक १, पृ० ४

४१६ पचरात्र, २२ ७ पचरात्र, शक२ गृ० ५५

अप्रवास, भकर पृत्यूय - सम्बद्धाः

म पचरात्र,२२

प्तदस्तावापसहित दारासमम् ।
 निदाननिममसङ्ग्र ।

१० निधितविमलसङ्गः ॥ ११ कनकरचिनवर्मव्यप्रवामाग्रहस्तः ।

१२-२५ करमग, शन १, पृष्ट २४ २६ सभिष्ट साम्र ७ २६

२७ पचरात्र, ३१८

र⊏ वही, २११

२६ एप जन्नसित इरिएक्नेतस्तस्य राज्यं सीमदत्ती रयो दूरमण ।

----विक्रo, धर १, ५० १x७

—विक•, सक ४, पू॰ २४<sup>9</sup>

--- प्रतिज्ञा ०, ४ रे

---प्रतिज्ञाण, ४.३

हैं'। युद्ध में पताना सब से ग्रागे फहराती हुई चलती थीरे। शत्रु पक्ष द्वारा ध्वजा का विद्ध होना पराजय का लक्ष्मण माना जाता था श्रीर उसके लिए शान्ति-कर्म किया जाता था3 ।

सेना का प्रयाण तथा युद्ध की प्रगति रखवाद्यो की सहकारिता में होती थी। युद्ध के आरम्भ और अवसान की सुचना के लिए साम-रिक वाद्य-यन्त्र बजाये जाते थे । रएावाद्यो मे शख<sup>४</sup>, दुन्दुभि<sup>४</sup>, पटह<sup>६</sup>, भेरी<sup>®</sup> और तुर्यं <sup>क</sup> का सकेत मिलता है।

राज्य की म्रान्सरिक सुब्यवस्या एव शान्सि के लिए नगर की सुरक्षा अनिवायं थी। पुरवासियों के जीवन एवं सम्पत्ति की रक्षा के

नगर-एक्षक

लिए राजा की भीर से अनेक मगर-रक्षक एव प्रहरी 10 नियुक्त थे। नगर-

रक्षको को बाधुनिक पुलिस-वर्मचारियो का ही एक रूप माना जा सकता है। ये रक्षव-गरा कोर, डाक्र या श्रन्य अपराधी को राजा के समक्ष उपस्थित करते थे और उसे अपराध की लघुता गुरुता के अनुकूल दण्ड दिलवाते थे। 'अभिज्ञानगानुन्तल' मे रक्षक-गण भीवर को राजा की भ्रंगूठी चुराने के भपराध के कारण राजा के समक्ष ले जाते हैं "। नगर-रक्षकों का श्रथिपति 'नागरिक' 13 कहलाता था। 'नागरिक' का अधिकार प्राय राजस्यालक की प्राप्त

```
कर्णमार, १३
२. मभि० सा०, १.३२
```

थचरात्र, ३ १०

४,५ शलदुन्दुभयभ्य नि शब्दा । सेनानिनादपटहरबनशखनादै <sup>1</sup> - कर्सभार, सक १, प्र० १२ ---द्र० बा०, १ ५

एना नदन्ति गम्भीर भेमंस्थिदिवसद्मनाम् । ---धभि०, ६ १= 5 विकः ४१२

3

٤

--- मुच्छ०, सक २, पृ० १७१ पद सब्द इव । मानाम रक्षिण । रे दोवारिका । मन्नमत्ता स्वकेषु स्वकेषु गुल्मस्यानेषु भवत । १०

---मृच्ठ०, स्रक्त ६, पृ० ३२७

भगुलीयकदर्शनमस्य विमर्शयितव्यम् । राजकुलमेव गण्डाम । 88 —ग्रामिक शाक, यक ६, ५० ६८

तत प्रविश्वति नागरिक वयाल परवाद्वद्वपुरुपमादाय रक्षिको न ।

--- श्रमि॰ शा॰, सक ६, प॰ ६७

होता था<sup>9</sup> । नागरिक के प्रतिरिक्त प्रधान रक्षाधिकारियों में 'तन्त्रित सेनापति' और 'बलपति' ना उल्लेख भी मिलता है। नगर में प्रव्यवस्था या पद्यन्त का सन्देह होने पर समस्त रक्षाधिकारियों प्रौर प्रहरियों को सावधान कर दिया जाता था<sup>4</sup>। मार्ग में प्राते-जाने वाले पिक्सों और गाडिक्यों की तलाठी ली जाती थीं ।

योल पायका झार गाडिया का तलाशा ला जाता था र ।

ये भी राज्य की सुरक्षा में उपादेय थे। इनको दूत छोर गुप्तचर,
इन दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। दूत राजकीय सन्देश-

सर

वाहक का कार्य करते थे। ये एक राजा का सन्देश दूसरे राजा के पास ले जाते

वे बीर दो राजाओं से परस्पर सिध करवाने का प्रयत्न करते थे। 'दूबचटोत्क्व' में घटोत्क्व, 'दूबवाक्य' में भगवान कृष्ण, इसी वर्ग के चर है। दूब प्रवध्य होते थे। दूबों का वह किसी भी परिस्थिति में नहीं किया जाता या। 'दूबपटोत्क्व' में दुर्योघन घटोत्क्व के कठोर वचन कहने पर भी दूब होने के कारण उसका वस्म नहीं करता हैं"

गुप्तचर छप्त वेशा में रह कर शाबु-पक्ष के रहस्यों का उद्धाटन करते ये तथा गुप्त सूचनाएँ देने का कार्य करते थे। 'प्रतिज्ञायोगन्ध-रायण' में योगन्धरायण वसन्तक तथा कमजबानु कमशा उन्मतक, डिण्डिक और श्रमणक का वेप धारण कर शाबु के नगर में रहते हैं और गहु के गुप्त चुत्तान्तों को जात कर राजा उदयन को वस्थन से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न करते हैं । 'सर्चताहन' से गुप्तचर के लिए

१ सभि० शांव, सक ६, ४० ६७

२ मुच्छ०, झक६, पृ०३४३

**३** वही, शक ६, पृ० ३४३

४. रे दीवारिका <sup>।</sup> अधमत्ता स्वकेषु स्वकेषु-गुरगस्थानेषु भवत ।

<sup>---</sup> मुच्छ०, धक ६, पू० १२७ ५ यरे पुरस्तात् प्रतोलीदारे तिष्ठ स्त, स्वमिष पश्चिमे, स्वमिष दक्षिणी,

व्यमित सत्तरे। —मुच्छ०, श्रक ६, पृ० ३१४

६ मुच्छ०, ६१२

दूत ललु सवाम् आशी न त्व युद्धार्थमागत । गृहीत्वा गच्छ सन्देश न यस दूत घातका ।)

<sup>—-</sup>दूरु घ०, १४८

ष. प्रतिज्ञा**ः, सक** ३ (सम्पूर्णः)

निष्कल मही माना जाता था । समर प्रतिकार का स्थान, बीरता को कसीटी, अभिमान का मचल स्थल, शुरों के शौर्य की नींब, बीरों के योग्य शायन-भूमि, प्राह्मों का यज्ञ और क्षत्रियों का स्वर्ग-सोपान माना जाना था ।

युढों स्रोर राजनीतिक संघर्षों के निचारल के लिये विरोधी शक्तियों एवं शतु राजाओं में पारस्परिक सन्वि मावस्पक यी। सन्यि में कुछ शर्ते रक्षी जाती थीं जो दोनों

सिंध राजाओं को स्वीकार करनी पड़ती थी। सिंधनत शर्त प्रभान्य होने पर युद्ध प्रवस्यम्भावी था। 'मालिकाधिमिन' में राजा वैदर्भ प्रश्लिम से सिंध स्वापित करने के लिए प्रमिमित्र के पात पत्र में सिंध की शर्ते निक्त कर फेजना हैं ।

इतोऽपि लगते स्वर्ग जिल्ला बुलयते यशः ।
 जभ बहमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ।।

चभ बहुमते सोके नास्ति निष्कत्तता रहे। —कर्णभार, १.१२ २. वैरस्मागतन बलस्य निकय मानप्रतिष्ठागृहं

२. वेरस्मायतम् बलस्य निकण् मानप्रतिष्ठागृह

युद्धेष्वपसरसां स्वयंवरसभा शौर्यप्रतिष्ठां नृगाम् । • राज्ञा पश्चिमकानवीरशयनं प्रागाधिहीमकत्

संप्राप्ता रखस्त्रमाथमपदं राजां नम सनमम् ॥ 🕳 ऊष्टभग, १,४

हे. मालव, धक १, पुरु २६७

## आर्थिक जीवन एव कला-कौशल

'सर्वे गुणा काचनमाश्रयन्ते' ने अनुसार समाज की प्रगति एव

विकास का मूल-मत्र आधिक एव भौतिक समृद्धि में निहिस है। जहाँ धन है वही जम्मित है। मालोज्य नाटकों में समाज सामाम्यतया समृद्ध रूप में अतिक्षित किया गया है। इससे यह अपुमान करना कि समाज में निर्धनता और दारिद्ध का नाम भी नहीं था, उजित नहोंगा, किन्तु अधिकाश जमता कला-कृशन एव क्यवसायमित्त भी। राज्य से उसे पर्याच्य प्रोत्साहन मिलता था। अत वह उस घोषण से मुक्त थी जो ग्राय हु अन्यादिक्य का कारण्य वनता है। सम्मवत हुनत थी जो ग्राय हु अनुमान आस्तित्य हिंसा कि आर्थिक वैमय वर्ग विहान ही था। याचकों का सस्तित्व किसी-निर्कास सम्बद्ध निर्मात कि जनकी समान्यत्त स्थित को ही योत्स वह भी नहां था। याचकों का ही धोतक है। यथि यह भी कहां था सकता है है सम्भवत कुछ लोगों का ध्यवसाय भी था, फिर भी किसी-निर्मित्ती सोमा तक उसके पीछे निहित अभाव की विस्तृत नहीं किया भा सकता है।

पन-सम्रह की पहासि की सुचना देवा है। वे लोग उचित मबसर पर घन-ितराए भी करते थे, किन्तु दान मे अपवा राजा की सहायता रूप में। उनके ऊँचे-ऊँच जवनी में चैमव का आबार और विलास की मीडा होती थी। यही द्वारा वेदयाओं के पावासी की होती थी। ये प्रातादों से निसी भी प्रकार कम नहीं होते थे। भौतिक विलास की प्राय मभी सामग्री उनमें होती थी। सगीत, नृत्य, पित्र मार्दि कलाएँ विलास-कैतियों को समुचित साहबर्स प्रदान करती थी। यसन्तरोना का स्वर्गोषम प्रासाद एव मनन्त बैभव दवके प्रत्यक्ष प्रमास है।

भारत कृषि प्रधान देश है अतएव यहाँ के लोग अधिकाशत कृषि पर ही निर्भव रहते रहे है। पर्याप्त भूमि और चारा होने से पश्-पालन भी यहाँ के लोगो का एक व्यव

जीविकोपार्जन के साधन साय रहा है। यहां के लोग क्र्शल एव अनुभवी व्यापारी भी रहे है। प्राचीन ग्रन्थों में प्रमाण मिलते हैं कि यहाँ के व्यापारी समुद्र पार के देशों से भी व्यापार करते थे। यहाँ की अनेक वस्तुओं को अनेक देशों मे ग्रन्छ। बाजार मिला हुआ। था। बहुत सी आयश्यक वस्तुएँ देश के लिए तैयार की जाती थी। इससे यहाँ के कला कौशल स्रीर उद्योग-

धन्धी को वडा प्रोत्साहन मिलता था। यह महा जा जुका है कि देशवासिया के जीविकीपार्जन का प्रमुख साधन सदा से कृषि रहा है। कृषि के लिए वर्षा का प्राधिवय या अभाव अहितकर होता है। वर्ष का

कृषि आधिक्य भी कृषि को नष्ट करता है और उसके अभाव "से भी कृषि नष्ट होती है। दोनो स्थितियो की 'बलि' से अकाल पहता है जिससे देश की आधिक व्यवस्था को वडा धक्का पहुँचता है। राज योप झकाल के कारगो मे प्रमुख माना जाता था। उत्पादन व्यवस्था को ठीक रखने के लिए थीज<sup>2</sup>, भूमि और सिचाई की आवश्यकता जैसी माज है वैसी ही घालोच्य काल में भी थी। उसर भूमि को प्राय छोड दिया जाता था क्योंकि उसमें योगा बीज नष्ट हो जाता है?। कृषि के उत्पादनों में यन ,

शालि<sup>४</sup>, कलम<sup>६</sup>, नीवार<sup>७</sup>, तिल<sup>६</sup> और ईरक<sup>६</sup> का विशेष महस्त्र था।

٤ मुख्यक, १०२६ २ थही झर म प्र ३६८

एतदिदाना मादमागिया अपरतेत्र पतित इव यीजमृष्टिनिष्क्रमम् । 3 ----मुच्छा०, धका ८, पूर ३६६

٧ चारदत्त, १ २

× मच्छव, १०२६

٤

वही, भक्ष ४, पूर २३२ द्यभिन द्यान, धक २, प्र०३६ U

वही, सर ३, पृ० ४६

यही, धव ६, पृ० १२४

कृषि के पश्चात् जनता का प्रधान व्यवसाय व्यापार था। यह भी मार्थिक समृद्धि का प्रमुख सावन था। व्यापारी वरिएज्', श्रेप्टी , नैगम<sup>3</sup> आदि अभिवाओं से सम्बोधित

ध्यापार एवं वाशिज्य किये जाते थे। मुख्य रूप से युवक लोग व्यापार का ब्यावसायिक रूप ग्रहण करते थे। युवा क्यापारी देशान्तरीं में व्यापार करने जाते थे झीर अपने वैभव का विस्तार करते थे । व्यापारियों के पृथक् पृथक् समुदाय करता प्रभाव स्थाप व । व्यापाटया क प्रवस्तुष्ट्रभर लड्डाम होते थे जिनका प्रधान सार्ववाहर कहलाता या। किनी-किसी नगर में व्यापारियों का बाहुच्य होता या। यही कारण है कि उज्जयिनी नगर का एक माग श्रेटिजल्वर कहलाने लगा या। सामान्यतः विश्व लोग घनाधिवय के कारण लोगी एवं पूर्व होते थे, किन्तु कुछ उसके प्रपथाद भी होते थे जो जनसा के कल्याण में प्रपनी

उपवन, मन्दिर, तालाव, क्रुप एवं यज्ञस्तम्भ इसके ज्वलन्त उदा-हरण हैं "। देशीय व्यापार के साथ-साथ वैदेशिक व्यापार भी प्रचलित था। घीन, कम्योज आदि देशों से तत्कालीन भारत का व्यापारिक सम्बन्ध या । चीन से 'चीनांशुक' धीर कम्बोज से उतम घोड़ों ' का

सम्पत्ति ब्यय करते थे। चारुदत्त द्वारा वनवाये गये भवन, विहार,

भायात होता था।

१. विशिजयुवा वा काम्यते ।

--- मृच्छ०, संक २, पृ**० ६७** 

२. श्रीप्रचलको । ६. विकः, ४.१३ -- वारुदत्त, सक ४, पृ० १११

 किमनेकनगरामिगमनजनित्तविभवविस्तारो विख्जियुवा । —-मुक्टर, संक २, पृ० ६७

 समुद्रव्यवहारी सार्थवाही धनमित्रो नाम !- समिक दााक, संक ६, पृक १२१ —मृब्छ∘, संक २, पृ० १२६ स यान् श्रीप्रचरवरे प्रतिवनति ।

चारदत्त, ३.७

 येन तावन् पुरस्थाननविहारारामवेबकुनवडागक्पयूपैरसकृता नगरी उज्ज----मृण्द्र०, संस १, पृ० ५०४ विनी ।

---चनि॰ शा॰, १.३२ चीनांशकमित्र केतोः ।

रै॰. सकतनुपतिमान्यं मान्यकाम्बोजजातम् । गपदि बहसहसं वाजिनां ते ददामि ॥

-कर्णभार, १.१६

```
संस्कृत नाटको में समाज-चित्रस
```

२६ व

ब्यापार स्थल और जल, दोनो मार्गों से होता था। देशीय व्यापार प्रायः स्थल-मार्गं से होता था और बैदेशिक सामुद्रिक मार्गी से। जल-मार्गीय व्यापार नौका और जलपोती द्वारा होता था। 'मभिज्ञानशाकुम्तल' में घनमित्र मामक समूद्र-व्यापारी का उल्लेख हुमा है जो नौका द्वारा ही वैदेशिक व्यापार करता था"।

मुद्राएँ विनिमय के काम में बाती थी । उस समय सिक्को का प्रचलन था। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में मत्री का धन-गणना में निरत रहना भूदा-प्रचलन का ही प्रमाण है ।

वस्तुओं का विनिमय भी मुद्राभी द्वारा क्रय-विक्रय के साधन होता था । सुबएाँ<sup>3</sup>, निष्क<sup>४</sup>, कार्पा-पर्ण ", मोडि " मौर मापक " प्रचलित मुद्राएँ थी। राघा कुमुद मुकर्जी के मनुसार 'सुवर्ए' एक सोने का सिक्का था जिसका तील द० रती पार । सहते हैं कि निष्क भी सुवर्ष के बराबर होता था । 'बीहें से बीस कोड़ो का सूच्य द्योतित होता था '। कार्यपण ताझ-निर्मित प्रशु या पैसा था '। नापक भी उस समय प्रचलित मुद्रा-विरोप की संज्ञायी।

समद्रव्यवहारी सार्चवाही धनमित्री नाम । भौव्यसने विपन्न. ।

-- धिश्व चा ०, धक ६, पृ ० १२१

२. मर्पेजातस्य गरानाबहुलतयैव मेव पौरवार्यमवेक्षितम् ।

-- मिश्र शार, मक ६, प्र १२० -- प्रतिज्ञाक, पक १, प्रक १७ ३. भवर्णदातप्रदानेन ।

V. निरक्तातस्वर्णपरिमाणम् । —मास॰, सक्त ४, पु॰ ३३६

४ मृज्यु०, इ.४० ६. वही।

७. दक्षिए। मापका अविष्यन्ति । —शास्त्रस, सक् १, ५० ७

प. एन मॉफ इम्पीरियत युनिटी घाँछ इण्डिया, १० ६०७

ह. गायत्रीदेवी वर्मा : बालिदास के ग्रन्थों पर ग्राधारित सत्पालीन भारतीय

सस्यति, १० २६७ <o. 'योडिविदातिकमदेशो गोडे प्रसिद्ध ' ---पृष्वीधर

११. 'कापिये ताझिने चरा'-- प्रस्पमरः ।

रसक<sup>9</sup> स्नादि उल्लेखनीय हैं।

राजकीय आय का प्रमुख साघन कर था। प्रजा से ग्राय का षष्टाश कर-रूप मे लिया जाताँ या। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' मे कचुकी

राजकीय ग्राय

राजा दुष्यस्त को, भ्राय का छठा भाग लेने के कारण 'पष्ठाशवृत्ति' व कहता है।

कर के अतिरिक्त नि सन्तान धनिको की सम्पत्ति उनकी मृत्युके पश्चात् राजकीय सम्पत्ति हो जाती थी। 'स्रभिज्ञानबाकुन्तल' मे धनमित्र नामक नि सन्तान व्यापारी की सम्पत्ति उराकी मुख्यु के परवाद राजनामी होने बाली की? मैगम सौर सार्यवाही द्वारा भी राजकोव की तवत् समुद्रि होती रहती थी<sup>र</sup>। विजित राजामो से माग्त हाथी, घोडे सैनिक और बहुसूल्य जवाहरात भी विजेता तृपति की द्याय के साधन थे। 'मालविकाग्मिमित्र' मे वीरसेन विदर्भराज को युद्ध में जीत कर अनेक अमूल्य रहन, हाथी, घोडे, कलाकार और परिजन राजा अग्निमित्र के पास उपहार-रूप में भेजता है ।

बायागमन और यासायात के प्रमुख साधन वाहम (पग्नु) भीर यान थे। पशुक्रो मे भश्व, बलीवर्द और हस्ती परिवहन के मुख्य साधन थे। अस्य सवारी और युद्ध दोनों के

धावातमन एव यातायात काम श्राता था । 'मुच्छकटिक' मे न्याया-धीश वीरक को योडे पर जीरागियान

जाने को यहता है । कर्एभार' से कर्ए ब्राह्मरए-रूप धारी इन्द्र को युद्ध मे बीरता दिखाने वाले हजारी घोडे देने को कहता है"। प्रश्वी का उपयोग घरयन्त प्राचीन काल से होता चला श्रामा है। कौटिल्य

भनभवत उचिवेलातिकमे चिकित्सका दोधमुदाहरिन ।

— माला , इसक २ पुरु २६६

₹ ঘমিত লাত, খখ श्रमिक साव, धन ६ पुरु १२१ Э

¥ धाराहारोपनयनपरा नैगमा सानुमान ।

—विक्र∘, ४१३ र माल**ः भग** १ प० ३३६

मुच्छ० सक ६ प्र० ४६३

क्यभार ११६

ने गिति की दृष्टि से घोडों ने तीन भेद निये हैं—तीक्णास्त, प्रदास्त्र और मदास्त्र और प्रयोग की दृष्टि में दो भेद —युद्ध-सम्बन्धी प्रस्त्र और सवारी के श्रद्दव । बलीबर्द भाष गाडी में जोते लाते से? । हांची पतिकों एव राजस्त्रों की सवारी के उपयोग में भाता या । वमन्तसेत के समित स्वारी के नाम के लिए खुण्डमोडन हस्ती था? । हांथी चतु-रिगिसी सेना का एक अग भी होना था? ।

यानो के अन्तर्गन रव ( दिविना दें, घाटी दें, घोटक अनिटका ), क्लाप्यायन है, प्रवहण और नीवा " का उल्लेग हुआ है। रव राजा में की अनुस सवारी भी। भवारी के अतिरिक्त युद्ध में भी दनना प्रमोग किया जाता था। वस्तुत यह चतुर्रीगयी बाहिनी का प्रमुख नग था"। निविका महिलामो की मनारी थी। इसे कहार कर्ये पर उठा कर से जाते थे"। इसके चारो और क्लुक व वर्षा क्या रहता था"। राजकत्याएँ प्राथ विविका में वेट कर उठान और मनिदर आदि को जाती थी"। इसके चारो और क्लुक व वर्षा क्या मिटर आदि को जाती थी"। इसके चारो और क्लुक व वर्षा क्या क्या क्या की स्वित्य आदि को जाती थी"। श्रेष्टक अनुस्ति की स्वापी श्रीका में वेट कर उठान और मनिदर आदि को जाती थी"। श्रीकर से वेट कर उठान और मार्ची होती होगी। धोटक स्व

```
    एत नस्यरण्जुबदुका बलीववाँ । — सूक्द्रक, सक ६, पृक ६२६
```

४ चोचनासम् रयः। — वर्णसार, सक् १, पृ०६

५ तन पुरपस्कन्यपरिवर्तनस्थितामा शिविकामाम् ।

— प्रतिज्ञा०, भक्त ६, पू० ६४ ६. एता स्वयंगरूम शहरीस । — प्रदान, १,६

६. एता चत्रघरस्य शरटीम् । —पवरात्र, १.६

७ भोटक्सकटिकामारुहा । —पचराव, सक २, पृ० ११

 च स्कल्पदायनमारोध्य । —प्रतिना०, धक १, पृ० २८ ६ मृन्द्र०, सक ४, पृ० १६२

र॰ यमिकशाक, शक ६, पृष्ट १२१

१९ स्वच्या०, सङ्घ, पृण्टरः ११. स्वच्या०, सङ्घ, पृण्टरः

१२. तत पुरुवस्कन्यपरिवर्तनस्थिताया विजिनामा प्रकास हृष्टा सा राजदारिका।

१६ अपनातकचुकाया । वायकाया । ——आनंताक, सर १४. प्रतिहाक, सक ३, पृक्ष ६३-४

२ मुक्ट०, शक् २, पृ० १३० १. हस्यदवरयपदानीनि विजयागानि सन्तद्वानि ।

२. हस्त्यस्वर्थपदानामि विश्वयायान सन्तदान

<sup>&</sup>lt;del>— स्व</del>० था∘, मक ४, पृ० १७०

शकटिका 'तींगे' का प्राचीन रूप मानी जा सकती है। स्कन्यययन पुरुषों के कन्यो पर छोया जाने बाला यान या। 'श्रवहर्ए' बैलों द्वारा शीची जाने वाली गाडी यीं'। यह जन-साधारण के यातायात का साधन थी। जलयान के रूप मे जीका प्रचलित थी। सामुद्रिक व्यापार मे इसका उपयोग होता थारे।

युग-विशेष की सास्कृतिक उन्तति में कला का विशेष योग रहता है। क्लास्मक उन्नति ही सांस्कृ-कला-कोञ्चल तिक प्रगति का साधार-स्तम्म है।

कला का जीयन से घमिष्ठ सम्बन्ध है। कला जीवन की पूरक है और जीवन कला का पूरक है। कला जीवनमय है और जीवन

कलामय है। कला जीवन में लालिस जीयन में कला का स्थान को जन्म देशी है और वह स्वयं जीवन

जीयन में कला का स्थान को जन्म देती है और वह स्वयं जीवन से प्रेरणा एव चेतना ग्रहण करती है। कला और जीवन के मिणकांचन समीम से ही कलाकार सजीव कलाकृति गा सर्जन करता है। जिस कलाकृति में जीवन का समीवेग कलाकृति गा सर्जन करता है। जिस कलाकृति में जीवन का समीवेग

नहीं होना है, यह निष्प्राण सी प्रतीत होती है ।

कलांचार कला के याध्यम से स्पन्थित जीवन की झिंध्यिति करता है। हमारे साथ जीवन का लिता एव परिष्कृत रूप क्या ही प्रस्तुत करती है। जिस मकार गारीरिक पुष्टि के लिए झन्न पोपक उपकरण है, उसी प्रकार मानीरिक पुष्टि के तिए कला पौष्टिन तत्त्व का नार्स करती है। वह मानव के हृदयमत आवो का मूर्तीकरण है। कात्र हृदय को महुष्य को महुष्य को महुष्य काती है। यह मानव के ह्या करती है और मनुष्य को महुष्य काती है। यह मानव के ह्या करती है और मनुष्य को महुष्य काती है।

किमी भी देश की कला देश के सामाजिक स्वरूप को प्रभिव्यक्त करती है। विविध कला-कृतियों धौर कला में सामाजिक गौरव कलात्मक प्रतिमाधी में तल्कालीन समाज

की मन्निहिति के उत्कर्ष ग्रीर श्रपतर्प का चित्र प्रति-विभ्वित होता है। किसी भी देश मी

१. मृष्यः, सक ६, पु॰ इरह

२. समुद्रस्पवहारी खार्थमाही धनमित्री नाम नौभ्यसने विपन्नः।

<sup>—</sup>भ्रमि॰ गा॰, धक ६, पृ॰ १२१

कला के घ्रयलोकन-मात्र से ही वहाँ के तहूँ शीय मनुष्यो की मनोचृत्तियो, मनोभावी और सामाजिक जीवन-मद्भति का परिचय मिल सकता है। गुप्तकालीन कला अपने समय की सामाजिक एव सास्कृतिक उन्नति का ज्वलन्त प्रतीक वनी हुई है और सम्भवत दूर मविष्य में भी उस का गुण-गान होता रहेगा।

वैसे तो कला एक अक्षण्ड धांगव्यक्ति है ग्रीर उसका यिभाजन किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है, तयापि सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से उसके दो भेद—उपयोगी कला और

कला का वर्गोकरण लखित कला — किये जाते हैं। उपयोगे कलाकां वर्गोकरण लखित कला—किये जाते हैं। उपयोगे कलाकों से मनुष्य की बाह्य मानदय-कताओं की पूर्ति होती है। बात जनको सख्या प्रनन्त है। विस्त-कला हुदय के ब्राह्मादक की स्वनानुरन्जन के लिए प्रसिक्त उपारेय है। इसके पान भेद हैं—१ साहित्य-कला, २ रागीत-कला, ३ विज-कला, ४ मूर्ति-कला ब्रीर ५ बास्यु-कला। इनमे प्रयम वो गतिशोल कलाएँ हैं ब्रीर देश तीन हिच्य कलाएँ मानी जाती हैं।

साहित्य मूलत एक है लेकिन क्षि-भेद और रूप-भेद हैं। साहित्य-कला ये रूप देवराल-कम से परिवर्तित होते रहते हैं। इनका म्राकलन और विभाजन

प्राप्त साहित्य के धाधार पर होता है।

प्राचीच्य ग्रुम में साहित्य-कला पर्याप्त उन्नत एव विकतित भी। वर्ष नाटकों में इसके लिए फाल्यें चहन्द का प्रयोग हुआ है। काव्य के गया ग्रुथ दोनों हो करों में विद्वानों को समान गरित भी। विद्वानों की समान गरित भी। विद्वानों की समान गरित भी। विद्वानों की समान गरित को प्रसार के लिए गुन्दर काव्य-प्ता करने का प्रयास नरता था। विदेच्य नाटकतारों के नाटक तत्कालीन काव्य-कला की प्रोदेता एवं रक्षमानमाना के ज्वानत प्रतीक हैं। सङ्कत्ता हाता लितपद वाले छन्द की रचना 3 और उर्वजी का अर्थगरिमा से पूर्ण

१ वासुदेव उपाच्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, माग २, पू॰ २६१ २ म चापि काज्य नवमिरयमयम् । —माल०, १२

३ तेन भारमन उप यासपूर्व शित्तय तायल्ललितपदवन्यनम् ॥

<sup>—-</sup> धनि० सा०, भक ३, पु० ४८

प्रसाय-पत्र' जनता को साहित्यिक अभिकृष्टि का ही द्योतन करते हैं। समाज मे विद्वानो श्रौर साहित्यकारो का श्रतीव सम्मान था।

राजा लोग स्वय विद्वाम और काव्य-श्रेमी होते थे भौर वे कोविद विद्वानो का सम्मान करते थे। उनके साहित्यकारों का सम्मान आश्रय में रस-भाव की व्यजना में निपरा

कवि रहते थेर। समय-समय पर विद्रद्-गोष्ठियाँ और साहित्यिक सम्मेलन भी होते थे। सम्मेलन मे नवोदित साहित्यकारों की कृतियों का विद्वत्परिपद के समक्ष परीक्षण होता था3। ग्रन्थों की परीक्षा नवीन एवं पुरानी के आधार पर नहीं होती थी, अपित जो कृति अपने काव्यमय ग्रुणो से विद्वानी को मान-सिक सन्तोष प्रदान करती थी, वही सर्वसम्मति से सर्वोत्कृष्ट घोषित की जाती थी '। 'मालविकारिनमित्र' में सुत्रधार के कथन से ऐसा ज्ञात होता है कि विद्वत्परिपद् भास, सौमित्न, कविपुत्रादि प्राचीन कवियों के प्रवन्धों को छोड़ कर नवोदित साहित्यकार कालियास के

'मालविकान्तिमित्र' नाटक को ही उत्कृष्ट सिद्ध करती है<sup>8</sup> । ललित-कलाओं में संगीत का दितीय स्थान है। यह देव विद्या होने के कारण 'गान्धवं-विद्या' वा 'गान्धवं-वेद' की प्रशिधा से भी विश्ववित है। वास्त्यायन ने 'कामसत्र' मे

सर्गीत का ज्ञान प्रत्येक नागरिक के लिए सगीत-कला श्रावश्यक वतलाया है । मतुंहरि ने तो यहाँ तक कह दिया है कि जो मनुष्य साहित्य, संगीत भीर कला से

विकल, २१३ 8

इय हि रसभाविदीपदीक्षागृरीविकमादित्यस्याभिक्पभृविष्ठापरिपद् । --- धिंग पार, धक १, ५० ४

श्रमि० शा०, शक १, प० ४

पुरास्त्रितियोव न साधु सर्वे न चापि काव्य नविषयवद्यम । ¥

सन्त परीक्यान्यतरद्भजन्ते मूढ परश्रत्ययनेयवृद्धि ॥ --माल०, १२ मा सावत । प्रधितयरामा भाससीमिल्लककविष्वादीना प्रबन्धाननिकम्य वर्तमानकवे कासिदासस्य कियाया थय बहुमान ।

—माल०, यक १, ४० २६१

दर्पंपरयेन दायाद्यागती गा धर्वो नेद । ---प्रतिज्ञा०, धर २, प्र० ६३

वामुदेव उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, भाग २, पृ० ३१७

विहीन है, यह पूँछ रहित साक्षात् पशु है।

नात्स्यायन के अनुसार सगीत के तीन मुख्य मेद माने जाते हैं — १ गीत, २ वाच और ३ नृत्य। ये तीनी सगीत की त्रमी कहलाते हैं और परस्पर अन्योन्यात्रित हैं।

बण्यं नाटका में उल्लिखित स्वरसकम<sup>9</sup>, मूर्च्छना<sup>2</sup>, लय<sup>3</sup>, उपगान<sup>4</sup>, वर्णपरिचय<sup>4</sup>, आदि मगीत के पारिमापिक शब्दा से ऐसा

प्रतीत होता है कि गीत के दो भेद गीत प्रचलित ये — एक दास्त्रीय-गीत और

त्वरा लोक गीत। दोना प्रकार के गीतों के लिए पृथक पृथक नाम नहां थे। गाहनीय-गीत चर्चाल ताम नहां थे। गाहनीय-गीत चर्चाल लिए पृथक पृथक नाम नहां थे। गाहनीय-गीत चर्चाल लियमा का गावड होते थे। इसके गायन के रामय तगीत जाहनो निवस ना मुद्द तगीत र राम जाता था। 'मृण्डकटिक' म आयं रेपिल का मुद्द तगीत स्वन्द, मायम एक कामल गीत गाहनीय गीत का ही जवाहरण हैं। दिनेस प्रमने गीन में स्वर-प्रम्परा, वर्णों के आरोह एव अवरोह हेला-स्वयन और लित्तराणोंच्यारण का पूर्णे ध्यान रखता हैं। वाहनीय-गीता के विपरीत कोक-गीत गाहनीय नियम से परे स्वर ताल से मुक्त होते थे। ये अरसवा और पर्वों पर गाये जाते थे। पचरान' में राजा विराट के जन्मदिन के उत्सव पर स्ती-पुष्प थूव गाते एव गावत हैं।

8

₹

मृच्छ०, ३ ५

वही ।

३ मात्त∗, २ व

भालविवा—[उपगान कृत्वा चतुष्पदवस्तु गायि] ।

<sup>—</sup>मानक, बद्ध २, पृष्ट ५६२

५ जाने तत्रमक्ती इसपदिका वण-परिचय करोतीति ।

<sup>—</sup>ग्रमि॰ सा॰, बहु १, पृ॰ ७६

६ मृच्छ०,३४

<sup>⊯</sup> मृच्छ०,३१ = सध्ठगीतमः।

<sup>—-</sup>पचरात्र, अक २, प्र० ४४

प्राचीन नाट्यशास्त्रियो ने वाद्य-पन्त्रो के माकार के प्राधार पर चार भेद किये हैं — १ तत, २ सुपिर, ३ अवनद्ध और ४ धन।

तन्त्रीवाद्य को 'ततवाद्य' कहते है। छिद्रो में फंक भारने से ध्वनित होने वाले अर्थात् वाद्य-यन्त्र रन्ध्रमय बाद्यो का नाम 'सुपिर' है। चमडे

से मढे हुए वाद्य 'भवनद्ध' कहलाते है । कास्यादि यातुत्रो से निर्मित बाद्य 'धन' ग्रमिधा रो ग्रगिहित होते हैं । 'सगीत-रत्नाकर' ॰ मे लक्ष्या-नुसार बाद्यो का—शुष्क, गीतानुग, नृत्यानुग, हयानुग, यह चतुर्विष विभाजन किया गया है किन्तु झाकारगत वर्गीकरण ही सर्वमान्य है।

इस वर्ग के अन्तर्गत वीला र नामक वाद्य समाविष्ट है। इसमै नादौरपत्ति के लिए स्नायु की सूक्य सन्त्रियां होती थी, इसलिए इसे 'तन्त्री' भी कहा जाता था। यह तरका

तन्त्री-वाद्य

लीन युग में सर्वेप्रिय मधुर सगीत वाद्य (Musical Instrument) मानी जाती थी।

इसे झक मे रल कर नली के परामर्श से बजाया जाता था । वीएगा-वादन स्वान्त सुखाय भीर परहिताय बोनो ही रूपो में उपयोगी था। 'कला कला के लिए' (Art for Art's sake) की भावना से तो वीएग का प्रस्यास किया ही जाता था, साथ ही यह कला जीवन ने लिए' के सिद्धान्त को भी सार्थक करती थी। 'मृच्छ्वटिक' में इसे सनैव प्रशासात्मक विशेषणो से विश्रूषित किया गया है। इसे उत्कण्टितो का मनोनुकूल मित्र, विरहातुरजन की प्रेयसी तथा प्रेमियो के रागवर्धन

ŧ पुनरचतुर्विप बाद्य यक्ष्ये लक्ष्यामुसारत । शुष्य गीतानुम नृत्यानुममन्यद् द्वयानुमम् ।

<sup>---</sup>स्रातिन-रामसकर (क) उत्तराया वैतालिक्या सकाशे बीएग शिक्षित् मारदीया गतासीत् । ₹

<sup>—</sup> प्रतिज्ञाः , श्रवः २ प्र**०** ४२

<sup>(</sup>य) व्यक्त स्वयं वीला वादयति । -- स्रविक, सक ३, प्रक ६७ उच्च हम्यै सशिरदास्य जाला 3

स्तात्रीनाद श्रुवते सानुनादस् ।

<sup>---</sup> मविष, ३५

इमनपरा ईम्बा प्रण्यकुपिता कामिनोव धनारीपिता करस्हपरामर्गेन सावते बीखा । —मुच्छ०, सक ४, पृ० २३४

का हेतु बताया गया है<sup>9</sup> । कारुदत इसे विना समुद्र से निकाला हुम्रा रत्न कह कर इसके विषय मे अत्युक्ति ही कर जाता है<sup>9</sup> । यह गजबसी-करण कर्म मे भी बहुत सहायक थी। यह मधुर भकार से, मन्त्रविद्या के सहरा, मदमत्त हायियों के हृदयों को भी वशीभूत कर लेती थीं । वीएा के इन अलौकिक गुराों के कारएा ही याज्ञवल्वय वीएाा-वादन-नान की मोक्ष प्राप्ति में सहायक बताते हैं।

नारद रचित कहे जाने वाले मुद्रित ग्रन्य 'सगीत मक्**रन्द**' भीर 'मगीत-दामोदर'र मे बीणा के कमरा उतीस व उन्तीस प्रकारा का चल्लेख है। प्राजकल प्रचलित सितार, सारगी वा बायलिन, तानपरा भादि वारा-तन्त्री के ही विविध रूप हैं।

१ उत्कण्डिनस्य हृदयानुगुग्रा वयस्या

सनेतने चिरयति प्रवरो विनोद । सस्यापमा प्रियतमा विरहातुराणा

रक्तस्य रागगरिवद्धिकर प्रमोद ।।

---सुच्छ०, ३३ र चाद० - महो । सामु, सामु रिश्तेन गीतम् । बीएम हि नाम ससमुद्रो

रियत रत्नम् । —मुच्द्र०, सक ३, ५० १४७ ş भूनिसुन्तमभुरा स्वमावरवना वरणमुनोस्त्रितिवाप्रपृष्टतः त्री ।

म्हपिबचनगत्रव मानविद्या गजहदमानि बनाइकी करोनि ।।

—पेतिचा० २१२ ¥ के॰ वामुदव शास्त्री सगीत-तास्त्र, वाद्याय्याय, पृ० २५५

कच्छपी, बुध्विका, चित्रा, बहुन्ती, परिवादिनी, ज्या, घोषावती, ज्यष्टा, नवुली, महती, बैप्लुबी, बाह्यी, रीडी कुर्मी, शवली, सारस्वती, क्लिरी,

मैराधी, योपना । ---के॰ वासुदेव शास्त्री सगीत-शास्त्र, वाबाध्याय, पृ॰ २५४

६ झसावणी, ब्रह्मबीएम, वि नरी, लघुकिन्नरी, विपची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, घोषवती असा, हस्तिका कुञ्जिका, कुर्मी, सारगी, परिवादनी त्रिश्चवी, शत्तचाडी, तकुलोष्टी बसवी, झौदुम्बरी, पिनाकी नि शक, पुष्टल, गदावारणहरूना, चंद्र, मधुस्यन्दी, कालियास, स्वरमणमल भीर घोष १

गायत्री वर्षा कालिदास के ग्रायों पर माधारित तत्कालीन

भारतीय संस्ट्रति, पृ० ३३५

इस वर्ग मे शख, शृङ्क तथा वशी के समस्त प्रकार आते हैं। विवेच्य नाटको मे बरा', शख श्रीर तूर्य नाम के सुपिर वाद्यों का

उल्लेख हुआ है। इनमे प्रथम ग्रथीत् वश, सुधिर-बाद्य वांसुरी या वशी को कहते हैं। 'बांसुरी', वेगु" आवनूस की लकडी, हामी दांत,

चन्द्रन, रक्तचन्द्रन, सोहे कासे, चाँदी या सोने से बनामी जा सकती है। यह प्रत्थि, भेद और बाए से रहित रहती है। इसका रध प्रमाए छोटी अंगुली का व्यास है। यह रध्य पूरी बाँसुरी मे एक सा रहता है। शिरोभाग बन्द रहतो है। " अय-भाग में एक या दी अपुल छोड कर उसके पीछे बदरी बीज के समान परिधि वाले झाठ रध होते है। इन माठ में से पहला रध वायु के निर्ममन या बाहर निक-लने के लिए नियत है। शेप सात रध सात स्वरो के लिए निर्धारित है '।' बौसुरी की ध्वनि मधुकर विस्त के समान श्रुति-मधुर होती धी<sup>ध</sup>।

शखभी सुपिर वाद्य है। यह मागलिक दाद्य था। उत्सयो तथा धार्मिक अनुष्ठानो मे इसका उपयोग किया जाता था । देवालयो मे देव पूजन के समय और ररगागरण में उत्साहवर्धन के लिए इसकी र्फुका जाता था। इसका निर्धाप इतना गम्भीर होता था कि उससे हाथियो तक का चित्त उद्श्रमित हो जाता था"। तूर्यभी शख जैसा र्फुका जाने वाला बार्यथा। यह एक प्रकार की तुरही वी जी मागलिक श्रवसरो पर प्रयुक्त होती थी।

<sup>(</sup>सगतादवलीनय), अये । नम मृदग एते नशा ।

<sup>—</sup> मुच्छ०, सक ३, पृ० १६७

गजपतिवित्तीदभ्रमणार्थं देवनुत्तपु स्थापिता शखद्नदुगय ।

<sup>—</sup>अतिजाल, अन ३, पृ० €१

राघो मादितमधुकरगीतै , बाद्यमानै परभुनतुर्ये । — विक्रः , ४ १२ के • बागुदेव शास्त्री सगीत-शास्त्र वाद्याध्याय, पृ० २६७

मधुकरविश्तमधुर बाद्यते बया । -- मृच्छ० धक ४, ५० २३४ ६७ प्रतिज्ञाल, शक ३, प्रल ६१

मगवत परण जपाध्याय कालिदास का भारत, भाग २, पृ० १४

इस वर्ग के अन्तर्गत मुरज³, पुष्कर³, मृदग³, पराव¥ दर्दुर४, ढङ्का , पटह , डिण्डिम , दुन्दुभि , करटक , , इन दस बाद्य-यन्त्रो का उल्नेख हुआ है। मुरज, पुष्कर एव मृदग नृत्य के अवसर पर पदो की द्रतगति ग्रवमद्ध-वाद्य

के लिए बजाये जाते थे। इनके मेघगर्जन सहरा गम्भीर निर्घोष ११ के ताल पर नर्तन मे एक समा वैध जाता था। पटह का उपयोग राज्याभिषेक १२ देवार्चन १३ ग्रादि धार्मिक कृत्यो ग्रौर युद्धादि 💜 के अवसर पर किया जाता था। दुन्दुभि एक प्रकार का वडा ढोल होता था<sup>१४</sup>। यह मुख्यत रएावाद्य थाँ<sup>१६</sup>। इन प्रवनद्व वाद्यो मे दुन्दुभि के प्रतिरिक्त शेप सब वाच ढोल के विविध प्रकार थे।

इसके अन्तगत कास्यताल १७ और घटे १ व का उल्लेख प्राप्त होता है। ब्राजकल सत्सग, कीत्तन ब्रादि से

घन दाद्य बजाये जाने बाले मजीरे कास्यताल ही हैं।

₹ माल०, १२२ ₹ वही, १२१

ŧ नेपय्ये मृदगव्यनि ।

Y मुच्छ०, सक ३ पू० १६७

वही।

Ę मुच्छ० २ ५

ĸ,

3

U प्रतिमा० ७३ 5

धा॰ च॰, ३३ क्यभार शक १ ५० १२

80 मुच्छ०, ६ २३

११ हुनोऽपि चतुर्थे प्रकोष्ठे मुबतिकरताडितनलघरा इव गम्भीर नदि गृहगा।

----गुच्छ०, शक ४, पृ० २३५ 12 प्रतिमा०, ७३ **₹**₹

प्रतिशा०, ३४

१४ द्रवाव १५

84 T भगवतवारस उपाच्याय कालिदास का भारत भाग २, पृ० १४

१६ वही। १७ क्षीरापुण्या इव गगनात्तारका निपतन्ति कास्यताला ।

—मुच्छ० धर ४, पृ० २३/

—-माल**्, बक** १ प्र० २७६

₹ 5 ग्रदयो गया भद्रबत्या घण्टाहिता ।

—प्रतिज्ञा०, शक ४, गृ० १०७

यह भी सगीत का एक अविभाज्य अग है। यह सगीत का जीवन-रूप है। गुरूप से सगीत मे चेदतर मृत्य ग्रीर स्पन्दन का सवार, होता है। नुस् विचिद्धत सगीत निप्पन्द और जड है।

नृत्य प्रमुखत दो प्रकार के होते हैं—एक लोक-नृत्य भीर दूसरा

शास्त्रीय-नृत्य । लोक तृत्य शास्त्रीय नाट्य नियमी और रीतियो से निर्मुक्त जनता का, जनता के लिए गिर्मित नृत्य के प्रकार श्रीर जनता द्वारा निर्मित मृत्य है । इसमे

मानव-समाज की खादिम मनोद्वत्तियाँ
भीर माननाएँ, उनके हुएँ-उल्लास, जोक-विगाद, प्रेम ईप्याँ, भय-धाशका, धूएा ग्लानि, धारकर्य विस्मय, मिक-निवृत्ति मादि भाव भएने सरस श्रीर विशुद्ध रूप में प्रकाशित होते हैं। इसमें सम्य-जीवन का कृत्रिय प्राडम्बर खोर प्रचमय जीवन की क्यटूपूर्ण प्रवचना का बहुत कम धाभास मिलता है। इसके विपरीत चारकीय दुर्व्य संगीत-शास्त्र या दृष्य धास्त्र के कठोर नियमों में माबद्ध होता है। इसमें भागिक, वाचिक खादि धानित्य एक नियस शैली या पद्धति पर धाधा रित होते हैं।

नारको में लोक-नुत्य के बप में हर्क्वीसक् "नृत्य का घौर मास्त्रीय-नृत्य के स्प में द्विकि " नृत्यों का उठलेख हुमा है। हर्क्वीसक-नृत्य रास-नृत्य का ही एक रूप था। वार्षिक या सामाजिक कोजेरिस हो घौरे सेलो में मुस्रिजित नर नारी सम्मितित होकर धानन्य में भूमते हु हुए नगाडी की ताल पर हत हृत्य का प्रवर्ता करते थे। 'बालचिति'।' में रा-विरों सन्त्रों से बिस्नुमित गोप नन्याएँ मीक्टपण के मार्थ हुंजीसन्त्र नृत्य करती है। सानर ने भडती-नृत मो हुंजीयक नहा है, जिसमे एम पुरुष नेता में रूप में स्त्रो सडती ने बीच में नाचता है। इसे ही गोन में 'मरस्वती वण्डाकरण से 'हुंजीसक-नृत्य नहा गया है। होतीस घर स

र पीपमुल्ति, वनमाने, बन्द्ररेशे मृत्यालि पात्रवानस्वानुरूतीत्व स्त्रीयण नृतव प उपयुज्यतायु । — या० प०, प्रक रे पृ० ४७ र प्राचरप्रमुत्तीहेस झिलक नाम नाट्यमन्तरेश बीहसी मानविनेति नाट्या

भाषरप्रकृताहरा छातव नाम नाट्यमन्तरेण वाह्या मालाववात गाट्या पार्वमार्वेगरादान प्रष्टुम्। —माला०, धक १ पृ० २६२ भाषमन्दामोदरोऽस्मिन् युन्दावने वोषव यवानि सह स्तनीयन नाम

का उद्गम यूनानी 'हलीशियन' (हलीशियन फिस्ट्री डास) से ईनवी सन् के आम-पास हुआ जान पडता है। फुप्ण के रास-मृत्य और हलीसक-मृत्य, इन दोनो की परम्पराएँ किसी समय एक-दूसरे से सम्बन्धित हो गई होगी ।

शास्त्रीय नृत्य भैली पर आधारित 'छलिक'-नृत्य प्रयोग मे स्राने वाले मृत्यों में सबसे कठिन समभा जाता था। इसका प्राधार र्शिमण्ठारचित चतुष्पद याचार पद वालागीत माना जाता वा। भाष्यकार काट्टेवम की व्याख्या के अनुसार 'छलिक' वह नृत्य है जिसम नर्तक दूसरे के रूप का अनुकरण करता हुआ अपने मनोभावो का प्रकटीकरण करता है ।

सगीत मानय हृदय के अन्तर्सम की कोमल भाव-तरग है जो जब-तय गीत और वादन के माध्यम से या घग-सचालन और मुख

की भाव भिगमा द्वारा फूट पडती है। स्वीतायोजन के भवसर उसकी श्रीभव्यक्ति के लिए देश काल

का कोई बन्धन स्वीकार्य नही है। आनन्द, श्राह्माद, शोक, बेदना श्रादि भाव चरमस्थिति पर पहुच कर स्वत

सगीत को मुखरित कर देते हैं। यद्यपि सगीत लहरी निर्वाध और देश-काल से म्रगरिन्डिन है तथापि समाज मे कुछ विशेष पर्व, उत्सव या सार्वजनिक समारोह होते हैं जिनमें सगीत का साजी सामान के साथ मायोजन चनिवाय भीर बावश्यक होता है।

विवेच्य नाटककारी के ग्रुग ने भी,राजकीय उत्सवी श्रीर लोकी-हमदो के प्रवसर पर सगीत ग्रायीजन का विशेष प्रचलन था। 'माल-विकारिनमित्र' नाटक स वसस्तोत्सव के सबसर पर 'नाटकाभिनव'

१ बास्देवरार्ण श्रग्रवाल हर्यंचरित एक सास्कृतिक प्रध्ययम प्र० ३३ २ देव ' शमिष्ठामा कृति चसुच्यादीत्य खुलिक दृष्प्रयोज्यमुदाहरित । — गालक, **धक** १ प्रक २७६

'तद् एतञ्बन्तित नाम साक्षात् यत मिनीयते । व्यपदेशपरावत स्वाभिप्राय प्रकाशकम्' ।

---भगवनधरण उपाध्याय कालिदास का भारत भाग २, ५० १५ ४ श्रमिहित्रोऽस्मि विद्वत्परिषदा कालिदासग्रचितवस्तु मालविकाप्रिमित्र नाम नाटकम् श्रहिमाननन्त्रोरमन् प्रयोक्तव्यमिति । तदारभ्यता संगीतम् ।

—शास०, धक १, प्र० २६१

के साथ-साथ परिपद् में सरसता-सनार के लिए संगीत की भी रचना की जाती है। भास के 'वालचरित' में गोपजन 'इन्द्रमंत्र' नामक तोकोत्सन पर अपने धन्तर के आद्भाद को व्यवत करने के लिए 'इस्लीसक' दृत्य' का आयोजन करते हैं। पाज्याभिषेक समारोह पर भी ऐसा ही आयोजन किया गया। इक्के अतिरिक्त कशी-मभी संगीत-प्रतियोगिताएँ भी होती थी जिनमें कलाकार अपने अपने कला-नैपुष्प का प्रदर्शन करते थे। 'वालविकालिमत्र' नाटक के प्रयस्प प्रक मान्ट्यावार गणवास और हरतक की पारस्परिक प्रतिस्पर्यावा एक इसी प्रकार की संगीत प्रतियोगिता का आयोजन होता है जिसमें दोने प्रसाद की शिष्यारों जिना का सायोजन होता है जिसमें दोने प्रसादा की शिष्यारों जपना स्विमनय-वातुयं प्रदर्शित करती है'। '

प्रेक्षागृह<sup>3</sup>, समीतसाला<sup>र</sup> मौर नाट्याचार्यं पादि शब्दो के बहुल प्रयोग से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जनसाचारण भौर राज-

परिवार में सगीत-कला के प्रति भतीव कलाकारों का सम्मान प्रभिन्नि थी। कला उस भूग में प्रपने

चरमोस्कर्य पर थी। राज्य में राजकीय सगीत-शालाएं भीर प्रेक्षागृह भी थे जहां नाट्यवाहल में पाराणत नाट्या-चार्य सगीत की शिक्षा हेते थे। इन माल्यामार्थों को राज्ञ की भौर से बेतत में मिलता था। इन नाट्याचार्यों से प्राय विद्या मा योग्यता दियमक विवाद भी खिट जाता था विसका निर्णय राज-गमा में राजा के रामक होता था । आचार्यों के शाल्यज्ञान का परीक्षाण उनके विषयों के क्ला-चातुर्यं के शालार पर होता था । निर्णायक राजा

—मास॰, घव १, प्र॰ २६३

१ वा॰ प॰, सक ३, वृ॰ ४४-४=

२ माल •, धक १-२ (सम्पूर्ण)

३ तैन हि द्वाविष धर्गी प्रेशाधिहे सगीतरचना कृत्वा तत्रमवतो कृत प्रेययतम् ।
——मातः , प्रकः १, ५० २७६

४. तत्तावत्सगीतदास्या गण्दामि । —मास०, **पद १,** ५० २६२

६ মাল০, মক ই, দূ০ ২৬४ ৬ মাল০, ই.ই০

मुदिशिनोऽपि सर्वे उपदेशदर्शनेन निष्णातो भवति ।

<sup>—</sup>मात•, घक १, पृ॰ २७७

या एक ब्यक्ति हो नहीं होता था, धपिजु दो-तीन विद्वानों को निर्ण्य का प्रिक्तिर प्रदान किया जाता था नयोकि एक व्यपित चाहे कितना ही बडा पिछत क्यों न हो, यदि एकाकी निर्ण्य देता है तो उत्तके निर्ण्य में भूल का होना बहुत समद है । निर्ण्यक के लिए निष्पक्ष होना खनिवार्य था । कला प्रदर्शन के पदचात् जो कलाकार सर्व-सम्मित से सर्वश्रेट घोषित होता था उसे सम्भवत. पारितोपिक या पूरस्कार भी प्रदान किया जाता था ।

काव्य-कला के समान चित्र-कला भी श्रान्तरिक प्रमिष्यक्ति का सुन्दर गाञ्चम है। वित्रकार अपने जिल्लो चित्र-कला में स्थापने अभूतें भावी को भूतें रूप प्रदास करता है, ग्रन्थक को मीम्ब्यक्ति प्रदान

करता है, प्ररूप को रपवान बनाता है। सक्षेप में चित्र-रचना कला-कार के मानसिक भावो की सजीव सृष्टि या प्रतिमा है।

विषेच्य नाटको में प्राये कला-सम्बन्धी उल्लेखों से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि उस थुग में चित्र-कर्म या चित्र-कला की साधना उत्कर्ष पर थी। समाज में, जनता भें, दस कला के प्रति प्रसीम श्रीम-दिच श्रीर सम्मान था। राज-अवनो श्रीर सार्वजनिक स्थलों में चित्र-सालाएँ होती थी जहां कलाविद सावार्य कलाजिशासुधी को ग्रालेखन की शिक्षा देते थे। दुस्मन्त, पुरूरवा, वसन्ससेना, राजुन्तला थी सहिद्याँ - ग्रनसूथा, प्रियवदा — ये सभी पात चित्राकन में प्रवीण बताये गर्मे हैं। विरद्ध-विश्वर राजा दुस्पन्त शत्रुन्तला के चित्रालेखन में प्रपना नेपूष्प प्रदक्तित करता हैं । पुरूरवा सपनी प्रयती उन्देशी का

१. परिम्नानिना—देवि <sup>।</sup> नैतन्यास्यम् । सर्वज्ञस्याप्येकारूनो निर्णयास्युपमसी वीषाय । —मान०, प्रतः १, ५० २७६

र प्राचार्यो—सम्यामाह देव । मध्यस्था भगवती नौ गुणुदोपस परिच्छेलु महोति । —माल०, प्रव रे, पृ० २७४

महैति । — माल०, प्रव १, पृ० २७४ ३. प्रथमा पण्डितसन्तापप्रत्यमा ननु सूरुपाति । यतोऽप्रभवत्या शीभन भरिएत तत इद ते पारितोपिक प्रयच्छामि । — माल०, सक २, पृ० २०६

४,४ जिनशासा मता देवी यदा प्रत्यप्रवर्णरामा चित्रलेखानाचार्यस्मालोक-यन्ती तिष्ठति । —माल० प्रक १, ५० २६४

६ ग्रीम० शाब्द, अन ६, पु० ११४-१६

संस्कृत भाटको में समाज चित्रण

રં⊏૪

चित्र बनाना चाहता है, परन्तु बार बार श्रांखो मे शांसू श्रा जाने से चित्र के ग्रभूरा रहने की श्रका के कारण उसे नही बनाता । वसन्त सेना ग्रामं चारुरत्त की चित्राकृति शीचती है । शकुन्तला की संखिगों केवल चित्र कला के अनुभव के धाधार पर शकुन्तला को श्रलकृत

करती है । चित्र कला के घाघारों को दो यगों में विभक्त किया जा सकता

है—एक विषयीगत और दूसरा विषयगत । प्रयम कर्ता से सम्बद्ध है ।

सफल कलाकार के लिए चार बात विचा श्रित्र रचना के प्राधार रखीय बतायी गयी हैं—१ वस्तु विस्व २ समाधियायोग ३ भावानुप्रेश और ४ फल्पना। चित्र-लेखन से पूर्व चित्रकार के समक्ष यरत व्यक्ति या

चित्र विशेष का मानस विस्व रहना चाहिये। जब तक उसके मस्तिष्क मे अपने प्रतिपाद्य की काल्पनिक रूपरेखा नहीं रहेगी तब तक यह भ्रपने चित्र को व्यक्त व संजीव नहीं बना सकेगा। 'व्यक्त से तारपय

प्रपत । पत्र का व्यक्त व सजाव नहा बना सक्ता। 'व्यक्त से तारप्य है कि जिन के नत्य जिन तक, प्रियेक से प्रिकृत विज्ञार तक सीमित तर्हा। प्रीर प्रन्य सामाजिको की बुद्धि व कस्पना से बाहर की जीज समग्रा जायेगा। 'अभिज्ञानवाकुरत्य के पष्ठ अक में शकुरत्यता विरक्षित राजा केत्य सामस्य सिवस्य के प्राधार पर सकुरत्यता का ऐसा स्थीन जिन से स्वित्य साम सिवस्य के प्राधार पर सकुरत्यता का ऐसा स्थीन जिन से सा सामाज की स्वत्य राजा की यह ध्यान नहीं रहता कि यह जिन है या सामात् शकुरत्या। सामुमती' तो राजा का नैपुष्य देख कर यग रह जाती है। उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उसकी सखी ही सामने खडी है।

चित्र कर्ता के लिए समाधि या तम्मयता अत्यन्त ग्रावश्यक है।

जब तक कलाकार अपने आपको अपने प्रतिपाद्य या ध्येय मे लीन

नहीं कर लेगा तब तक जिन मे न तो मजीवता आयेगी और न पूर्ण गाना भिज्यों के लिये 'प्रतिवाद-ध्याना स्थान होंगी। 'शुक्रनीति' में भी शिल्पी के लिये 'प्रतिवाद-ध्याना स्थान अनिवार्य वताया गया है। आलेक्यगत दोप कलाकार की शिषिक समाधिवश होता है। 'पालिकागिमिन' में अब राजा मालिका के जित्र को देखने के पश्चात यथायें में उसे देखता है तो उसे जित्र उसके स्थ-साव्यय को यथावत प्रकट न करने के कारण कोका जान पत्रता है और वह उसका कारणे जित्रवार नी शिषिकता या मनीयोग का अभाव मानता है। 'अधिकानशाकुक्तन' में कुप्यत या मनीयोग का अभाव मानता है। 'अधिकानशाकुक्तन' में कुप्यत शक्का का जित्र बनाते समय अपने आपको इतना तम्मय कर देता है कि यनने के बाद उसका जित्र योलता सा प्रतीत होता है भीर वह उसी जिनने साह उसका जित्र होता है।

बस्तु-विभव और सप्ताधि के साथ-साथ विज्ञकार का भावानु-प्रीय का विचार भी करना पडता है। भावानुभेव का प्रवं है प्रतिपाध के साकार-प्रकार या हाब-आब का यथावत् प्रकत्त और उससे सम्बद्ध उपाधानो ना यथास्थान विश्रण। वलावतर जब तत्त प्रपनी रचना म सफल भावाभिव्यक्ति नहीं करेगा तब तक उसकी रचना महितीय व सर्जीव नहीं हो सकती। भावाभित्यक्ति के लिए पात्र व देश-काल के भीविय ता अधान भी रजना पडता है। 'अभिज्ञानवाजुन्तल में बाहुन्तना के पित्र की दर्शनीय व सर्जीव वनाने में दुष्यन्त की सफल भावानु

— मिन शार, ६ २१

१ योग एव रामाधि में योगदान की चोक्त प्रतिमा की विचेपता है। प्रनव्द प्रतिमा के मानव-व्यव्यायों को व्यानवील होना चाहिये। व्यान के मति-रिक्न प्रतिमा के स्थक्य ज्ञान का व्यय्य कोई सायन यही (सारात्वार प्रो काररार नहीं)। —युक्तीति, प्रथ्याय ४, क्षण्ड ४, ट्रु० १४७ ४०

२ चित्रगतामामस्या कान्तिविश्ववादशक्ति मे हृदयम् । सम्प्रति निधिलसमाधि मन्त्रे येनेयमालिखिता ॥ —माल०२२

राजा—दर्शनसुसमनुमनत सासादिन तन्मयेन हृदयेन । स्मृतिकारिएण त्वया म पुनर्राप नित्रीकृता कान्सा ॥

र राषु वयस्य । शबुरायस्थानदर्शनीयो भावानुत्रेश रखसतीय मे दृष्टिनिम्नो नत प्रदेशेषु । —सभि० शा०, शक ६, ९० ११४

सस्कृत नाटकों में समाज-चित्रण प्रेपए-राक्ति ही कार्यं करती है। वह अपनी प्रेयसी के अग-प्रत्यग इतने मुन्दर बनाता है कि उसके मनोनाव ज्यो-के-स्वा उतर पाते हैं। कलाकार मे उर्वर-कल्पना-शक्तिका होना भी उसवी निपुणता का बावस्यक बंग है। यदि वह किसी मुन्दर व लावण्यमयी ब्राकृति

२८६

का श्रविकल चित्र सुन्दर व सजीव बना देता है, तब यह कोई भारचर्य को बात नहीं, किन्सु उसको निपुणता तो वहीं दिखायो देतो है जहाँ वह भ्रपनी रेंखाओं ये कल्पना से 'श्रमुन्दर' को 'मुन्दर' बना देता है।'। विषयगत भाषार ने बन्तगंन चित्र-रचना में सहायक भौतिक

उपनरए। पाते हैं। इन उपकरणों में सबसे महत्वपूर्ण है चित्र ना स्नाभार-पट जिम पर रलकर विज्ञकार वस्तु या व्यक्ति-विशेष का वित्र लीवता है। यह स्नाभार 'चित्रपट'' या 'चित्रपटसव'' कहसाना था। यह सम्भवत लकडी या लोहे का चौकोर तस्ता होता था।

फलक के प्रतिरिक्त पत्रा और भित्तियों पर भी सुन्दर चित्रकारी की जाती थी। पत्र-चित्र विभिति-चित्र के उदाहरें सुन्द्रवटिक में

मिलते हैं। भित्ति-चित्र-कला को परम्परा नवीन नहीं थी, वरत् रामायण काल से चलों भा रही थीं। रामायण के राम के प्रामाद की मिलियों

पर उत्कीर्ण चित्रों को उल्लेख है।

चित्रपट पर चित्र की रूपरेखा सकत करने के लिए पेंग्सिल या युग भी अत्यन्त स्नायध्यक है । इसके लिए 'वनिका' वार्वे प्रयुक्त

हुआ है। यह मोथरी नोक बाली कलम होती थी । भगवतशरण उपाघ्याय 'ग्रमिज्ञानशाकुन्तल' मे श्राये 'लम्बकुचं' र पद का ग्रयं 'रग भरने के उपयोग मे आने वाला बुश करते हैं, किन्तु वस्तुत वहाँ तापस का विशेषण होने के कारण इसका श्रर्थ 'लम्बी डाँढी वाला' है ।

बर्ए या रागो का भी आलेखन में विशेष महत्त्व है। 'चित्र-लेखा'<sup>४</sup> और 'वसंराग'<sup>४</sup> शब्दो से व्यक्त होता है कि पहले नाधारण रूप-रैला लीचकर रग भरे जाते थे। रगो के प्रयोग से रचना निकर चठती थी । चित्र-रेखाओं से सम्भवत गीले रग (Water Colour) का प्रयोग होता था। 'मभिज्ञानशाकुन्तल' में शकुन्तला का चित्र देखते समय इप्यन्त के नेशो से गिरा हुआ आँसू चित्र को विगाड देता है। इससे सिद्ध होता है कि चित्र में गीले रंग का प्रयोग हमा था तभी बह खराव हो गया मन्यथा नहीं होता । श्रीमती गायशी देवी वर्मा " साज-विकाग्निमित्र" में माए 'प्रत्यप्रवर्णराम' पद का मर्थ 'ताजा गीला रग' बनाकर इस मत को पृष्टिकरती हैं।

चित्र रचनोपयोगी सामग्री यथा वर्तिका मादि रखने के लिए बांस की बनी एक छोटी मजुषा होती थी जिसे वर्तिका करण्डक नाम से प्रभिद्धित किया जाता या।

१,२. भगवनदारण उपाध्याम कालिदास का भारत, माग १, प० २५

इ. यदाऽह प्रयामि पूरितब्यमनेन चित्रफलक सम्मक्त्वीना तापसामा कदम्बै ।

<sup>—</sup>धींभ॰ चा॰, सन्द ६, पृ॰ ११६

४,४. विश्वशाला गता देवी यदा प्रत्यव्यवर्णरागा विश्ववेशामाचार्यस्थालोकयन्ती ਰਿਖਣਰਿ । -- मानक, बद्ध १, प्रक १६४

६ स्विन्नागृतिविनियेशी रेखाप्रान्तेषु हश्यते मलिनः । धन्न प रपोलपवित हश्यमिद वितकोच्छ्वासात् ।। — समि० सा०, ६१५

कवि कालिदास के ग्रम्थो पर माथारित तत्कालीन मारतीय संस्कृति. To 38%

वितिशकरण्डक ग्रहीत्वेतोम् स प्रस्थिताऽस्मि ।

<sup>—</sup> धमि० सा०, धन्दु ६, ५० ११६

'चित्र-रेला' रेखा" झोर 'वर्एराग' व शब्दो हे यह व्यवत होता है कि चित्र दो प्रकार के होते थे—रेखा-चित्र और वर्ए चित्र । रेखा-चित्र मे कताकार प्रकृत बस्तु या चित्र-मेव व्यक्ति का चित्र रेखाओं होरा धर्मित करता है। वह रेखाओं मे ही, बिना वर्ण

करता है। वह रखाधा में हैं। तथा वर्ण या राग के तस्तु का घरिकल व मुन्दर किए प्रस्तु करता है। वर्षी पित्र रेखा-चित्र का परवर्ती रूप है। इसमें प्रतिपाद्य वस्तु, व्यक्ति या दृश्य को रेखान्वित कर याद से उसे विविध-वर्णों और रंगों से पण्डित किया जाता है। वर्ण-पित्र रेखा-चित्र को तुलना में द्रियक कलात्यक्त, मोहक प्रीर रंगीन होता है, किन्तु यदि सहुज कला और उसनी मूल मात्मा के दर्शन करते हो तो वह केवल रेखाओं से प्रश्वित प्रतिप्त में ही उपलब्ध हो सकती है। विषी-पुती, सजी-घजी, चटकीली मटकीली में ही उपलब्ध हो सकती है। विषी-पुती, सजी-घजी, चटकीली मटकीली करी प्रीर सहज सावण्यमयी नारी में जो प्रन्तर हैं वहीं रेखा चित्र ब वर्ण-चित्र में हैं।

भास, कालिदास और शूडक के नाटकों के सध्ययन व अनुसी-लन से यह बात पूर्णत शिव्ह है कि विज-कता उन तीनों के बाल में उदात व समुद्ध थीं किन्तु जहां तक जिद्य-क्सा की साधनाओं का प्रकार है, उनमें आधिक केद इटिटगीचर होता है। भाग के समय हत का का अनुसीलन बता या साधना की इटिट से बच्च और जीनिका या व्ययसाय की इटिट से अधिक किया जाता था। उसके नाटकों में हस्तीयरिज विजो तथा 'अतिजायीगश्यरायण' में पित्र-प्रकार पर अस्ति उदयम-वास्वयता-विवाह के इत्यर्थ और 'इतवाप्य' में प्रीपरी के केदा-कर्षण के विजर्भ का उस्तेल ध्रवस्य है, किन्तु स्वहन्ततिनिन चित्रो भा, जिनका उल्लेख 'ग्रमिज्ञानशाकुन्तल' में हुग्रा है, नाम तक नहीं आया ग्रीर न ही किसी पान को कला का माधक बताया गया हैं। इससे स्पष्ट है कि यह कला सर्व-साधारण मे व्यापक और लोक-प्रिय नहीं यो और केवल ब्यावसायिक किल्पिया तक ही सीमित थी। कालिदास-काल भ्रयात् गुप्त-काल मे यह कला श्रपने पूर्ण वैभव

पर थी। यद्यपि पेशेवर चित्रकारो का अभाव न या तथापि कला-साधको और कलाविदो को तुलना मे उनकी सत्या नगण्य थी। जनसा में चित्र-रचना के श्रभ्यास श्रौर अनुशीलन के प्रति श्रतीव उत्साह भीर भिभवि यो । इनके नाटको से दुप्यन्त, पुरूरवा भ्रादि नागरिक पात्र तो कुशल कलाकार हैं ही, साथ ही शकुन्तना धनसूया प्रादि भरण्यवामिनी वालाएँ भी चित्र-कमें मे निपूरा निरात की गयी हैं।

शूद्रक के 'मृण्डकटिक' म धालेखन-सम्बन्धी उल्लेख श्रत्यल्प या मगण्य ही है। अन चित्र-कला के थिएय में स्पष्ट परिचय गही

प्राप्त होता है। विवेच्य युग मे साहित्य, सगीत भ्रादि कलाभ्रो के समान सूर्ति-

कला भी उन्नन ग्रवस्था मे थी। तत्कालीन शिल्पकार नाना प्रकार की बाकृतियो भीर प्रतिमाभी का निर्माण

?

करने में ब्रत्यन्त निपुण थे। मूर्ति निर्माण मृति कला के साधनो म मिट्टी, कार्ट और प्रस्तु ना उपयोग किया जाता था। स्रभिज्ञातवाकुत्तव में भरत मिट्टी से सने हुए मसूर से केसता है । 'मुक्छकटिक' म काछ प्रतिमा और

गैल प्रतिमार का उल्लेख हुआ है।

मूर्तियो की प्रनिष्ठा के तीन बाघार थे-१ स्पृति, २ भदर्शन एव शोभातया ३ धर्म-निष्ठा।

प्रतापी राजाधी ग्रीर मनस्वी पुरुषोकी मृत्य के पदचात

तत्र मे चित्रमानकर्मता तुरतनिथिता तत्रभवत्या शकुन्तलाया प्रतिङ्कृति

मानग्रति । --- श्रमि० सा० श्रद्धा ६ प० १० व (प्रविदय मृष्मयूर हस्ता) सवदमन शकु तलावण्य प्रेक्षस्त्र ।

२ —ঘদিও লাও, যাল্ল ৬, দৃৎ १३০

**र ५ कारहमधी प्रतिमा ।** —मृब्द्र०, बहु २, पू० १०६

न भाउन राज् । धील प्रतिमा । —मुच्छ०, यक्त २, पृ० १०६ अनकी स्मृति में उनकी प्रतिभाष्ट्रों की प्रतिष्ठा की जाती थी। ये प्रतिमाएँ मृत व्यक्तियो की स्मारक होती थी श्रीर उनके क्लाघनीय एव जीयन्त स्मृति

कृत्यो की गाया को पुनर्जीवित रखती

शी। 'प्रिनिमा नाटक' मे प्रतिमा-गृह मे रघुवशी राजाग्री की घौर्य-नाया को जाग्रत रखने के लिए उनकी प्रतिमाएँ स्थापित की गमी थी ै।

मृतियो की स्थापना का द्वितीय श्राघार प्रदर्शन एव मनोरजन की भावना थी। प्रासादो एवं भवनों की घोषा में चार नौंद लगाने के लिए नाना जीवधारियो की सजीब प्रदर्शन एवं मनोरजन मितियाँ स्थापित की जाती थी। गृहो की माज-सज्जा ने लिए भितियो पर पशु-वभी मादि की माकृतियाँ भी उत्कोएं की जाती थी। 'विक्रमोर्वशीय' क्रे राज-बार पर बैठे हुए मोर पत्यर में खुदे हुए से प्रतीत होते हैं। इच्चो के मनोविनोद के लिए भी मिट्टी बादि की मृतियों की रचना

की जाती थी<sup>3</sup>। धर्म-प्राणः व्यक्तियो की धर्म-भावना और ग्रास्था के स्थूल ग्राधार में लिए देवी-देवताग्री मी प्रति-माएँ मन्दिरो भीर देवालकी में स्थापित धर्म-निस्ता

की जाती थी ।

यह पंचम ललित-शला है। इसे स्थापत्य-कला भी कहा जाता है। मालोच्य यूग मे इसवा पूर्ण विवास हो चुका था। राज-प्रासाद<sup>४</sup>, देवायतम<sup>६</sup>, वास्त-दला

विहार", बाहार", तडाग", प्रपादि " वे क्यान से स्पष्ट है कि स्वापत्य-कला ने व्यवस्थित एवं स्थिप नप धारण

वर लिया था। प्रतिमाः, पदः १ (सम्पूर्ण)।

उत्तीरमी इव नासमध्यप् नियानिहाससा बहिसी । --- विक. । ३ २ ₹

অমি ং বাং, মন্ত্র ও বং ইইন

देशकेतिकारमार्गाः भागप्रियस्यासमासं प्रतिसामान् ५ -- प्रतिमा : च द् १, प्र :, ७६

दिस्तार के लिए देशिये, 'परिवार' नामक बच्चाय ।

६-१० मृष्यु०, चन्द्र हे पृ० १०४

## उपसंहार

हम समग्र विवेचन ने हमें हम निष्कर्ष पर पहुंचामा है कि सामाजिक गतिविधियों में निकास अपना मार्ग लोज निकालता है। राजनीतिक, धार्मिक या आधिक परिस्थितियों जिस प्रकार समाज को वीक्षने या दरीवेचने का प्रयस्त करती है उसी प्रकार सामाज को वीक्षने या दरीवेचने का प्रयस्त करती है उसी प्रकार सामाज का तिहा पा कर उसके कोड में पलती है। कुछ परिस्थितियों समाज का तिह पा कर उसके कोड में पलती रहती हैं और कुछ समाज के पीछे लगी चली जाती है, कही हो सामाज का निवास काल-बक्ष पर ऐसी अनेक परपराओं की बेला हम हृष्टिगोचर ही रही है। फिर भी ममाज को नहें प्रवास पर अपनर देखते हैं। मित-कालीन समाज की कई प्रवास निवास कुम स्थान रहती हैं। किर भी ममाज की कई प्रवास वात स्थान के युगा के दी हरून छोरों के बीच में हिएगात करें तो परिवर्तन की मैंगड़ाहमी हमारे सामने स्पष्ट रूप में अपना स्थान हमारे सामने स्पष्ट रूप में आता हो हम स्थान-स्थान पर बेला हैं। सामकालान सामज की नहें प्रवास और महिलान की सुगा हमारे सामने स्पष्ट रूप में आता हो हम स्थान-स्थान पर बेला है कि सामकालान सामक स्थान परिस्थितियों है प्रवास के युग में नवीन परिस्थितियों के प्रति आरमसमम्पेश नर विश्वास है।

भ्रमप्य इस शोध-प्रबन्ध में आलोध्य-नाटको में विनित्त समाज के विद्यविष्ण के साथ एक काको परिस्थिति परिवर्तन-परपरा श्रीर अमति को भी है। हमारा प्रशुख तथ्य विकीएं सुत्रों का प्रध्ययन श्रीर परीक्षण तो है ही, साथ ही उनका सकलन श्रीर सम-उन भी है। इससे विभिन्न नाटको में प्रतिविधित खड-समाज को ममग्र रूप मिल गया है। जो गामाजिक विश्व हमने निर्मित किया है उनकी वियसी रेसाएँ प्रस्तुत नहीं की गई है, बरस् उनसे वने हुए प्रतेक श्रमी का पृथक्-पृथक् श्रध्ययन करके पूरा आकार की प्रतिष्ठा की गयी है। अतएव प्रबन्ध की सुत्र व्यवस्था चित्र-पट के रूप मे प्रस्तृत की गई है।

इस शोध प्रबन्ध में कल्पना के रंगों ने ऐतिहासिक भूमिका प्राप्त की है। अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष की कल्पना के इतिहास का आधार देकर

वरतु स्पिति और झावर्ष की वीथियों को संयोजक द्वारों से एक किया गया है । यहाँ समाज के विविध पहलुओं यथा गृहस्थ परिवार, वर्ण, वर्षे, नारी पुरुष स्थिति और सम्बन्ध, झावर्स नैतिक झावरण, रहन

सहत के ढग, श्रास्थाओ एव विचार-धाराओं शासन पद्धतियो, न्याय,

दण्ड-प्रगालियो स्राधिक दशा एवं फला कौशल द्यादि को पूर्ण झाकार बनाने वाले पूर्ण चित्रो के रूपो मे प्रस्तुत करके वर्तमान समाज-व्यवस्था के सुधार के प्रायाम प्रस्तुत किये गये है।

समाज के इस रूप चित्र की सामने रख कर वर्तमान समाज

भ्रपनी भूलो को सुधार सकता है अपने रूप का परिष्कार कर सकता है और अपने नैतिक हिन्दकोणों की हुड प्रस्थापना नर सकता है।

माज समाज के सामने एक लक्ष्य अंश की स्थिति उपस्थित है। इसका परिशोध मालोज्यकालीन समाज के श्रध्ययन की भूमिका

पर प्रस्थापित किया जा सकता है।

## ग्रन्थ-सूची

क. मूल ग्रन्थ

क्षनिषेक-नाटक, साचार्य रामचन्द्र मिल ਜੀ ਟੀਡਾ प्रतिज्ञा ग्रीगम्धरायणः प० कपिलदेव

प्रमित्रानशाकुन्तल, नालिदास ग्रन्था-गिरि की टीका

बली (द्वितीय संस्करण) बालचरित, सीताराम सहगल की

अविमारक, भावार्य रामगन्द्र मिश्र शिका की टीका सम्बन्धायोग, प॰ रामणी मिश्र की

अदमंग, धार० बी० कुम्भारे की टीका कर्णनार. प० रामजी मिश्र की टीका

चारदल, पा कपिलदेव गिरिकी टीका

दूतपदोत्कच, प० रामनी मिश्र की टीका

इतवाश्य, प० रामशी मिश्र की टीका पषरात्र, धांचार्यं रामचन्द्र मिछ की

प्रतिमा-नाटक, प्राचार्य रामचन्द्र मिश्र

बली (दितीय संस्करण) वक्दकदिक, महाप्रभुलाख गास्वामी बीट रमासाल दिवेदी की होता

की होगा

टीका

की टीका

विज्ञमोर्वशीय, कालियास प्रश्यावली (द्वितीय सस्करण) स्वप्नवासवदत्ता, प्रो० पी० पी० दार्मा

बालविकामित्रक, कालिदास प्रत्या-

ख. सहायक ग्रन्थ

(१) संस्कृत ग्रन्थ प्रमरकोश घर्षशास्त्र, शीटस्य

टीका

तैनिरीय बाह्यस

दशरपक, धनञ्जय

. ब.

सस्करण)

रध्वत्र, कालिदास ग्रन्यावली (द्वितीय

रामायलकासीन सस्कृति, या तितुमार नानराम व्याम

शरकृत कवि दशन, भीलागकर स्याग

सस्कृत नाउककार कान्तिकियार

भारवलायन गृह्यसूत्र

राधानुमूद मूनजी

दारता उपाध्याव

प्रसाद दे ऐतिहासिक

रा० तिगदीयच ≍ कोसी

प्राचीन मारत का इतिहास, मयवन-

-स खेद

राक्षायण कामसूत्र बृहज्जातक शतपथ दाह्यण संगीत बामीदर मविष्यपुरास मेत्स्यपु**रा**श सगीत रत्नाकर साहित्य दपरा, विश्वनाथ (विमला भनुस्मृति, केदावप्रसाद डिवेदी की टीका दोका) (२) हिन्दी ग्रन्थ कता और सरकति, वामदेवशरण प्राचीन भारतीय परम्परा भीर इति-हास, डा॰ सुनीतियुमार घटजी घ पत्र रहर कालिदास, च द्ववली याण्डय प्राचीन बेडामुखा, हा॰ मोलीयन्य कालियास. बी॰ बी॰ मिराझी मारत का इतिहास, दयाभकात दादावरी एक सांस्कृतिक ब्राव्ययन, भारत का प्राचीन इतिहास, वासुदेवशरण खब्रवाल एन० एन० घोष कालिदास का भारत, भगवतशरण मारतीय सम्यता भीर सस्कृति का **च्याध्याय** विवास, सुनिया म \लिबास के प्रत्यों वर श्राधारित तत्वा मारतीय संस्कृति सौर उसका इतिहास, भीन भारतीय सरकृति, गायत्री वमा सत्यक्त् विद्यालकार काव्य के रूप, गुलावराय मारतीय सरष्ट्रति का दतिहास, भट-नागर एव श्वन गुल साम्राज्य का इतिहाल, द्वितीय मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, मामा क्षक्ष, बागुदव उपाध्याय गौरीजनर हीराचन्द च द्रगृप्त भीर्य और उत्तरा काल.

भारक,

मरनिया

मस्ट्रल साहित्य का इतिहास, बलदेव लपाध्यात

सस्कृत साहित्य की रूप रेखा, चड-होस्तर पाएउस तथा स्थास

साहित्य-विवेचन, क्षेमचन्द्र सुमन तथा मल्लिक

माहिरियक निवन्ध, डा॰ राजकुमार

(३) भ्रंपेजी पन्य

Bhasa, A S P Aivver Bhasa A Study, Pusallar

Corporate Life in Ancient India. R C Majumdar

Encyclopaedia of Handu Architecture, P K Acharya Glories of India, P K Acharya

Gupta Art. V S Agrawala (1943 edn )

सिद्धान्तालोचन, धर्मचन्द्र सन्त

चाउटेस

हर्पेचरित ' एक सांस्कृतिक धाःमयन, वासदेवदारण संप्रवाल

हिन्दू परिचार-मीमासा, बाम्देवशरण घयबाल हिन्दु सस्कार, राजवली पाण्डेय

India As Known to Panini V S Agrawala

Lafe in the Gupta Age, Saletore Sanskrit Drama, A B Keith!

Social Life in Ancient India H C Chakladar Vedic Mythology, Macdonell Women on Sanskret Dramas.

Ratnamayıdev. Dikshit

ग. पत्र पत्रिकाएँ

कल्याम (सस्वति धक)

Archaeological Survey of India Report Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Volume 6